जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

वाणिज्य स्नातक-द्वितीय वर्ष
Bachelor of Commerce-II

चतुर्थ पत्र
Paper-IV

कम्पनी अधिनियम एवं अंकेक्षण
Company Law and Auditing

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

COPYRIGHT
Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

Written By :
Dr. S.L. Jhakhar (Section-A)
Dr. B.L. Sain (Section-B)
Dr. R.K. Dadheech (Section-D)
Dr. Radha Solanki (Section-C)

Edition : 2014

Printed Copies : 100

Published By: Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	अनुक्रमणिका (Contents)	
खण्ड–अ	कम्पनी अर्थ, विशेषताएं, प्रकार, परिवर्तन, पंजीयन, पार्षद सीमा नियम एवं अन्तर नियम, प्रविवरण, अंश, अंश पूंजी	01–64
खण्ड–ब	संचालक, सदस्य, सभाएं, बहुमत की शक्तियां एवं अल्पमत के अधिकार और कम्पनी का समापन	65–115
खण्ड–स	अंकेक्षण, अर्थ, उद्देश्य प्रकार, आन्तरिक निरीक्षण एवं अंकेक्षण अनुसंधान	116–141
खण्ड–द	कम्पनी अंकेक्षण, नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य, दायित्व, विमुक्ति, अंकेक्षण रिपोर्ट	142–165

खण्ड - अ

अध्याय १ - कम्पनी - अर्थ एवं विशेषताएँ

(A) प्रस्तावना – (Introduction)

'Company' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'com' एवं 'panis' से हुई है। 'com' का शाब्दिक अर्थ है– 'साथ–साथ' (Together) जबकि 'panis' का शाब्दिक अर्थ है–'ब्रेड'। इस प्रकार 'Companis' का शाब्दिक अर्थ है – ब्रेड को मिलजुल कर खाना। (Sharing a bread together)। प्राचीन समय में भोजन को मिलजुल कर खाने की परम्परा को कम्पनी के नाम से जाना जाता था। वस्तुतः भारत में कम्पनी का इतिहास ब्रिटिश इतिहास से जुड़ा हुआ है। सन 1844 में ब्रिटिश संसद ने संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम (Joint Stock Company Act) पारित किया जिसके अन्तर्गत पंजियन का प्रावधान किया गया, परन्तु पंजीकृत संस्था फर्म के नाम से ही जानी जाती थी और सदस्यों का दायित्व भी असीमित था। 'सीमित दायित्व' के साथ व्यापार की स्वीकृति सन 1855 को प्राप्त हुई। इसी तरह भारत में भी सन् 1850 में 'संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम' का श्रीगणेश हुआ। इस अधिनियम में भी 'असीमित दायित्व' की व्यवस्था थी। ब्रिटिश नियमों की अनुपालता करते हुए सन् 1857 में सदस्यों का दायित्व सीमित करने का प्रावधान किया गया। सन् 1860 में एक नया कम्पनी अधिनियम पारित किया गया, परन्तु यह अधिनियम भी कम्पनी कारोबार के सभी आयामों को संवृत्त (Covered) करने में नाकामयाब रहा। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, सन् 1866, 1882, 1913 में कम्पनी अधिनियम में वांछित संशोधन किये गये।

आजादी के पश्चात् कल्याणकारी सरकार अस्तित्व में आई जिसके परिणामस्वरूप कई नये विधेयक अस्तित्व में आये। इसी क्रम में कम्पनी कारोबार को सुचारू रूप से चलाने हेतु सन् 1950 में श्री. सी. एच. भाभा की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया, जिसने सन् मार्च 1952 में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की।

2 सितम्बर, 1953 को यह बिल संसद में पेश किया गया और समीक्षा हेतु मई 1954 में यह विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को सौंपा गया। प्रवर समिति ने संशोधित विधेयक मई 1955 में पेश किया जिसे सितम्बर, 1955 को लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया। नवम्बर, 1955 को उच्च सदन द्वारा पारित करने के पश्चात् 1 अप्रेल 1956 को अत्यन्त ही विस्तृत एवं जटिल कम्पनी अधिनियम अस्तित्व में आया। परन्तु समय की मांग एवं आर्थिक सुधारों को ध्यान में रखते हुए इस विशाल अधिनियम में भी संशोधन की प्रक्रिया चलती रही। सन् 2000 एवं 2002 में व्यापक संशोधन किये गये। वर्तमान में भी नया अधिनियम विचाराधीन है, जो शीघ्र ही आवश्यक परिवर्तनों सहित पाठ्य–पुस्तकों में प्रस्तुत किया जायेगा।

(B) अर्थ एवं विशेषताएँ – (Meaning and Definitions) –

सामान्य शब्दों में कम्पनी व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो किसी आर्थिक या सामाजिक लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु संगठित होते हैं। वस्तुतः कम्पनी का कोई पृथक से कानूनी या तकनीकी अर्थ नहीं है। यह तो व्यापारिक या अन्य प्रयोजनार्थ संगठित विभिन्न समूहों का सूचक है।

कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा [3 (1)] के अनुसार, ''कम्पनी से अभिप्राय किसी ऐसी कम्पनी से है जो इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित एवं पंजीकृत है अथवा किसी ऐसी विद्यमान कम्पनी से है जिसका निर्माण तथा पंजीयन भारत में प्रभावी या इससे पूर्व के किसी भी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ हो।''

उक्त परिभाषा के अनुसार ऐसी कम्पनी जिसका निर्माण एवं पंजीयन कम्पनी अधिनियम 1956 या इससे पूर्व प्रचलित कम्पनी अधिनियम के तहत् हुआ हो, उसे कम्पनी कहा जायेगा। वस्तुतः यह परिभाषा कम्पनी की प्रकृति को स्पष्ट नहीं कर रही है।

प्रो. हैने के अनुसार, ''कम्पनी से आशय विधान द्वारा निर्मित ऐसे कृत्रिम व्यक्ति से है जिसका पृथक अस्तित्व तथा अविच्छिन्न उत्तराधिकार होता है और जिसकी सार्वमुद्रा होती है।''

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कम्पनी, व्यक्तियों का एक ऐसा स्वैच्छिक संगठन हैं जो कम्पनी अधिनियम के तहत् पंजीकृत हो और जो एक कृत्रिम व्यक्ति, अविच्छिन्न उत्तराधिकार, पृथक अस्तित्व एवं सार्वमुद्रा से युक्त हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(C) कम्पनी की विशेषताएँ (Characteristics of a Company)

1. **पंजीकृत स्वैच्छिक संघ (Registered Volunatary Association) –** कम्पनी, सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों का एक स्वैच्छिक संगठन है जिसका पंजीयन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किया जाता है। कम्पनी का पंजीयन किसी व्यावसायिक उद्देश्य अथवा कला, वाणिज्य, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, शोध इत्यादि गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिये भी किया जा सकता है। कम्पनी के निर्माण एवं समामेलन हेतु सार्वजनिक कम्पनी की दशा में कम से कम 7 एवं निजी कम्पनी की दशा में कम से कम 2 सदस्यों का होना अनिवार्य है। निजी कम्पनी में सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 हो सकती हैं, परन्तु सार्वजनिक कम्पनी की दशा में अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

2. **पृथक अस्तित्व (Separate Entity) –**

कम्पनी का अस्तित्व अपने सदस्यों के अस्तित्व से भिन्न होता हैं। कम्पनी का समामेलन होने के पश्चात् उसे कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा प्राप्त हो जाता है जो इसके पृथक अस्तित्व का द्योतक है। कम्पनी की सम्पत्ति एवं धन, कम्पनी का ही माना जाता है, न कि अंशधारियों का। अतः श्याम एण्ड कम्पनी लिमिटेड, एवं श्याम में पूर्णतया भिन्नता है, चाहे कम्पनी के लगभग सभी अंश श्याम द्वारा धारित ही क्यों न हो। पार्षद सीमानियम के सभी अभिदाता न तो संयुक्त और न पृथक–पृथक कम्पनी के स्वामी माने जाते हैं, अर्थात कम्पनी अवैयक्तिक (Impersonalised) हो जाती है।

कम्पनी के पृथक अस्तित्व को निम्न मुकदमें द्वारा आसानी से समझा जा सकता है–

सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी लिमिटेड , 1897

सालोमन, बूट एवं जुते निर्माण का कार्य करता था। उसने अपना सम्पूर्ण कारोबार नव स्थापित कम्पनी, सालोमन एण्ड कम्पनी लिमिटेड को 40000 पौण्ड में बेच दिया, जिसके बदले में 20000 अंश, 1 पौण्ड प्रति अंश, 10000 पौण्ड के ऋणपत्र एवं शेष नकद के माध्यम से भुगतान किया गया। ऋणपत्रों का कम्पनी की सम्पत्ति पर प्रभार उत्पन्न किया गया। सामान्य मन्दी की चपेट में आने के कारण 1 वर्ष के भीतर ही कम्पनी का समापन हो गया। यहाँ, यह उल्लेखनीय है कि कम्पनी के सभी सातों सदस्य, सालोमन के परिवार से सम्बन्धित थे, अर्थात् सालोमन स्वयं, पत्नी, चार पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ।

समापन के समय कम्पनी के पास मात्र 6000 पौण्ड की सम्पत्ति एवं 10000 पौण्ड के सुरक्षित ऋणपत्र और 7000 पौण्ड के असुरक्षित लेनदार थे। असुरक्षित लेनदारों ने अपना तर्क रखा कि सालोमन एवं सालोमन एण्ड कम्पनी में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, अतः भुगतान में उन्हें प्राथमिकता दी जाए। उनका यह भी कहना था कि कम्पनी, वास्तव में सालोमन ही है। व्यवसाय उन्हीं हाथों द्वारा संचालित हो रहा है, लाभ उसी व्यक्ति के पास जा रहा है और व्यवसाय पर उसका पूर्ण नियंत्रण है, अतः कम्पनी तो छलावा मात्र है।

परन्तु लॉर्ड मेकनॉटन ने उनके सभी दावों को खारिज करते हुए कहा, ''कम्पनी, कानून की दृष्टि से पार्षद सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ताओं से भिन्न सत्ता लिए हुए होती है। यद्यपि समामेलन के पश्चात् हो सकता है, कारोबार पूर्ववत् ही हो, प्रबन्ध कार्य उन्हीं व्यक्तियों के हाथों में हो और वही हाथ लाभ प्राप्त करें परन्तु कम्पनी की स्थिति एजेन्ट या प्रन्यासी के रूप में नहीं मानी जाती है।''

3. **सीमित दायित्व (Limited Liability) –**

कम्पनी में सदस्यों का दायित्व सीमित होता हैं। वस्तुतः यह विशेषता कम्पनी के निर्माण में एक प्रेरक घटक के रूप में कार्य करती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्व को कम्पनी के माध्यम से सीमित कर सकता है। यदि कोई कम्पनी अंशों द्वारा सीमित है तो उसके सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा धारित अंशों के अंकित मूल्य की राशि तक सीमित होता है, जबकि गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा प्रदत्त गारण्टी की राशि तक सीमित होता है। इसके विपरीत साझेदारी फर्म में साझेदारों का दायित्व असीमित होता है अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर फर्म के दायित्वों के लिए साझेदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

4. **अविच्छिन्न उत्तराधिकार (Perpetual Succession) .**

कम्पनी का अस्तित्व सदस्य की मृत्यु, दिवालियापन या पागलपन से प्रभावित नहीं होता है जबकि साझेदारी फर्म का अस्तित्व साझेदारों से भिन्न नहीं होता है। यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो किसी साझेदार की मृत्यु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पागलपन या दिवालिया होते ही फर्म का भी समापन हो जाता है। अतः निगमित संस्था का सामान्यतः अंत नहीं होता है। यदि कम्पनी के सभी सदस्यों में परिवर्तन हो जाए तो भी कम्पनी उसी रूप में बनी रहती है, वही अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त होती है। सरल शब्दों में ''सदस्य आते रहते हैं सदस्य जाते रहते है, परन्तु कम्पनी सदैव चलती रहती है'' (Members may come, members may go but the company can go on for ever.)

5. सार्वमुद्रा (Common Seal) –

कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति होती है जिसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता है। अतः कम्पनी को अपने सभी कार्य एजेन्ट के माध्यम से करने पड़ते है। कम्पनी अपने एजेन्ट के माध्यम से किये गये कार्यों के लिए तब तक उत्तरदायी नहीं होती जब तक कि वे कार्य कम्पनी की सार्वमुद्रा से स्वीकृत न हो, क्योंकि 'सार्वमुद्रा' कम्पनी की और से हस्ताक्षर माने जाते हैं। अधिक स्पष्ट शब्दो में 'कम्पनी द्वारा जारी सभी प्रलेख या किये गये सभी अनुबन्ध कम्पनी की सार्वमुद्रा से युक्त होने चाहिये।' तभी कम्पनी अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगी।

6. पृथक सम्पत्ति (Separate Property) –

कम्पनी को कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा प्राप्त होने के कारण वह अपने नाम से सम्पत्ति क्रय कर सकती है, उसका उपयोग एवं विक्रय कर सकती है और आवश्यकता पड़ने पर प्रभार भी उत्पन्न कर सकती है। कम्पनी, अपनी पूंजी एव सम्पत्ति की स्वामी होती है। अंशधारी कम्पनी की सम्पत्ति के पृथक या संयुक्त रूप से स्वामी नहीं माने जाते है। यही कारण है कि अंशधारियों का कम्पनी की सम्पत्ति में 'बीमा योग्य हित' भी नहीं होता है। इस बात की पुष्टि ''मकाउरा बनाम नॉर्दन एश्योरेस कम्पनी लिमिटेड लि.'' 1925 के माध्यम से की जा सकती है। मकाउरा एक टिम्बर कम्पनी (Timber Company) के बहुत बड़े अंशधारी थे जिसमें एक को छोड़कर सभी अंश स्वयं के पास थे। उसने स्वयं के नाम से गोदाम में पड़ी लकड़ी का बीमा करवा लिया। दुर्भाग्य से गोदाम में आग लग गई जिसके परिणाम स्वरूप बीमित लकड़ी जलकर राख हो गई। जब क्षतिपूर्ति के लिए दावा किया गया तो **न्यायाधीश वाट्सन** ने यह कहकर दावे को खारिज कर दिया कि कम्पनी की सम्पत्ति अंशधारियों की सम्पत्ति नहीं होती है। जबकि नष्ट हुई सम्पत्ति कानूनी दृष्टि में मकाउरा की है, कम्पनी की नहीं। कम्पनी की सम्पत्ति का अस्तित्व कम्पनी में निहित होता है और व्यक्तिगत सदस्यों या अंशधारियों में परिवर्तन का इस पर कोई विपरित प्रभाव नहीं होता है।

7. हस्तान्तरणीय अंश (Transferability of shares) –

कम्पनी की पूंजी छोटे–छोटे हिस्सों में बँटी होती है जिसे अंश कहते है। ये अंश अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट प्रतिबन्धों (विशेषकर निजी कम्पनी की दशा में) के तहत हस्तांतरित होते हैं। निजी कम्पनी में सदस्यों की अधिकतम संख्या को अक्षुण बनाये रखने के लिए हस्तांतरण को प्रतिबन्धित किया जाता है।

धारा 82 में स्पष्ट लिखा है, ''कम्पनी के अंश या अन्य हित को हस्तांतरणीय सम्पत्ति'' माना जाता है और इनका हस्तांतरण अंतर्नियमों में निहित प्रावधानों के तहत किया जा सकता है।'' इससे यह स्पष्ट है कि हस्तांतरण को प्रतिबन्धित किया जा सकता है परन्तु निजी कम्पनी में भी निषिद्ध नहीं किया जा सकता।

8. वाद प्रस्तुत करना (Right to sue and be sued) –

कम्पनी एक निगमित संस्था होने के कारण स्वयं के नाम से अन्य पक्षकारों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत किया जा सकता है और अन्य पक्षकार कम्पनी की विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। यदि कम्पनी के सम्बन्ध में कोई ऐसी जानकारी प्रकाशित की जाती है जो कम्पनी के व्यवसाय को नकारात्मक तरीके से प्रभावित करती है तो वह सम्बन्धित पक्षकार के विरूद्ध हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकती है।

(TVS Employees 'Federation V/s TVS & Sons ltd. 1996)

9. पेशेवर प्रबन्ध (Professional Management) –

वर्तमान में निगमित संस्थाएँ, पेशेवर युवक एवं युवतियों के लिए मुख्य रोजगार का साधन है। उच्च शिक्षा प्राप्त नौजवान युवक एवं युवतियां, अपना भविष्य कम्पनियों के माध्यम से संवारना चाहते हैं। निगमित संस्थाओं में स्वामित्व एवं प्रबन्ध की पृथकता, कार्य की स्वायत्तता, चुनौतीपूर्ण कार्य एवं भावी विकास की अपार सम्भावनाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के कारण कम्पनियों में प्रवेश पाना, युवाओं की पहली प्राथमिकता है। निगमित संस्थाओं के माध्यम से वे अर्जित ज्ञान का पूर्ण उपयोग करते हुए अपना भविष्य संवार सकते है।

10. वित्त (Finance) –

सार्वजनिक कम्पनियों के समामेलन का मुख्य आकर्षण वित्त की सुविधाएं है क्योंकि ये कम्पनियाँ जनता को निमंत्रण देकर आसानी से वित्त प्राप्त कर सकती है। यही नहीं बल्कि विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं भी व्यवसाय के इस स्वरूप को आसान शर्तों पर वित्त प्रदान करते है। कम्पनी संशोधन अधिनियम 2000 के अनुसार प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी के लिए कम से कम 5.00 लाख रूपये एवं निजी कम्पनी के लिये 1 लाख रूपये की प्रदत्त पूंजी होना अनिवार्य है।

11. प्रजातांत्रिक प्रबन्ध (Democratic Management) –

हजारों की तादाद में सदस्य एवं अंशधारी, विशाल भू–क्षेत्र में फैले होते है। संयुक्त रूप से कम्पनी का संचालन करना सम्भव नहीं होता है। अतः अपने द्वारा चयनित प्रतिनिधियों के माध्यम से कम्पनी का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण किया जाता है। यही व्यक्ति कम्पनी की ओर से अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हं और उनके क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होते है।

12. कार्य की सीमाएं (Limitations as to actions) –

कम्पनी की कार्यप्रणाली एवं कार्यक्षेत्र, कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा शाषित होता है। कोई भी कम्पनी अपनी सीमाओं के बाहर कार्य नहीं कर सकती। (Company cannot travell beyond its scope)। यदि कार्यक्षेत्र की सीमाओं के बाहर कार्य किया जाता है तो उसे 'अधिकारों के बाहर कार्य' (Ultra vire) माना जाता है और कम्पनी ऐसे कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होती है।

13. कम्पनी एक नागरिक नहीं (Company is not a citizen) –

यद्यपि कम्पनी को कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा प्राप्त है और वह व्यक्ति की तरह ही अस्तित्व लिए हुए होती है, तथापि उसे नागरिक के रूप में मान्यता नहीं है। नागरिक की स्थिति को स्पष्ट करते हुए न्यायाधीश मोहम्मद हिदायतुल्ला ने (State Trading Corporation of India V/s C.T.O. AIR 1963) ने मजाकिया अन्दाज में कहा है, ''यदि कम्पनी से सभी सदस्य भारतीय होने पर भी, कम्पनी भारतीय नागरिक नहीं हो सकती। जिस प्रकार कम्पनी के सभी सदस्य विवाहित होने के बावजूद भी कम्पनी विवाहित नहीं हो सकती।'' यही कारण है कि संविधान में नागरिक को प्रदत्त सभी अधिकार कम्पनी को प्राप्त नहीं होते हैं।

(D) कम्पनी का पर्दा उठाना या बेनकाब करना (Lifting or piercing the corporate veil) –

जैसे ही कम्पनी पंजीकृत होती है, कम्पनी का स्वरूप अवैयक्तिक (Impersonalised) हो जाता है और उसका अस्तित्व पार्षद सीमानियम के अभिदाताओं से भिन्न हो जाता है। समामेलन के पश्चात् कम्पनी कानून की दृष्टि से पृथक सत्ता लिए हुए होती है। कोई भी व्यक्ति व्यवहार करते समय कम्पनी को दृष्टिकोण में रखता है न कि उसे मूर्त रूप देने वाले प्रवर्तकों का। कम्पनी द्वारा किये गये प्रत्येक व्यवहार के लिए कम्पनी ही उत्तरदायी होती है बशर्ते कि कार्य कम्पनी के अधिकार सीमा के भीतर हो। कम्पनी के कार्यों एवं भूलों के लिए प्रवर्तक, अंशधारी, सदस्य एवं संचालक उत्तरदायी नहीं होते है।

इस प्रकार कानून की दृष्टि में कम्पनी एवं संचालकों या सदस्यों के बीच कल्पित पर्दा होता है जो इन दोनों के पृथक अस्तित्व का प्रतीक है। परन्तु यदा–कदा कपटी लोग पर्दे की ओट में ऐसा कार्य करते हुए मिलते है, जिससे सम्बन्धित पक्षकार को भारी क्षति होती है। ऐसी स्थिति में सक्षम न्यायालय कम्पनी के पृथक अस्तित्व को नकारते हुए, उन लोगों की पहचान करने का प्रयास करता है जो कृत्रिम व्यक्ति की ओट में अवांछित कार्य करते हुए धन अर्जित करते हैं।

अतः न्यायालय द्वारा कम्पनी के पृथक अस्तित्व को नकारते हुए, दोषी पक्षकारों, यथा प्रवर्तकों, संचालकों या सदस्यों को सम्बन्धित पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराने की अवधारणा को ही कम्पनी का पर्दा उठाना या बेनकाब करने का सिद्धान्त कहा जाता है।

निम्नांकित दशाओं में कम्पनी को बेनकाब किया जा सकता है –

(A) वैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत –(Under statutory provisions) –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कम्पनी अधिनियम में निर्दिष्ट प्रावधानों के अन्तर्गत निम्नांकित परिस्थितियों में कम्पनी को बेनकाब करते हुए दोषी व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है :–

1. सदस्यों की न्यूनतम संख्या से कम संख्या होने पर – [Sec. 45]
(Incase of reduction in minimum number of Member)

सदस्यों की न्यूनतम संख्या , निजी कम्पनी की दशा में 2 एवं सार्वजनिक कम्पनी की दशा में 7 होती है। यदि कोई कम्पनी न्यूनतम सदस्या संख्या से कम संख्या होने के बावजूद भी छः महिने से अधिक अवधि के लिए कारोबार को चालू रखते है तो ऐसे सभी सदस्य, जिन्हें इस तथ्य की जानकारी हो, उस अवधि में उत्पन्न ऋणों के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने जाते है।

2. प्रविवरण में मिथ्याकथन की दशा में –
(Incase of Misrepresentation in prospectus) [Sec. 62]

विनियोगकर्त्ता, प्रविवरण में प्रकाशित सूचनाओं के आधार पर यह निर्णय लेते है कि अमुक कम्पनी में विनियोग करना है अथवा नहीं। अतः किसी प्रकार की भूल या मिथ्याकथन, विनियोजकों के हितों को प्रभावित कर सकता है। यदि किसी अंशधारी या ऋणपत्रधारी ने प्रविवरण में प्रदत्त गलत सूचना के आधार पर अंश या ऋणपत्र क्रय किये है जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धित अंशधारी या ऋणपत्रधारी को मौद्रिक क्षति हुई है तो इस क्षति की पूर्ति दोषी प्रवर्तकों को या संचालकों से की जा सकती हैं।

3. आवेदन राशि न लौटाने पर –
(Failure to refund application money) [Sec. 69 (5)]

यदि आवेदकों को प्रविवरण निर्गमन की तिथि से अगले 120 दिनों में अंशों का आवंटन नहीं किया जाता है तो अगले 10 दिनों में आवेदन पत्र के साथ प्राप्त राशि आवेदकों को लौटानी होती हैं। ऐसा न करने पर कम्पनी के सभी संचालक, संयुक्त एवं पृथक–पृथक, प्राप्त राशि, ब्याज सहित पुनर्भुगतान के लिए उत्तरदायी होंगे।

4. कम्पनी का गलत नाम लिखने या प्रकट न करने पर –
(Incase of non disclosure or misdescription of company's name) [Sec. 147]

प्रत्येक अनुबन्ध, प्रलेख या विनियम साध्य विलेख पर कम्पनी का नाम अंकित होता है। यदि किसी अधिकारी ने कम्पनी के नाम को प्रकट किये बिना अथवा गलत नाम पर, किसी विलेख पर अपने हस्ताक्षर किये है तो ऐसा अधिकारी सम्बन्धित पक्षकार के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

5. कपटपूर्ण व्यापार – (Fraudulent Trading) [Sec. 542]

यदा–कदा, कम्पनी के समापन के समय, निस्तारकों या लेनदारों या अंशदाताओं के माध्यम से न्यायालय को यह जानकारी मिलती है कि कम्पनी का संचालन लेनदारों के साथ धोखा करने की नियत से किया जा रहा था। इस सच्चाई का अहसास होने पर न्यायालय कम्पनी को बेनकाब करते हुए दोषी व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहरा सकता हैं।

6. सूत्रधारी कम्पनी और सहायक कम्पनी की दशा में –
(Incase of holding and subsidiary company)

राजनियम की दृष्टि में सूत्रधारी कम्पनी एवं सहायक कम्पनी का पृथक एवं स्वतंत्र अस्तित्व होता है। परन्तु कुछ दशाओं में सहायक कम्पनी के पृथक अस्तित्व को नकारते हुए न्यायालय उसे सूत्रधारी कम्पनी की एक शाखा या विभाग मान सकता है। यही नहीं बल्कि सूत्रधारी कम्पनी का यह कर्त्तव्य है कि सामान्य सभा में स्वयं के साथ–साथ सहायक कम्पनी या कम्पनियों का भी एकीकृत एवं पृथक–पृथक हिसाब (अंतिम खातें) प्रस्तुत करें।

7. असीमित दायित्व वाले संचालकों की दशा में (In case of directors with unlimited liability) [Sec. 322) – सामान्यतः संचालकों का दायित्व सीमित ही होता है परन्तु यदि संचालकों ने पार्षद सीमानियम के माध्यम से असीमित दायित्व को स्वीकार किया है तो ऐसी स्थिति में साझेदारों की तरह संचालकों को भी आवश्यकता पड़ने पर व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(B) न्यायिक अधिकारों के अन्तर्गत – (Under Judicial Interpretations)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सक्षम न्यायालयों ने भी विभिन्न मामलों में कम्पनी को बेनकाब करने का निर्णय देते हुए, दोषी अधिकारियों या संचालकों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया है :–

(1) आय की सुरक्षा (Protection of revenue) – जब कम्पनी की आड़ में

कुछ शरारती लोग कर दायित्वों से बचने का प्रयास करते हुए सरकारी आय को नुकसान पहुँचाते हैं तो न्यायालय कम्पनी को बेनकाब करते हुए, दोषी पक्षकारों को उत्तरदायी ठहरा सकता हैं।

(Sir Dinshaw Maneckjee Petit, Re, A.I.R. (1927) Bomb. 371]

(2) कपट और अनुचित आचरण की रोकथाम के लिए – (prevention of fraud or Improper conduct) – न्यायालय द्वारा कम्पनी का कल्पित पर्दा उस स्थिति में भी उठाया जा सकता है जब कम्पनी का संचालन लेनदारों को धोखा देने अथवा वैधानिक दायित्वों से बचने के उद्देश्य से चलाया जा रहा हो।

[Jones V/s Lipman (1962) All E.R. 342)

(3) जहां कम्पनी केवल छलावा हो - (Where a company is a sham) जहां कम्पनी के समामेलन का मुख्य प्रयोजन निर्दिष्ट सिद्धांतों का उल्लंघन या किसी अनुबन्ध से उत्पन्न दायित्व से बचने के लिए किया गया हो तो भी कम्पनी को बेनकाब किया जा सकता है।

(Gilford motor co. Ltd. V/s Horne, 1993 , Ch. 935 C.A.)

(4) वैधानिक दायित्वों से बचने के लिए (Company avoiding legal obligation) – जब कम्पनी के समामेलन का उद्देश्य विधि द्वारा निर्मित किसी कानून से बचने के लिए किया गया हो तो भी न्यायालय पर्दे के पीछे कार्य करने वाले लोगों का पता लगा सकता है और उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहरा सकता है।

(5) कम्पनी अंशधारियों के एजेन्ट या प्रन्यासी की तरह कार्य करे – (Company acting as agent or trustee of the share holders) – कम्पनी की कार्यप्रणाली अंशधारियों के एजेंट या प्रन्यासी की तरह नहीं होती है। यदि कम्पनी इस प्रकार का आचरण करती है तो एजेन्सी के नियमों के अनुसार स्वामी अर्थात् सदस्या या अंशधारी स्वतः ही अन्य पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हो जाते हैं।

(6) कम्पनी के वास्तविक चरित्र को निर्धारित करने हेतु –(Determination of real character of a company) – यद्यपि कम्पनी न तो किसी की मित्र होती है और न शत्रु। परन्तु यदा–कदा, परिस्थितिजन्य शत्रु का रूप ग्रहण कर लेती है। उस स्थिति में कम्पनी को बेनकाब करते हुए वास्तविक स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है।

(Daimler co. Ltd. V/s Continental Tyre and Rubber co. Ltd., (1916) 2 A. C. 307.)

(7) जब कम्पनी का कार्य जन नीति या जन हितों के विपरीत हो –

(Where the act conflicts with public opinion or public interest) – यदि कम्पनी की कार्यप्रणाली जनता के सामान्य हितों के विपरीत हो या लोक नीति के विरूद्ध हो तो न्यायालय कम्पनी के पृथक अस्तित्व को नकारते हुए दोषी व्यक्तियों को दण्डित कर सकता हैं।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. निगमित संस्था के सम्बन्ध में 'अविच्छिन्न उत्तराधिकार' क्या है ?
   (What is "Perpetual Succession" in relation to a corporate body ?) **(05 अंक)**
2. ''कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है।'' विवेचना कीजिये।
   ("Company is an artificial person"), Comment**.** **(05 अंक)**
3. 'कम्पनी अपने सदस्यों से पृथक अस्तित्व लिए हुए होती है।' व्याख्या कीजिये। (05 अंक)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

("A company has a separate legal entity from its members"), Comment

4. पृथक अस्तित्व के सम्बन्ध में 'सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी लि.' की विवेचना कीजिये। (05 अंक)

(Explain the case "Salomon V/s Salomon and company Ltd.) in reference to a separate legal entity.

5. ''कम्पनी विधान द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति, पृथक अस्तित्व, अविच्छिन्न उत्तराधिकार एवं सार्वमुद्रा से युक्त होती है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा कम्पनी की विशेषताएं बतलाइए।(15 अंक)

("A company is an artificial person created by law, having separate entity with a perpetual succession and a common seal." Discuss the above statement and explain the characteristics of a company.)

6. कम्पनी से आपका क्या अभिप्राय है ? कम्पनी के पर्दा उठाने के सिद्धांत की विवेचना कीजिये। (05 अंक)

(What do you mean by a company ? Explain the doctrine of a "Lifting of the corporate veil')

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय २ – कम्पनियों के प्रकार

(Kinds or Types of Companies)

कम्पनियों का विभाजन, विभिन्न आधारों पर, निम्नांकित तरीके से किया जा सकता है–

(A) समामेलन के आधार पर विभाजन –(Classification on the basis of incorporation) – इस दृष्टि से कम्पनी को निम्नांकित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **चार्टर्ड कम्पनियां (Chartered companies) -** एक कम्पनी जिसका समामेलन एवं निर्माण राजा या रानी द्वारा स्वीकृत रॉयल चार्टर के प्रावधानों के अनुसार होता है तो इसे चार्टर्ड कम्पनी कहा जाता है। जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी। ये कम्पनियां चार्टर द्वारा निर्धारित नियमों एवं उप–नियमों द्वारा शासित होती है।

(b) **वैधानिक कम्पनियां (Statutory Companies) -** ऐसी कम्पनियां जिनका निर्माण, केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा क्रमशः संसद या राज्य विधान सभाओं में 'विशेष अधिनियम' पारित करके किया जाता है तो इन्हें वैधानिक कम्पनियां कहा जाता हैं। ऐसी कम्पनियां किसी विशेष कार्य या उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए निर्मित की जाती हैं। जैसे– आर.बी.आई. (R.B.I.), एल.आई.सी. (L.I.C.), रेल्वे, विद्युत इत्यादि सेवाओं से सम्बन्धित कम्पनियां। इन कम्पनियों पर भी कम्पनी अधिनियम के प्रावधान लागू होते है बशर्ते कि वे विशिष्ट अधिनियम के प्रावधानों से असंगत (Inconsistent) न हो।

(c) **पंजीकृत कम्पनियां (Registered companies) -** ऐसी कम्पनियां, जो इस अधिनियम (कम्पनी अधिनियम, 1956) या किसी पूर्व कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्मित एवं पंजीकृत हो, पंजीकृत कम्पनियां कहलाती हैं। अधिकांश कम्पनियां इसी श्रेणी में आती हैं।

(B) दायित्व के आधार पर विभाजन – (Classification on the basis of Liability) – इस दृष्टि से कम्पनी को पुनः निम्नांकित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **अंशो द्वारा सीमित कम्पनियां [Sec. 12 (2) (a)] (Companies limited by shares)** – अंशों द्वारा सीमित कम्पनी तब मानी जाती है जब इस कम्पनी के सदस्यों का दायित्व, उनके द्वारा धारित अशों के अदत्त मूल्य की राशि तक सीमित हो। यदि अंश पूर्ण प्रदत्त है तो सदस्यों का कोई दायित्व नहीं होगा। दायित्व की उत्पत्ति कार्यकाल के दौरान अथवा समापन के समय हो सकती हैं। ये कम्पनियां सार्वजनिक एवं निजी, दोनों हो सकती है।

(b) **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियां (Companies Ltd. by guarantee) -** ऐसी कम्पनियां जिनके सदस्यों का दायित्व, उनके द्वारा दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होता है। इस दायित्व की उत्पत्ति कम्पनी के समापन के समय होती है। साथ ही ऐसी कम्पनियों को पंजीयन के समय अपने अन्तर्नियमों में सदस्यों की संख्या दर्शानी होती है।

(c) **असीमित दायित्व वाली कम्पनियां [Sec. 12 (2) (c)] Companies with un limited liability)** –जिस कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित नहीं होता है, असीमित दायित्व वाली कम्पनी कहा जाता है। ऐसी कम्पनी के सदयों का दायित्व साझेदारी फर्म में साझेदारों की तरह असीमित होता हैं।

(C) नियंत्रण के आधार पर विभाजन – (Classification on the basis of Control) – इस दृष्टि से कम्पनी को निम्नांकित दों भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **सूत्रधारी कम्पनियां [Sec. 4 (4)] (Holding Companies)** – एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की सूत्रधारी कम्पनी तब मानी जाती है जब दूसरी कम्पनी उस कम्पनी की सहायक हो। अधिक स्पष्ट शब्दों में जब एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी पर नियंत्रण हो तो उसे सूत्रधारी कम्पनी कहा जाता है।

(b)**सहायक कम्पनियां [Sec. 4 (1)] (Subsidiary Companies)** – एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की सहायक कम्पनी तब मानी जाती है जब दूसरी कम्पनी का उस कम्पनी के –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(1) संचालक मण्डल के गठन पर नियंत्रण हो अर्थात् लगभग सभी या अधिकांश संचालकों की नियुक्ति एवं हटाने का अधिकार सुरक्षित हो।

(2) आधे से अधिक समता अंशों पर अधिकार लिए हुए हो।

(3) वह कम्पनी किसी ऐसी कम्पनी की सहायक हो जो स्वयं किसी अन्य कम्पनी की सहायक हो।

जैसे – Y कम्पनी X कम्पनी की सहायक है तथा Z कम्पनी Y कम्पनी की सहायक है तो Z कम्पनी स्वतः ही 'X' कम्पनी की सहायक मानी जायेगी। साथ ही X कम्पनी Z कम्पनी की सूत्रधारी कम्पनी मानी जायेगी।

(D) स्वामित्व के आधार पर विभाजन – (Classification on the basis of Ownership) – इस दृष्टि से कम्पनी को मौटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **सरकारी कम्पनियां (Government Company)** – ऐसी कम्पनी जिसकी चुकता पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या एकाधिक राज्य सरकारों या केन्द्र एवं राज्य सरकारों के पास धारित किये हुए हो तो इसे सरकारी कम्पनी कहा जाता है।

(b) **गैर सरकारी कम्पनियां (Non government Companies)** – ऐसी कम्पनी जो सरकारी कम्पनी न हो, उसे गैर सरकारी कम्पनी कहा जाता है।

(E) सदस्यों की संख्या के आधार पर विभाजन – (Classification on the basis of Number of Members) – इस दृष्टि से कम्पनी को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **निजी कम्पनियां (Private Companies)** – ऐसी कम्पनियां जिसकी न्यूनतम चुकता पूंजी 1 लाख या इससे अधिक हो और अपने अन्तर्नियमों के द्वारा –

1. अपने अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती हो,
2. सदस्यों की संख्या अधिकतम 50 तक सीमित करती हो,
3. अंशों एवं ऋणपत्रों में अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण देने पर निषेध करती हो, और (Prohibition)
4. अपने सदस्यों, संचालकों एवं रिश्तेदारों को छोड़कर सार्वजनिक जमाएँ आमंत्रित करने पर निषेध करती हो।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संशोधित कम्पनी अधिनियम 2000 लागू होने के पश्चात् भी निजी कम्पनी की न्यूनतम चुकता पूंजी 1 लाख रूपये से कम है तो अगले 2 वर्षों में पूंजी में वांछित संशोधन करना होगा। ऐसा न करने पर रजिस्ट्रार ऐसी कम्पनी को धारा 560 के अन्तर्गत निष्क्रिय कम्पनी करार देते हुए रजिस्टर में से नाम हटा दिया जायेगा।

(b) **सार्वजनिक कम्पनियां (Government Companies)** – ऐसी कम्पनी जो –

1. निजी कम्पनी न हो,
2. जिसकी चुकता पूंजी न्यूनतम 5.00 लाख रूपये या इससे अधिक हो,
3. किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी हो।

(नोट :– विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया गया है।)

(F) कम्पनियों के अन्य प्रकार – (Other kinds of companies) –

(a) **एकल व्यक्ति या पारिवारिक कम्पनयिां (One man or family Company)** – ऐसी कम्पनी जिसकी अंशपूंजी का अधिकांश या लगभग पूरा भाग किसी एक व्यक्ति या परिवार द्वारा धारित किए हुए हो तो इसे एकल व्यक्ति या पारिवारिक कम्पनी कहा जाता है।

जैसे – सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी लि. (1897) ए.सी. 22

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(b) **गैर लाभ वाले संघ (Non Profit Association) (sec. 25)** – जब किसी कम्पनी का निर्माण केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी लाइसेंस द्वारा कला, वाणिज्य, शिक्षा, साहित्य, धर्म और किसी अन्य समाजोपयोगी सेवाओं के उन्नयन हेतु किया जाता हो, उसे गैर लाभ वाला संघ कहा जाता है। ऐसे संघो को यह घोषणा करनी पड़ती है कि संघ में उत्पन्न लाभ का उपयोग घोषित उद्देश्यों को बढ़ावा देने हेतु किया जायेगा और उसका विभाजन सदस्यों के बीच नहीं किया जायेगा।

(c) **निष्क्रिय कम्पनी (Defunt Company)** – ऐसी कम्पनी जिसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में दर्ज हो परन्तु कम्पनी के माध्यम से कोई कार्य न किया जा रहा हो तो इसे निष्क्रिय कम्पनी कहा जाता है। ऐसी कम्पनी का निस्तारण Sec. 560 के द्वारा किया जाता है जिसके तहत् निर्धारित विधि की अनुपालना करते हुए कम्पनी का नाम रजिस्टर में से हटा दिया जाता है जो कम्पनी के विघटन की तरह माना जाता है।

(d) **विदेशी कम्पनी (Foreign Company)** – ऐसी कम्पनी जिसका निर्माण एवं समामेलन भारत के बाहर हुआ हो परन्तु भारतीय सीमा में कार्यरत हो, विदेशी कम्पनी कहा जाता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि यदि किसी विदेशी कम्पनी की चुकता पूंजी का कम से कम 50 प्रतिशत भाग भारतीय कम्पनी/कम्पनियों या निगमित संस्था/संस्थाओं के पास हो तो उस पर भारतीय कम्पनियों की तरह प्रावधान लागू होंगे।

(e) **अवैध संघ (Illegal Association)** – अवैध संघ तब माना जाता है जब बैंकिग कारोबार करने वाली संस्था में 10 से अधिक एवं अन्य कारोबार की दशा में 20 से अधिक सदस्य हो और उसका विधिवत समामेलन नहीं हुआ हो तो इसे अवैध संघ कहा जाता है। ऐसे संघों द्वारा अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी क्या है ?
   (What is a company limited by Guarantee ?) (05 अंक)
2. सूत्रधारी कम्पनी एवं सहायक कम्पनी से आपका क्या अभिप्राय है ?
   (What do you mean by holding company & a subsidiary company ?) (05 अंक)
3. 'एकल कम्पनी' से आपका क्या अभिप्राय है ? (05 अंक)
   (What do you mean by a 'One man Company' ?)
4. निष्क्रिय कम्पनी की विवेचना कीजिये। (05 अंक)
   (Comment over the defunct company).
5. गैर लाभ वाले संघ या लाइसेंस कम्पनी को स्पष्ट कीजिये। (05 अंक)
   (Explain the non profit association or licence company)
6. कम्पनी के विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में विवेचन कीजिये। (15 अंक)
   (Explain in brief, the various kinds of the companies)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय 3 - निजी कम्पनी

(Private Company)

(A) अर्थ एवं विशेषताएँ – (Meaning and Characteristics) – निजी कम्पनी से अभिप्रायः ऐसी कम्पनी से है जिसकी न्यूनतम चुकता पूंजी एक लाख रूपया या उससे अधिक हो और अपने अन्तर्नियमों के द्वारा–

1. अंशो के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती हो ,
2. सदस्यों की संख्या अधिकतम 50 तक सीमित करती हो,

   अधिकतम संख्या में निम्नाकिंत सदस्यों को सम्मिलित नहीं किया जाता है–

   अ. ऐसे व्यक्ति जो सदस्य होने के साथ–साथ कम्पनी के कर्मचारी हो।

   ब. ऐसे व्यक्ति जो भूतकाल में कर्मचारी के साथ–साथ सदस्य रहे हो और वर्तमान में कर्मचारी न होते हुए भी सदस्य हो।
3. कम्पनी के अंशों एवं ऋणपत्रों में अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण देने पर निषेध लगाती हो, और
4. अपने सदस्यों, संचालकों एवं रिश्तेदारों को छोड़कर सार्वजनिक जमाएँ आमंत्रित करने पर निषेध करती हो।

जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्ति एक या एकाधिक अंशों के धारक हो तो इस परिभाषा के अन्तर्गत उन्हें एक ही सदस्य माना जायेगा। [Sec. 3 (i) (iii)]

साथ ही निजी कम्पनी को अपने नाम के पीछे प्राईवेट लि. शब्द प्रयुक्त करना होगा, अन्यथा उसके साथ सार्वजनिक कम्पनी की तरह व्यवहार किया जाएगा। [Sec.13(i) (a)]

निजी कम्पनी की विशेषताएँ

निजी कम्पनी की विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

(1) **न्यूनतम चुकता पूंजी**–कम्पनी संशोधित अधिनियम 2000 के अनुसार प्रत्येक निजी कम्पनी की न्यूनतम चुकता पूंजी 1 लाख रूपये या अधिक (जो अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट हो) होनी चाहिए। यदि इस अधिनियम के लागू होने के अगले 2 वर्ष में इस शर्त को पूरा नहीं किया जाता है तो उसे निष्क्रिय कम्पनी (धारा 560) मानते हुए सदस्यों के रजिस्टर में से उसका नाम काट दिया जाता हैं।

(2) **अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध**– निजी कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबनध लगाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अंशों का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता बल्कि अन्तर्नियमों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के तहत ही हस्तांतरण सम्भव है। दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक कम्पनी के अंशों की तरह स्वतंत्रतापूर्वक हस्तांतरण नहीं किया जा सकता। वस्तुतः इस प्रतिबन्ध का मुख्य प्रयोजन सदस्यों की अधिकतम संख्या को अक्षुण बनाये रखना हैं।

(3) **सदस्यों की संख्या पर प्रतिबन्ध** – निजी कम्पनी में सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 एवं न्यूनतम 2 होती है। न्यूनतम एवं अधिकतम संख्या का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यह प्रतिबन्ध ऋणपत्रधरियों पर लागू नहीं होता है, यद्यपि निजी कम्पनी की दशा में ऋणपत्र क्रय करने हेतु भी जनता को निमंत्रण नहीं दिया जा सकता।

(4) **जनता को निमंत्रण पर निषेध** – निजी कम्पनी द्वारा अंशों एवं ऋणपत्रों में अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः इस निमंत्रण पर निषेधात्मक प्रतिबन्ध होता है। निजी कम्पनी अपने ही साधनों पर आश्रित होती है। जिसकी व्यवस्था सदस्यों, संचालकों, मित्रों एवं रिश्तेदारों द्वारा की जाती है।

(5) **सार्वजनिक जमाएँ आमंत्रित करने पर निषेध** – निजी कम्पनी संशोधित कम्पनी अधिनियम 2000 के पश्चात् सार्वजनिक जमाओं हेतु जनता को आमंत्रित नहीं कर सकती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(6) **अन्तर्नियमों में उल्लेख** – निजी कम्पनी के लिए कम्पनी अधिनियम की धारा 3 (i) (iii) की अनुपालना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि अन्तर्नियमों में इन प्रतिबन्धों का उल्लेख भी अनिवार्य हैं। अर्थात् दोनों शर्तें पूरी होना अनिवार्य हैं।

(7) **'प्राईवेट लिमिटेड' शब्द प्रयुक्त करना** – प्रत्येक निजी कम्पनी को अपने नाम के पीछे 'प्राईवेट लि.' शब्द प्रयुक्त करना होगा ताकि जनसाधारण को भी कम्पनी की प्रकृति के सम्बन्ध में जानकारी हो जाये।

निजी कम्पनी एवं सार्वजनिक कम्पनी में अन्तर

अंतर का आधार	निजी कम्पनी	सार्वजनिक कम्पनी
1. न्यूनतम संख्या	दो	सात
2. अधिकतम संख्या	पचास	कोई सीमा नहीं
3. संचालकों की संख्या	कम से कम 2 संचालक होने आवश्यक हैं।	कम से कम 3 संचालक होने आवश्यक हैं।
4. अंशों का हस्तांतरण	अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध होता है।	हस्तांतरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।
5. कोरम	कम से कम 2 सदस्य सभा की कार्यवाही के लिये अनिवार्य है।	कम से कम 5 सदस्य सभा की कार्यवाही के लिये अनिवार्य है।
6. प्रबन्धकीय पारिश्रमिक	प्रबन्धकीय पारिश्रमिक पर कोई प्रतिबन्ध नहीं।	प्रबन्धकीय पारिश्रमिक शुद्ध लाभों के 11 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता।
7. जनता को निमंत्रण	अपने अंशों एवं ऋणपत्रों के क्रय हेतु जनता को निमंत्रण नहीं दिया जा सकता।	सार्वजनिक कम्पनी अपने अंशों एवं ऋणपत्रों के क्रय हेतु जनता को निमंत्रण दे सकती है।
8. न्यूनतम चुकता पूंजी	न्यूनतम चूकता पूंजी 1 लाख या अधिक, जो अन्तर्नियमों द्वारा निर्दिष्ट हो।	न्यूनतम चुकता पूंजी 5 लाख या अधिक जो अन्तर्नियमों द्वारा निर्दिष्ट हो।
9. सार्वजनिक जमाएं	सार्वजनिक जमाएं प्राप्त करने हेतु जनता को निमंत्रण नहीं दिया जा सकता।	सार्वजनकि जमाओं हेतु जनता को निमंत्रण दिया जा सकता है।
10. प्रविवरण जारी करना	पूंजी अभिदान हेतु प्रविवरण जारी नहीं किया जा सकता।	पूंजी अभिदान हेतु प्रविवरण या स्थानापन्न जारी करना अनिवार्य है।
11. व्यवसाय प्रारम्भ करना	समामेलन का प्रमाणपत्र प्राप्त होते ही निजी कम्पनी अपना कारोबार चालू कर सकती है।	सार्वजनिक कम्पनी अपना कारोबार तब तक प्रारम्भ नहीं कर सकती जब तक कि व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त न हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12. अशों का आबंटन	अंशों के आबंटन हेतु न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी करना अनिवार्य नहीं है।	न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी किये बिना, अंशों का आबंटन नहीं किया जा सकता।
13. योग्यता अंश	संचालकों के लिए 'योग्यता अंश' सम्बन्धी प्रावधान लागू नहीं होते हैं।	यदि अन्तर्नियमों में योग्यता अंश सम्बन्धी शर्त हो तो इसकी पालना अनिवार्य है।
14. निवृतमान संचालक	1/3 संचालकों का प्रतिवर्ष पारी से निवृत्त होना आवश्यक नहीं है।	यदि संचालकों की नियुक्ति सामान्य सभा में धारा 255 के अन्तर्गत हुई है तो 2/3 संचालकों का 1/3 भाग प्रतिवर्ष पारी से निवृत्त होना अनिवार्य है।
15. नये संचालकों की नियुक्ति	कोई भी व्यक्ति जो नये संचालक के रूप में नियुक्ति का दावेदार हो, उसे सभा के कम से कम 14 दिन पूर्व कम्पनी को विशेष सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है।	निवृत्तमान संचालक को छोड़कर नये संचालकों की नियुक्ति हेतु कम से कम 14 दिन पूर्व विशेष सूचना कम्पनी को देना अनिवार्य है।
16. संचालकों की संख्या में वृद्धि	यदि अन्तर्नियमों में प्रतिबन्ध न हो तो संचालकों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।	केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना 12 से अधिक संचालकों की संख्या नहीं कर सकती।
17. अंतर्नियमों की अनिवार्यता	प्रत्येक निजी कम्पनी को पार्षद अन्तर्नियम प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।	अन्तर्नियमों की अनिवार्यता नहीं है। ऐसी स्थिति में तालिका अ के प्रावधान लागू होंगे।
18. पार्षद सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ता	कम से कम दो व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने अनिवार्य है।	पार्षद सीमानियम पर कम से कम सात व्यक्तियों के हस्ताक्षर अनिवार्य है।
19. अंश अधिपत्र	निजी कम्पनी द्वारा अंश प्रमाणपत्र के बदलें में अंश अधिपत्र जारी नहीं किया जा सकता।	केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति से पूर्ण प्रदत्त अंशों के बदले में अंश अधिपत्र जारी किया जा सकता है।
20. प्राईवेट लि. शब्द का प्रयोग	निजी कम्पनी को अपने नाम के पीछे प्राईवेट लिमिटेड शब्द प्रयुक्त करना होता है।	सार्वजनिक कम्पनी को अपने नाम के पीछे केवल लिमिटेड शब्द प्रयुक्त करना होता है।
21. संचालकों से ऋण	संचालकों को ऋण स्वीकृत करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।	केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना संचालकों को ऋण स्वीकृत नहीं किया जा सकता।
22. वैधानिक सभा	निजी कम्पनी के लिए वैधानिक सभा की कोई आवश्यकता नहीं।	वैधानिक सभा एवं वैधानिक रिपोर्ट, दोनों ही अनिवार्य होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

23. मतदान का अधिकार	एक सदस्य (यदि सदस्यों की संख्या 7 से कम हो) या दो सदस्य मतदान की मांग कर सकते है।	कम से कम 5 सदस्य या प्रोक्षी, मतदान की मांग कर सकते हैं।
24. संचालक मण्डल के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के अधिकार	केन्द्रीय सरकार न तो संचालकों की नियुक्ति कर सकती है और न हटा सकती है।	केन्द्रीय सरकार, इच्छानुसार संचालक मण्डल में परिवर्तन कर सकती है।

निजी कम्पनी का सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तन

(Conversion of Private Company into Public Company)

निम्नाकिंत तरीके से निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी में बदला जा सकता है–

(A) अन्तर्नियमों में उल्लघंन द्वारा परिवर्ततन (Conversion by voilation of Articles) [Sec. 43] - यदि कोई निजी कम्पनी, अधिनियम की धारा 3 (i) (iii) की अनुपालना नहीं करती है तो उसे निजी कम्पनी के रूप में प्राप्त विशेषाधिकार समाप्त हो जाते हैं और उस पर सार्वजनिक कम्पनी के प्रावधान लागू हो जाते हैं।

परन्तु कभी–कभी अनजाने में अथवा त्रुटिवश या उचित कारणों से उक्त धारा का उल्लघंन हो जाता है तो केन्द्रीय सरकार की सन्तुष्टि पर निजी कम्पनी को क्षम्य किया जा सकता है। उस स्थिति में निजी कम्पनी अपने मूल स्वरूप में या कुछ प्रतिबन्धों के साथ निजी कम्पनी ही बनी रहती है।

(B) इच्छा से परिवर्तन (Conversion by choice) [Sec. 44] - यदि निजी कम्पनी स्वेच्छा से सार्वजनिक कम्पनी बनना चाहे तो इस आशय का 'विशेष प्रस्ताव' अधिनियम की धारा 3 (i) (iii) में परिवर्तन हेतु साधारण सभा में पारित किया जाता है। तत्पश्चात् अगले 30 दिनों में परिवर्तित अन्तर्नियम रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत करना पड़ता है। संक्षेप में प्रक्रिया इस प्रकार हैं –

1. सर्वप्रथम सदस्यों की न्यूनतम संख्या 7 एवं संचालकों की न्यूनतम संख्या 3 करनी होती हैं।
2. अन्तर्नियमों में दर्शाये हुए उन प्रावधानों में परिवर्तन करना होता है जो सार्वजनिक कम्पनी के लिए असंगत हो।
3. प्रस्ताव पारित होने के अगले 30 दिनों में प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना पड़ता है।
4. समामेलन का नया प्रमाणपत्र प्राप्त करने हेतु रजिस्ट्रार को आवेदन करना एवं प्रमाणपत्र प्राप्त करना।
5. अंत में कम्पनी को प्रपत्रों, प्रलेखों, नाम इत्यादि में आवश्यक संशोधन करने होते हैं।

सार्वजनिक कम्पनी का निजी कम्पनी में परिवर्तन

(Conversion of Public Company into Private Company)

यदि सार्वजनकि कम्पनी से निजी कम्पनी में परिवर्तन करना हो तो सर्वप्रथम विशेष प्रस्ताव पारित करते हुए अधिनियमों की धारा 3 (i) (iii) की शर्तों को अंगीकार किया जाता है। तत्पश्चात् केन्द्रीय सरकार द्वारा परिवर्तन हेतु पारित प्रस्ताव को अनुमोदित किया जाता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव की प्रति एवं परिवर्तित अन्तर्नियम, अगले 30 दिनों में रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत करने पड़ते हैं। अन्ततः रजिस्ट्रार कम्पनी को समामेलन का नया प्रमाणपत्र जारी कर देता है और कम्पनी आवश्यकतानुसार नाम एवं प्रलेखों में आवश्यक परिवर्तन कर देती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. निजी कम्पनी से आपका क्या अभिप्राय है ?

   (What is meant by a Private Company ?) (05 अंक)

2. निजी कम्पनी में सदस्यों की संख्या की गणना कैसे की जाती है ?

   (How the members in a Private Company are calculated ?) (05 अंक)

3. निजी कम्पनी को पारिभाषित कीजिए। निजी कम्पनी एवं सार्वजनिक कम्पनी में अन्तर कीजिए। (15 अंक)

   (Define a Private Company. Distinguish between Private and Public Company.)

4. निजी कम्पनी क्या है ? निजी कम्पनी को प्राप्त विशेषाधिकारों की विवेचना कीजिए। (15 अंक)

   (What is a Private Company? Describe the privileges which are given to a Private Company).

5. निजी कम्पनी को पारिभाषित कीजिए। निजी कम्पनी का सार्वजनिक कम्पनी एवं सार्वजनिक कम्पनी का निजी कम्पनी में परिर्वतन कैसे किया जाता है? (15 अंक)

   (Define a Private Company. How can a Private Company be converted into Public Company and vice-versa?)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय ४ – प्रवर्तन एवं पंजीयन

(Promotion and Registration)

कम्पनी का निर्माण करना एवं कार्य प्रारम्भ करना, अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस प्रयोजनार्थ प्रवर्तकों को अनेकानेक कार्य करने पड़ते है और कई चरणों में से गुजरना होता हैं। मोटे तौर पर निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को निम्नांकित चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

(a) प्रर्वतन अवस्था

(b) समामेलन अवस्था और

(c) पूंजी अभिदान अवस्था और

(d) व्यवसाय प्रारम्भ करने की अवस्था।

यहां यह उल्लेखनीय है कि निजी कम्पनी को केवल पहले की दो अवस्थाओं से गुजरना होता है जबकि सार्वजनिक कम्पनी को उक्त चारों अवस्थाएं पूरी करनी होती है जिनका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है :–

(A) प्रवर्तन अवस्था – (Promotion Stage) – जैसे ही कम्पनी के निर्माण का विचार मस्तिष्क में प्रवेश करता है, उसी समय प्रवर्तन अवस्था प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में संलग्न व्यक्तियों को अनेकों कार्य करने होते हैं। ये लोग कम्पनी के निर्माण की योजना बनाते है और आवश्यक संसाधन जुटाते हुए कम्पनी का बीजारोपण करते है। मूलतः यह गर्भाधान की अवस्था है जिसमें गर्भ ठहरने से लेकर प्रसव तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सम्मिलित किया जाता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कम्पनी के निर्माण से सम्बन्धित प्रारम्भिक कार्यों की सम्पूर्ण श्रृंखला को ही प्रवर्तन अवस्था कहा जाता है।

प्रवर्तन का शाब्दिक अर्थ है – प्रारम्भ करना। वस्तुतः यह एक व्यापक शब्द है जो कम्पनी के विचार से प्रारम्भ होता है और तब तक चलता रहता है जब तक कि कम्पनी अस्तित्व में न आ जाये।

गर्स्टनबर्ग (Gestenberg) के अनुसार, ''प्रवर्तन का तात्पर्य व्यावसायिक अवसरों की खोज करना, तत्पश्चात् लाभ कमाने के उद्देश्य से पूंजी सम्पत्ति तथा प्रबन्धकीय योग्यता को एक व्यावसायिक इकाई के रूप में संगठित करना है।''

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है कि किसी व्यक्ति या समूह द्वारा किये जाने वाले सम्पूर्ण प्रयास, जिन प्रयासों से कम्पनी का निर्माण होता है, उन प्रयासों की सम्पूर्ण श्रृंखला को ही प्रवर्तन अवस्था कहा जाता है।

प्रवर्तन अवस्था में निम्नांकित कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता हैं –

1. कम्पनी के निर्माण की कल्पना करना।
2. प्रस्तावित कम्पनी की प्रकृति एवं क्षेत्र का निर्धारण।
3. विशेषज्ञों से सलाह–मशविरा करना।
4. प्रारम्भिक अनुबन्ध करना।
5. कम्पनी का नाम निर्धारित करना।
6. कम्पनी की पूंजी एवं उद्देश्यों का निर्धारण।
7. सदस्यों एवं संचालकों का चयन।
8. पंजीकृत कार्यालय का निर्धारण।
9. कानूनी सलाहकारों, यथा – बैंकर, दलाल, अंकेक्षक इत्यादि सुनिश्चित करना।
10. आवश्यक प्रलेख तैयार करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11. आवयश्क प्रलेख रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना।

12. प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण तैयार करना।

13. अभिगोपकों एवं दलालों की नियुक्ति।

14. न्यूनतम अभिदान की राशि सुनिश्चित करना।

15. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों को सूचियन हेतु आवेदन करना।

16. समामेलन का प्रमाण पत्र प्राप्त करना।

17. व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त करना।

व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह जो उक्त कार्यों को निष्पादित करते हैं, उन्हें प्रवर्तक कहा जाता है।

धारा 62 (6) के अनुसार, ''प्रवर्तक का आशय ऐसे प्रवर्तक से है जो प्रविवरण या उसके किसी भाग के निर्माण से सम्बन्धित था परन्तु ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित नहीं किया जाता है जिसने प्रवर्तकों की ओर से पेशेवर व्यक्ति के रूप में सेवाएँ प्रदान की हो।''

इस प्रकार, ऐसे प्रथम व्यक्तियों या समूह जो कम्पनी के मामलों को नियंत्रित करते हैं, प्रवर्तक कहलाते है। ये वही व्यक्ति हैं जो कम्पनी के विचार को अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित करते हुए साकार रूप प्रदान करते हैं। ये वही उद्यमी हैं जिन्होंने अपने प्रयासों के द्वारा भीमकाय कृत्रिम व्यक्ति को जन्म दिया हैं।

(B) समामेलन अवस्था – (Incorporation Stage) – यह कम्पनी के निर्माण की द्वितीय अवस्था है। इसी अवस्था के माध्यम से कम्पनी का जन्म होता है, अतः यह कम्पनी के जन्मदिन (Birthday) की अवस्था हैं। इस अवस्था के पूरा होते ही कम्पनी अपना भिन्न आकार ग्रहण करती है। कम्पनी का समामेलन होते ही उसका अस्तित्व अभिदाताओं से पृथक हो जाता है और अविच्छिन्न उत्तराधिकार की स्थिति पैदा होती है।

सुविधा की दृष्टि से इस अवस्था को निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) **प्रारम्भिक कार्यवाही (Preliminary Requirements)** – जन्म का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने से पूर्व किये गये सम्पूर्ण कार्यों को प्रारम्भिक कार्यवाही के नाम से जाना जाता है। इसमें इन कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है –

1. **पंजीकृत कार्यालय का निर्धारण** – यदि पंजीकृत कार्यालय का निर्धारण नहीं किया गया है तो उस राज्य का निर्धारण अवश्य होना चाहिए, जहां कम्पनी का पंजीयन किया जायेगा।

2. **कम्पनी का नाम निर्धारित करना** – इस हेतु प्रवर्तकों के द्वारा चार नाम, रजिस्ट्रार के सन्मुख प्रस्तुत करने होते हैं। रजिस्ट्रार प्राप्त नामों पर विचार करते हुए, उपलब्ध नाम, अगले 7 दिनों में प्रवर्तकों को सौंपता है। प्रवर्तक निर्दिष्ट नाम का उपयोग अगले 6 माह के भीतर कर सकते हैं।

3. **संचालकों की पहचान संख्या प्राप्त करना** – कम्पनी मामलों के मंत्रालय द्वारा जारी दिशा निर्देश के अनुसार प्रवर्तकों को चाहिए कि संचालकों की पहचान संख्या प्राप्त करले। यदि प्रवर्तकों ने ई–फॉर्म द्वारा नाम प्राप्ति हेतु आवेदन किया है तो उन्हें डिजीटल सिग्नेचर (Digital Signature) भी प्राप्त करने होंगे। तभी समामेलन की प्रक्रिया आगे बढ़ सकती है।

4. **पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियमों का मसौदा तैयार करना** – कम्पनी के समामेलन हेतु आवेदन पत्र के साथ उक्त दोनों प्रलेख प्रस्तुत करने होते हैं। यद्यपि सार्वजनिक कम्पनी के लिए अन्तर्नियम तैयार करने की बाध्यता नहीं है क्योंकि इसके अभाव में सारणी– 'अ' के प्रावधान स्वतः ही लागू होंगे।

5. **मसौदों की जांच करवाना** – यह प्रवर्तकों के हित में होगा कि उक्त दोनों प्रलेख, अंतिम रूप से प्रस्तुत करने से पूर्व रजिस्ट्रार से उनकी जांच करवा ले ताकि विद्यमान त्रुटियों का मुद्रण से पूर्व ही समाधान किया जा सके।

6. **मुद्रण करना एवं मुद्रांक चिपकाना – (Printing & Stamping)** –रजिस्ट्रार द्वारा जांच करवाने के पश्चात् उक्त दोनों प्रलेखों का मुद्रण भी करवाया जाता है। साथ ही आवश्यक मुद्रांक लगाया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **अभिदाताओं के हस्ताक्षर प्राप्त करना** – पार्षद सीमानियम के संघ वाक्य में, निजी कम्पनी की दशा में कम से कम 2 एवं सार्वजनिक कम्पनी की दशा में कम से कम 7 अभिदाताओं के हस्ताक्षर, पूर्ण विवरण सहित, लेने होते हैं। यदि कोई अभिदाता उपस्थित न हो तो मुख्यतारनामें **(Power of Attorney)** द्वारा अपनी ओर से किसी अन्य व्यक्ति को हस्ताक्षर हेतु अधिकृत कर सकता है।

8. **न्यूनतम अभिदान की राशि सुनिश्चित करना**– यह प्रवर्तकों का कर्त्तव्य है कि न्यूनतम अभिदान की राशि सुनिश्चित करें क्योंकि न्यूनतम अभिदान की राशि प्राप्त हुए बिना सार्वजनिक कम्पनी अपने अंशों का आबंटन नहीं कर सकती।

9. **वैधानिक घोषणा तैयार करना** – इस बात की घोषणा कि पंजीयन से सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों की अनुपालना की गई है। यह घोषणा सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के अधिवक्ता, या एटोर्नी या भारत में कार्यरत् पूर्णकालिक सचिव या चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट जो कम्पनी के निर्माण से सम्बन्धित हो अथवा कम्पनी के संचालक अथवा सचिव अथवा प्रबन्धक द्वारा की जाती है। [Sec. 33 (2)]

(b) **प्रपत्रों की सुपुर्दगी (Delivery of documents)** द्वितीय चरण में, प्रारम्भिक कार्यवाही पूर्ण होने के पश्चात् प्रवर्तकों को निम्नांकित प्रपत्र रजिस्ट्रार के सन्मुख प्रस्तुत करने होंगे।

1. **पार्षद सीमानियम** – यह प्रपत्र तीन प्रतियों में प्रस्तुत किया जायेगा जिनमें एक प्रति पर उचित स्टॉम्प लगा हुआ होना चाहिये। सभी प्रतियां, अभिदाताओं के द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिये, साथ ही अभिदाताओं के हस्ताक्षर साक्षी द्वारा प्रमाणित भी होने चाहिये।

2. **पार्षद अन्तर्नियम** – सीमानियम की तरह अन्तर्नियम भी तीन प्रतियों में तैयार किया जायेगा। इस प्रपत्र पर भी उन्हीं अभिदाताओं के हस्ताक्षर होने चाहिये जिन्होंने सीमानियम पर हस्ताक्षर किये हैं। एक प्रति पर उचित स्टॉम्प भी लगा हुआ होना चाहिये।

3. **प्रारम्भिक अनुबन्धों की प्रति –** आवेदन पत्र के साथ महत्वपूर्ण अनुबन्धों की प्रतियां भी साथ में संलग्न करनी होगी। इसी प्रकार प्रबन्धकीय कर्मचारियों की नियुक्ति का अनुबन्ध भी संलग्न करना होगा।

4. **संचालकों की सूची** – पंजीयन के समय, सार्वजनिक कम्पनी को उन संचालकों की सूची भी प्रस्तुत करनी होगी जिनका नाम प्रथम संचालक के रूप में पार्षद अन्तर्नियमों में दर्शाया गया है और जो प्रथम संचालक बनने के लिए सहमत है। अन्यथा पार्षद सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ताओं को प्रथम संचालक मान लिया जायेगा। (Sec. 254)

5. **संचालकों की लिखित सहमति एवं विवरण** – संचालकों की सूची के साथ–साथ उनकी लिखित सहमति भी लेनी होगी कि वे संचालक बनने के लिये सहमत है। साथ ही संचालकों का पता, व्यवसाय, आयु, राष्ट्रीयता इत्यादि के सम्बन्ध में भी जानकारी देनी होगी। यह अनिवार्यता निजी कम्पनी में नहीं है।

6. **योग्यता अंश लेने की घोषणा** (Sec. 266) – यदि कम्पनी में योग्यता अंश लेने सम्बन्धी प्रतिबन्ध हो तो इच्छुक संचालकों को यह भी घोषणा करनी होगी कि वे निर्धारित योग्यता अंश लेने एवं उनका भुगतान करने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

7. **उपलब्ध नाम की प्रति** – रजिस्ट्रार की ओर से कम्पनी के जिस नाम पर सहमति हुई है, इसकी प्रति भी आवेदन पत्र के साथ संलग्न करनी होगी।

8. **शुल्क की रसीद** – अन्य प्रपत्रों के साथ–साथ फीस की रसीद जो अधिकृत पूंजी के आधार पर निर्धारित की जाती है और भारत सरकार के खाते में जमा होती है, की प्रति भी संलग्न करनी होगी।

9. **वैधानिक घोषणा** – प्रारम्भिक कार्यवाही में प्रवर्तकों के द्वारा जो वैधानिक घोषणा तैयार की गई है, उसकी प्रति भी आवेदन पत्र के साथ अनिवार्यतः प्रस्तुत करनी होगी।

(c) **प्रलेखों की जांच (Scrutiny of documents)** जब सभी आवश्यक प्रलेख रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत कर दिये जाते है तो रजिस्ट्रार इस बात की जांच करता है और सुनिश्चित करता है कि विधिक प्रक्रिया के तहत सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्ण कर ली गई है। रजिस्ट्रार चाहे तो वैधानिक घोषणा को भी पूर्णता का आधार मान सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(d) **कम्पनी का समामेलन (Incorporation of the company)** रजिस्ट्रार, प्रस्तुत प्रलेखों से सन्तुष्ट होने पर उन प्रलेखों को पंजीकृत करते हुए अपने पास रख लेता है और बदले में 'समामेलन का प्रमाणपत्र' **(a certificate of incorporation)** जारी कर देता है। (Sec. 33 (3))

इस प्रमाणपत्र के माध्यम से रजिस्ट्रार अपने हस्ताक्षर के अधीन यह प्रमाणित करता है कि कम्पनी का समामेलन हो गया है और सीमित दायित्व की दशा में, यह एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी है। (Sec. 34 (1))

समामेलन का प्रमाण–पत्र इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण **(Conclusive evidence)** है कि कम्पनी के निर्माण से सम्बन्धित सम्पूर्ण वैधानिक प्रावधानों की अनुपालना कर ली गई है और कुछ भी जांच का विषय शेष नहीं है। साथ ही 'समामेलन के प्रमाणपत्र' को किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती। (Sec. 35) इसकी पुष्टि निम्नांकित मुकदमें के आधार पर भी हो रही है :–

"Moosa Goolam Ariff V/s Ebrahim Goolam Arif"

कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर दो वयस्क व्यक्ति एवं पांच अवयस्क व्यक्तियों की ओर से एक संरक्षक द्वारा अलग–अलग हस्ताक्षर किये गये थे जो कि गलत थे। रजिस्ट्रार ने अपने हस्ताक्षर के अधीन समामेलन का प्रमाणपत्र जारी कर दिया। वादी ने वाद प्रस्तुत करते हुए प्रमाण–पत्र को निरस्त करने की मांग की।

सुनवाई करते हुए लॉर्ड मेकनाट्न ने कहा, ''यद्यपि समामेलन की प्रक्रिया विधि अनुसार नहीं है, न्यूनतम सात सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए, वे नहीं हैं अतः समामेलन नहीं होना चाहिए था। परन्तु जब प्रमाणपत्र जारी हो गया तो उसे सभी प्रयोजनों के लिए प्रामाणिक माना जायेगा।''

पुनः इस बात की पुष्टि, ''Jubilee Cotton Mills Ltd. V/s Lewis (1924) A.C. 958 के माध्यम से की गई। 6 जनवरी को आवश्यक प्रलेख रजिस्ट्रार के सन्मुख प्रस्तुत किये गये। दो दिन पश्चात् समामेलन का प्रमाणपत्र जारी किया गया जिस पर तारीख 6 जनवरी ही डाली गई। 6 जनवरी को कुछ अंश लेविस के नाम आबंटित किये गये। जबकि वास्तविक समामेलन 8 जनवरी को होना चाहिए था।

प्रश्न यह पैदा हुआ कि क्या आवंटन को निरस्त माना जाएँ ?

विद्वान न्यायाधीन ने मामले की सुनवाई करते हुए कहा कि विधान की दृष्टि से कम्पनी का समामेलन इसी तारीख से माना जाएगा जिसका उल्लेख प्रमाणपत्र में है। अतः आबंटन को निरस्त नहीं किया जा सकता।

समामेलन का प्रमाणपत्र निम्नांकित मामलों में निश्चयात्मक प्रमाण माना जायेगा –

1. कम्पनी के पंजीयन से सम्बन्धित सभी वैधानिक प्रावधान जो आवश्यक एवं सहायक है, की अनुपालना कर ली गई है।
2. व्यक्तियों का समूह, कम्पनी के रूप में पंजीकृत करने योग्य है और उसका पंजीकरण कर लिया गया है।
3. प्रमाणपत्र पर दर्शायी गई तिथि ही समामेलन की तिथि मानी जायेगी।

(C) पूंजी अभिदान की अवस्था– (Capital Subscription Stage)– सार्वजनिक कम्पनी को दो और अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिसमें एक पूंजी अभिदान की अवस्था है। यदि कम्पनी की चाहत यह है कि उसे पूंजी की व्यवस्था हेतु जनता को निमंत्रण देने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् पूंजी की व्यवस्था संचालकों, सदस्यों, सम्बन्धियों या मित्रों से करनी है तो पूंजी प्राप्ति हेतु 'प्रविवरण' (Prospectus) निर्गमन करने की आवश्यकता नहीं होती है। तब प्रविवरण के स्थान पर एक अन्य प्रलेख, आबंटन के कम से कम तीन दिन पूर्व, रजिस्ट्रार के यहाँ प्रस्तुत करना पड़ता है जिसे 'स्थानापन्न प्रविवरण' (A statement in Lieu of Prospectus) कहा जाता है।

जनता से पूंजी प्राप्त करने की दशा में जनता को कम्पनी के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करने हेतु 'प्रविवरण' जारी करना पड़ता है। जारी करने से पहले प्रविवरण का रजिस्ट्रार के पास पंजीयन होना अनिवार्य है। प्रविवरण ही वह आधार है जिस पर विनियोजक, विनियोजन का निर्णय लेते हैं।

प्रविवरण तैयार करने एवं उसके प्रकाशन के साथ–साथ इस अवस्था में अभिगोपकों, दलालों, बैंकर इत्यादि की नियुक्ति के साथ–साथ अंशों का सूचियन एवं न्यूनतम अभिदान राशि को भी सुनिश्चित किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तत्पश्चात् आवेदक, आवेदन पत्रों के माध्यम से कम्पनी के सन्मुख प्रस्ताव रखा जाता है। जैसे ही कम्पनी द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्रों को स्वीकार किया जाता है, उसे अंशों का आवंटन कहा जाता है। अंशों का आबंटन, वस्तुतः कम्पनी एवं आवेदकों के मध्य अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और उनके बीच कुछ अधिकार एवं दायित्व उत्पन्न होते हैं। अंशों के आबंटन की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् कम्पनी द्वारा एक विवरण तैयार किया जाता है जिसमें आवंटन सम्बन्धी महत्वपूर्ण पहलुओं की जानकारी दी जाती है और रजिस्ट्रार को भी प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'आबंटन विवरणी' (Retun of Allotment) कहा जाता है।

(D) व्यवसाय प्रारम्भ करने की अवस्था – (Business Commencement Stage) – सभी प्रकार की निजी कम्पनियां समामेलन का प्रमाणपत्र प्राप्त होते ही अपना कारोबार प्रारम्भ कर सकती है परन्तु सार्वजनिक कम्पनी अपना कारोबार तब तक प्रारम्भ नहीं कर सकती जब तक कि रजिस्ट्रार से व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं हो जाता। इस दृष्टि से सार्वजनिक कम्पनी को निम्नांकित दो चरणों से गुजरना होता है –

(a) **सार्वजनिक कम्पनी, जब प्रविवरण निर्गमित करे** – जब सार्वजनिक कम्पनी पूंजी अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण देती है तो सर्वप्रथम प्रविवरण निर्गमन करना होता है, तब उक्त प्रलेख प्राप्त करने हेतु निम्नांकित शर्तें पूरी करनी होगी –

1. कम्पनी द्वारा न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी कर ली गई है।
2. कम्पनी के प्रत्येक संचालक ने निर्धारित अंशों का भुगतान नकद में कर दिया गया है जिनके लिए उन्होंने सहमति दी है या जो अंश उनके द्वारा ले लिये गये हैं।
3. जिन स्कन्ध विनिमय केन्द्र/केन्द्रों में सूचियन हेतु आवेदन किया गया है, वहां से सूचियन की स्वीकृति प्राप्त हो गई है।
4. अंत में किसी संचालक या सचिव या पूर्णकालीन व्यवसाय में संलग्न सचिव द्वारा निर्धारित प्रपत्र में यह घोषणा कि उक्त सभी शर्तें पूर्ण कर ली गई है।

(b) **सार्वजनिक कम्पनी, जब प्रविवरण निर्गमित न करें** – जब पूंजी की व्यवस्था स्वंय अपने साधनों से ही करनी है तब प्रविवरण निर्गमित करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसी स्थिति में निम्नांकित कदम उठाने होंगे –

1. अंशों का आवंटन करने से, कम से कम तीन दिन पूर्व स्थानापन्न प्रविवरण रजिस्ट्रार के यहां प्रस्तुत कर दिया गया है।
2. संचालकों से, अंशों के सम्बन्ध में बकाया राशि नकद में प्राप्त कर ली गई है।
3. किसी संचालक या सचिव द्वारा यह घोषणा कि सभी वैधानिक औपचारिकताएं पूर्ण कर ली गई है।

उक्त सभी शर्तें पूरी करने पर रजिस्ट्रार इस नतीजे पर पहुँचे कि कम्पनी कारोबार को चालू करने की स्थिति में है तो रजिस्ट्रार अपने हस्ताक्षर के अधीन एक प्रलेख कम्पनी को जारी करता है जिसे 'व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र' कहा जाता है। यह प्रमाणपत्र इस आशय का निश्चयात्मक प्रमाण है कि कम्पनी वैधानिक दृष्टि से व्यवसाय प्रारम्भ करने योग्य है।

प्रारम्भिक अनुबन्ध
(Preliminary Contracts)

प्रस्तावित कम्पनी को अस्तित्व में आने से पूर्व अनेकानेक कार्य करने होते हैं। प्रवर्तकों द्वारा कम्पनी के अस्तित्व में आने से पूर्व किये गये सभी कार्यों एवं अनुबन्धों को प्रारम्भिक अनुबन्ध के नाम से जाना जाता है। प्रवर्तकों द्वारा ये अनुबन्ध प्रस्तावित कम्पनी की ओर से एजेन्ट की हैशियत से किये जाते हैं। परन्तु एजेन्सी का सामान्य सिद्धांत यह है कि किसी व्यक्ति, संस्था या निकाय की ओर से कार्य तभी किया जा सकता है जब उस व्यक्ति या संस्था का अस्तित्व हो और उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो। जबकि कम्पनी समामेलन से पूर्व अस्तित्व विहीन मानी जाती है अर्थात् राजनियम की दृष्टि से कम्पनी का कोई अस्तित्व नहीं होता है। कम्पनी को कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा तभी प्राप्त होता है जब उसका समामेलन हो जाए। इसलिए प्रवर्तक ऐसी कम्पनी की ओर से कार्य नहीं कर सकते जिसका समामेलन होना शेष है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रारम्भिक अनुबन्धों के सम्बन्ध में कानूनी स्थिति

(Legal position about preliminary contract)

(a) **प्रारम्भिक अनुबन्धों के लिए कम्पनी उत्तरदायी नहीं** – प्रारम्भिक अनुबन्धों के लिए कम्पनी का कोई दायित्व नहीं होगा, चाहे उन अनुबन्धों से कम्पनी को ही फायदा क्यों न हुआ हो।

(English and colonial produce co. Ltd. Re. (1906) 2 ch. 435

इस मामलें में प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए एक कानूनी सलाहकार – **(Solicitor)** की नियुक्ति की गई। सोलीसिटर ने कुछ व्यक्तियों के निर्देशानुसार आवश्यक प्रपत्र तैयार किये और वांछित शुल्क जमा कराया। यही व्यक्ति समामेलन के पश्चात् कम्पनी के संचालक बन गये। निर्णय दिया गया कि सोलीसिटर, अपनी सेवाओं के बदले में प्रतिफल प्राप्त करने हेतु कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकता यद्यपि कार्य कम्पनी के हितों के लिये किया गया है। निर्णय देते हुए कहा कि कम्पनी ऐसे व्ययों के लिए उत्तरदायी नहीं है जो कम्पनी के अस्तित्व में आने से पूर्व किये गये हो। यहां तक कि ऐसे कार्यों की पुष्टि भी नहीं की जा सकती हैं।

(b) **कम्पनी, प्रारम्भिक अनुबन्धों का निष्पादन नहीं कर सकती** – कम्पनी, न तो प्रारम्भिक अनुबन्धों का निष्पादन कर सकती है और न किसी अन्य पक्षकार को निष्पादन के लिए बाध्य कर सकती है।

Natan, Land co. Ltd. V/s Pauline Colliery Syndicate Ltd, 1904 A.C. 120

इस मामले में N कम्पनी ने P Syndicate की ओर से एजेन्ट कम्पनी, जिसका समामेलन होना शेष था, खनन पट्टा (Mining Lease) जारी करने के सम्बन्ध में ठहराव हुआ। परन्तु बाद में N कम्पनी ने खनन पट्टा जारी करने से इन्कार कर दिया। जब P सिंडीकेट ने अनुबन्ध भंग के लिए वाद प्रस्तुत किया गया तो विद्वान न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि "N कम्पनी एवं P सिंडीकेट के बीच कोई बाध्यकारी अनुबन्ध नहीं हुआ है क्योंकि अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय एजेन्ट कम्पनी का अस्तित्व ही नहीं था।

(c) **प्रवर्तकों का व्यक्तिगत दायित्व** – प्रारम्भिक अनुबन्धों के लिए प्रवर्तक, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे, अर्थात् अन्य पक्षकार प्रवर्तकों को उत्तरदायी ठहरा सकते हैं।

(Kelner V/s Baxter, (1866) L.R. 2 C.P. 174.)

एक हॉटल कम्पनी, जिसका समामेलन होना शेष था, ने कम्पनी की ओर से कुछ माल 27 जनवरी, 1866 को क्रय किया, जिसका भुगतान 28 जनवरी, 1866 को होना था। कम्पनी ने क्रय किये गये माल का उपयोग भी कर लिया। 20 फरवरी, 1866 को कम्पनी का समामेलन हुआ, परन्तु उस माल का भुगतान करने से पूर्व ही कम्पनी का समापन हो गया। निर्णय दिया कि अनुबन्ध के हस्ताक्षरकर्त्ता अर्थात् प्रवर्तक उस माल के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है।

प्रारम्भिक अनुबन्धों के सम्बन्ध में अन्य महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार है –

1. **प्रारम्भिक अनुबन्धों का पुष्टिकरण (Ratification)** नहीं – पुष्टिकरण का सिद्धांत तभी लागू होता है जब कोई व्यक्ति या संस्था जो अपनी ओर से अनुबन्ध करने की इच्छा रखते हो, उनका अस्तित्व हो, प्रस्तावित कम्पनी का राजनियम की दृष्टि से कोई अस्तित्व नहीं होता है, अतः पुष्टिकरण भी सम्भव नहीं। हां, यदि कम्पनी चाहे तो समामेलन के पश्चात् (a) उन्हीं शर्तों पर नये अनुबन्ध का निर्माण कर सकते है। ऐसा करते ही प्रवर्तकों का दायित्व समाप्त हो जायेगा। (b) यदि कम्पनी, उचित समयावधि में नये अनुबध का निर्माण नहीं करती है तो कोई भी पक्षकार अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है।

   इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक अनुबन्धों का समाधान विशेष सहायता अधिनियम, 1963 **(Special Relief Act, 1963)** की धारा 15 एवं 16 में भी दिया गया है। इन धाराओं के अनुसार 'यदि प्रवर्तकों ने प्रस्तावित कम्पनी के हितों को दृष्टिगत रखते हुए कोई कार्य किया है तो उन कार्यों का निर्दिष्ट निष्पादन किया जा सकता है, बशर्ते कि कम्पनी ने समामेलन के पश्चात् उन अनुबन्धों को स्वीकार कर लिया हो और स्वीकृति की सूचना अन्य पक्षकारों को दे दी गई हो।

2. **सामयिक अनुबन्ध (Provisional Contracts)** – समामेलन के पश्चात् परन्तु व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने से पूर्व किये गये अनुबन्धों को सामयिक अनुबध या सांयोगिक अनुबन्ध कहा जाता है। ऐसे अनुबन्धों की प्रवर्तनियता, व्यवसाय प्रारम्भ करने के प्रमाणपत्र पर निर्भर करती है। **[Sec. 149 (4)]**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यदि प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं होता है तो अनुबन्ध की वैधानिकता अपने आप ही समाप्त हो जाती है। इस स्थिति में न तो कम्पनी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत किया जा सकता है और न कम्पनी वाद प्रस्तुत कर सकती है। **[Kishangarh Electric Co. V/s United States of Rajasthan, AIR (1960) Raj. 40]**

यहां यह उल्लेखनीय है कि निजी कम्पनी समामेलन का प्रमाणपत्र प्राप्त होते ही अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकती है।

3. **व्यवसाय प्रारम्भ करने के पश्चात् अनुबन्ध** – यदि कोई सार्वजनिक कम्पनी रजिस्ट्रार से व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के पश्चात अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है तो ऐसे कार्यों के लिए कम्पनी ही अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगी, अर्थात् प्रवर्तकों का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होगा।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. समामेलन से पूर्व अनुबन्धों के दायित्व की विवेचना कीजिये । (05 अंक)
(Explain the liabilities of a company for pre incorporation contract)
2. सामयिक अनुबन्धों से आपका क्या अभिप्राय है ?
(What do you mean by provisional contracts of a company ?) (05 अंक)
3. प्रवर्तक से आपका क्या अभिप्राय है ? (05 अंक)
(What do you mean by 'Promoter' ?)
4. ''समामेलन का प्रमाणपत्र कम्पनी के अस्तित्व का निश्चयात्मक प्रमाण है।''विवेचना कीजिये।
("The certificate of incorporation is the conclulsive evidence of registeration of company."Explain). (05 अंक)
5. सार्वजनिक कम्पनी के समामेलन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिये। (15 अंक)
(Describe the various stages for incorporation of a public company.)
6. प्रारम्भिक अनुबन्धों से आपका क्या अभिप्राय है ? कानूनी स्थिति की विवेचना कीजिये। (15 अंक)
(What do you mean by preliminary contracts ? Explain the legal position about it.)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय ५ – पार्षद सीमानियम

(Memorandum of Association)

(A) प्रस्तावना – अर्थ एवं विशेषताएँ (Introduction: Meaning and Characteristics)

पार्षद सीमानियम एक आधारभूत प्रलेख है या कम्पनी का चार्टर है। जिस पर कम्पनी रूपी भवन खड़ा किया जाता है। यह वह सीमा रेखा है जिसके बाहर कम्पनी अपना कदम नहीं बढ़ा सकती। (It provides a boundary beyond which a company cannot travel) यह प्रलेख कम्पनी का बाह्य पक्षकारों के साथ सम्बन्धों को भी शासित करता है। इस प्रलेख के माध्यम से बाह्य पक्षकार यह जान सकते है कि कम्पनी के कार्यक्षेत्र की सीमाएँ क्या है ? वस्तुतः इस प्रपत्र में उन आधारभूत शर्तों का उल्लेख होता है जिनके आधार पर कम्पनी के समामेलन की स्वीकृति प्रदान की जाती है।

धारा 2 (28) के अनुसार, ''सीमानियम का आशय एक कम्पनी के ऐसे पार्षद सीमानियम से है जो पिछले किसी कम्पनी अधिनियम अथवा इस अधिनियम के अन्तर्गत मूल रूप से बनाया गया अथवा समय–समय पर परिवर्तित किया गया है।''

("Memorandum means the memorandum of Association of a company as originally framed or as altered from time to time in persuance of any previous companies law or this Act.")

लॉर्ड केयर्न्स (Lord Cairns) के अनुसार, ''पार्षद सीमानियम कम्पनी का अधिकार पत्र है और यह अधिनियम के अधीन स्थापित कम्पनी के अधिकारों की सीमाओं को परिभाषित करता है।''

(The Memorandum of Association of a company is its charter and defines the limitations of the company established under the Act.")

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है कि पार्षद सीमानियम कम्पनी का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रलेख है जो कम्पनी के आधारभूत वाक्यों को समावेशित करता हैं और जिसके अधीन अंशधारी ऐसे नियम प्रतिपादित कर सकते हैं जो कम्पनी के संचालन हेतु आवश्यक है।

विशेषताएँ –

1. यह एक आधारभूत प्रलेख है।
2. यह कम्पनी का चार्टर माना जाता है।
3. यह प्रत्येक कम्पनी के लिये आवश्यक है।
4. यह मूल रूप से बनाया जाता है अथवा संशोधित किया जाता है।
5. यह कम्पनी के उद्देश्यों का वाहक हैं।
6. यह कम्पनी के कार्यक्षेत्र की सीमाएँ निर्धारित करता है।
7. पंजीकरण के पश्चात् यह सार्वजनिक प्रलेख माना जाता हैं
8. यह अभिदाताओं द्वारा हस्ताक्षरित होता है। निजी कम्पनी की दशा में कम से कम 2 एवं सार्वजनिक कम्पनी की दशा में कम से कम 7 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित होना अनिवार्य हैं।
9. यह कम्पनी एवं बाह्य पक्षकारों के मध्य अनुबन्ध का आधार हैं।
10. यह कम्पनी का संविधान है जो स्वयं कम्पनी द्वारा ही निर्मित किया जाता है।

(B) पार्षद सीमानियम का महत्व (Importance of Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रलेख है। इसी प्रलेख को दृष्टिगत रखते हुए बाह्य पक्षकार कम्पनी के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मूलतः यह वह नींव है जिस पर कम्पनी रूपी भवन खड़ा किया जाता है। लॉर्ड मेकमिलन ने इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''पार्षद सीमानियम कम्पनी के कार्यक्षेत्र को परिभाषित करता है जिसके अधीन अंशधारी ऋणपत्रधारी एवं बाह्यपक्षकार, पूर्ण विश्वास रखते हुए कम्पनी के साथ व्यवहार कर सकते हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निम्नांकित आधारों पर कम्पनी के महत्व को स्पष्ट किया जा सकता है –

1. **यह कम्पनी के निर्माण का आधार है (It is a basis for the company's formation)** – इस प्रपत्र को तैयार किये बिना कम्पनी का पंजीयन नहीं किया जा सकता। शाह के शब्दों में, ''यह वह आधार है जिस पर कम्पनी का निर्माण किया जाता है।'' अतः इसे सामान्यतः अपरिवर्तित प्रलेख माना जाता है।
2. **यह कार्यक्षेत्र की सीमा निर्धारित करता है (It determines its scope)** रमैया ने पार्षद सीमानियम के सम्बन्ध में कहा है, ''पार्षद सीमानियम वह लक्ष्मण रेखा है जिसके बाहर कम्पनी अपने पैर नहीं रख सकती,'' **(The memorandum provides a boundary beyond which a company cannot travel)** इस सीमा के भीतर कम्पनी वे समस्त विधिक कार्य कर सकती है जो कम्पनी के अधिकतम हित में हो।
3. **कम्पनी के अधिकारों का स्त्रोत (It is a source of company's rights)** – इस प्रलेख को कम्पनी का चार्टर भी कहा जाता है। कम्पनी का समामेलन पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ही किया जाता है। कम्पनी कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो सीमानियम की परिधि के बाहर हो जब तक कि इस प्रलेख में वांछित परिवर्तन नहीं कर दिया जाता है।
4. **यह कम्पनी के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है (It is a guide to the company)** यह कम्पनी के लिए इस बात का आधार प्रदान करता है कि कम्पनी को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दों में कौनसा कार्य अधिकारों के बाहर (ultravire) और कौनसा अधिकारों के भीतर, (Intra-vire) इस बात का निर्धारण पार्षद सीमानियम द्वारा ही किया जाता है।
5. **यह विनियोजकों को सुरक्षा प्रदान करता है (It protects Investors)** – कम्पनी अपना कार्य पार्षद सीमानियम में वर्णित उद्देश्यों के अनुरूप ही कर सकती है और विनियोजक उस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ही अभिदान का फैसला करते है। विनियोजक, पार्षद सीमानियम की विषय–वस्तु (Content) के आधार पर ही भावी सम्भावनाओं एवं जोखिम तत्व का पता लगाते हैं। इस प्रकार यह विनियाजकों को भी सुरक्षा प्रदान करता है।
6. **लेनदारों को सुरक्षा प्रदान करना (It protects creditors)** पार्षद सीमानियम कम्पनी के केवल अधिकारों की ही विवेचना नहीं करता है बल्कि सदस्यों के दायित्वों का भी उल्लेख करता है। इस प्रकार सीमानियम में निर्दिष्ट 'दायित्व वाक्य' का अवलोकन करके, लेनदार अपनी सुरक्षा का अन्दाज या पूर्वानुमान लगा सकते हैं।
7. **अन्य पक्षकारों के लिए सुविधा (It facilitates other parties)** – अन्य पक्षकारों का यह कर्त्तव्य है कि कम्पनी के साथ व्यवहार करते समय 'पार्षद सीमानियम' को देख ले एवं समझ ले। यदि कोई ऐसा कार्य किया जाता है जो कम्पनी के अधिकारों के बाहर हो तो कम्पनी उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगी। ऐसी स्थिति में तृतीय पक्षकार को भारी क्षति की सम्भावना रहती है। अतः यह प्रलेख अन्य पक्षकारों के लिए मार्गदर्शक **(Lighting torch)** का कार्य करता है।
8. **राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा (It serves the national interest)** किसी कम्पनी को ऐसे उद्देश्यों के लिए स्वीकृति नहीं दी जा सकती जो राष्ट्रीय हितों के विपरीत हो। इस प्रकार यह प्रलेख राष्ट्रीय हितों का भी पोषक है।

(C) पार्षद सीमानियम की विषय वस्तु (Contents of Memorandum of Association)

धारा 13 में सीमानियम की आवश्यकताओं को दर्शाया गया हैं। धारा 14 में इस बात का उल्लेख है कि विभिन्न कम्पनियों की प्रकृति के अनुसार अनुसूची एक की तालिका A, B, C, D एवं E के अनुसार यह प्रपत्र तैयार किया जाना चाहिए। धारा 15 के अनुसार पार्षद सीमानियम मुद्रित होने के साथ–साथ खण्डों में विभक्त होना चाहिए। वस्तुतः पार्षद सीमानियम की महत्ता, सीमानियम की विषय वस्तु के कारण ही है जिसका उल्लेख इस प्रकार है –

(a) **कम्पनी का नाम या नाम वाक्य (Name of company or Name Clause)** – पार्षद सीमानियम के प्रथम वाक्य में कम्पनी के नाम को दर्शाया जाता है। कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति होने के नाते, उसकी पहचान हेतु नाम का निर्धारण किया जाता है। नाम, वस्तुतः कम्पनी के व्यक्तित्व का आधार है। कोई भी उपयुक्त नाम, निम्नांकित प्रतिबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए, निर्धारित किया जा सकता हैं –

1. **प्रत्येक कम्पनी को अपने नाम के आगे** (Private Ltd.) एवं सावर्जनिक कम्पनी को (Ltd.) लिमिटेड शब्द प्रयुक्त करना होगा। यदि कम्पनी का प्रयोजन शिक्षा, साहित्य, कला, विज्ञान, वाणिज्य इत्यादि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गतिविधियों को बढ़ावा देने का है तो केन्द्रीय सरकार, लाइसेंस (Sec. 25) द्वारा इन नामों के उपयोग से मुक्त कर सकती है।

यदि कम्पनी की ओर से किया गया अनुबन्ध किसी ऐसी कम्पनी द्वारा किया गया है जिसके नाम के साथ 'लिमिटैड' शब्द प्रयुक्त किया गया नहीं है तो सम्बन्धित अधिकारी, उन अनुबन्धों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

2. **कम्पनी का नाम, केन्द्रीय सरकार की दृष्टि से अवांछनीय (Undesirable)** नहीं होना चाहिए। नाम, अवांछनीय तब माना जाएगा, जब (i) नाम, किसी विद्यमान कम्पनी से मिलता जुलता हो, और (ii) नाम, लोगों को भ्रमित करने वाला या शंका उत्पन्न करने वाला हो।
3. **ऐसे नाम का उपयोग नहीं किया जा सकता जो 'नाम एवं चिह्न अधिनियम** Names and Emblems (prevention of improper use) Act 1950] के द्वारा निषेध हो।
4. ऐसे नाम का उपयोग नहीं किया जा सकता जो केन्द्रीय सरकार द्वारा संरक्षित हो।
5. नाम, किसी उच्च पदासीन व्यक्ति के अनुरूप नहीं होना चाहिए।
6. नाम के साथ 'सहकारी' (Co-perative) शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए।
7. नाम के साथ बैंक, बैंकिग, विनियोग, वित्त, बीमा, ट्रस्ट इत्यादि का प्रयोग तभी किया जाना चाहिए जब उक्त नाम कम्पनी के उद्देश्यों के अनुरूप हो।
8. किसी व्यक्ति का नाम या उपनाम का उपयोग तभी किया जाना चाहिए जब या तो वह व्यक्ति कम्पनी का संचालक हो अथवा अन्य कोई उचित कारण हो।
9. नाम का समुचित प्रकाशन होना चाहिये – [Sec. 14] प्रत्येक कम्पनी (i) अपने पंजीकृत कार्यालय एवं अन्य कार्यालयों पर, जहां कम्पनी का कारोबार फैला हुआ है, कम्पनी के नाम को प्रकाशित करना होगा। (ii) अपनी मोहर पर भी इस प्रकार मुद्रित करना होगा जिसको आसानी से पढ़ा जा सके। (iii) अपने पंजीकृत कार्यालय का नाम एवं पता, स्पष्ट अक्षरों में सभी व्यावसायिक पत्रों, बिलों, सूचनाओं, विनियम साध्य विलेखों, बिजकों, रसीदों एवं अन्य आवश्यक प्रलेखों पर अंकित करना होगा।

नाम में परिवर्तन (Change of Name) [Sec .21]

'नाम वाक्य' में परिवर्तन को निम्नांकित दो श्रेणियों में बांटा जा सकता हैं –

(a) **विशेष प्रस्ताव द्वारा नाम में परिवर्तन (Change of name by special resolution)** – कम्पनी अपना नाम परिवर्तन विशेष प्रस्ताव एवं केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदन के आधार पर कर सकती है। यदि निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी या सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तन के परिणामस्वरूप में नाम के साथ प्रयुक्त 'लि.' या 'प्राईवेट' लि. शब्द में परिवर्तन करना हो तो केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं।

(b) **साधारण प्रस्ताव द्वारा नाम में परिवर्तन (Change of name by ordinary resolution)** यदि कम्पनी का नाम, केन्द्रीय सरकार की दृष्टि से किसी विद्यमान कम्पनी से मिलता–जुलता हो या समरूप हो तो साधारण प्रस्ताव एवं केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के आधार पर परिवर्तन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार इस प्रकार से परिवर्तन का आदेश पंजीयन के अगले 12 माह अथवा नये नाम से पंजीकृत होने के अगले 12 माह में दे सकती है। इस प्रकार से प्राप्त आदेश के अगले 3 माह में कम्पनी को निर्देशानुसार अपने नाम में परिवर्तन करना होगा।

जब रजिस्ट्रार की सन्तुष्टि के अनुसार यदि कम्पनी ने नाम परिवर्तन हेतु आवश्यक चरण पूरे कर लिये है तो रजिस्ट्रार नये नाम से कम्पनी का पंजीकरण करते हुए समामेलन का नया प्रमाणपत्र जारी कर देगा। इस प्रमाणपत्र के निर्गमन के साथ ही नाम परिवर्तन की प्रक्रिया पूर्ण एवं प्रभावी मानी जायेगी। [Sec. 23(i)] साथ ही साथ रजिस्ट्रार पार्षद सीमानियम के नाम वाक्य में भी आवश्यक परिवर्तन करेगा। [Sec. 23(2)]

(b) पंजीकृत कार्यालय वाक्य (Registered Office Clause)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पार्षद सीमानियम के दूसरे वाक्य में उस राज्य का नाम दर्शाना होगा जहां कम्पनी का 'पंजीकृत कार्यालय' स्थापित किया जायेगा। समामेलन अथवा व्यवसाय प्रारम्भ करने के अगले 30 दिनों में (जो भी पहले हो) पंजीकृत कार्यालय का वास्तविक स्थान, रजिस्ट्रार के सन्मुख प्रकट करना होगा। सभी तरह का पत्र व्यवहार एवं सम्प्रेषण कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय के नाम पर किये जाते है।

पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन (Change of Registered Office)

सुविधा की दृष्टि से पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन को निम्नांकित चार भागों में बांटा जा सकता है –

1. **उसी शहर में परिवर्तन (Shifting within the same city)** एक ही शहर या कस्बा या गांव में पंजीकृत कार्यालय के स्थान में परिवर्तन करना हो तो केवल संचालक मण्डल की सभा में इस आशय का प्रस्ताव पारित करना होगा और पारित प्रस्ताव की सूचना अगले 30 दिनों में रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करनी होगी।
2. **उसी राज्य में एक शहर से दूसरे शहर में परिवर्तन जबकि रजिस्ट्रार का क्षेत्राधिकार वही हो (Shifting from one city to another, within state having same registrar)** इस स्थिति में कम्पनी की साधारण सभा में, इस आशय का 'विशेष प्रस्ताव' पारित करना होगा और इसकी सूचना अगले 30 दिनों में रजिस्ट्रार को देनी होगी।
3. **उसी राज्य में एक शहर से दूसरे शहर में परिवर्तन जबकि रजिस्ट्रार का क्षेत्राधिकार भिन्न हो।** (Shifting from one city to another, within state, having different juridiction) इस स्थिति में विशेष प्रस्ताव के साथ–साथ क्षेत्रीय निदेशक (Regional Director) से अनुमोदन कराना होगा। क्षेत्रिय निदेशक चार सप्ताह में अपनी सहमति देगा। अनुमोदित विशेष प्रस्ताव अगले 2 माह में रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना होगा। रजिस्ट्रार को अगले एक माह में प्रस्तुत प्रपत्रों को पंजीकृत करते हुए कम्पनी को इस आशय की सूचना प्रेषित करनी होगी। रजिस्ट्रार द्वारा प्रस्तुत परिवर्तन का प्रमाणपत्र इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण होगा कि पूर्व निर्धारित शर्तों की अनुपालना कर ली गई है। **[Sec. 17 – A]**
4. **एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवर्तन (Shifting from one state to another state)** यदा–कदा, कुछ विशिष्ट कारणों, जिनका उल्लेख धारा 17(1) में किया गया है, से कम्पनी अपने पंजीकृत कार्यालय को एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवर्तन करना चाहती है, जब कम्पनी –
    1. अपने कारोबार को और अधिक मितव्ययितापूर्वक चलाना चाहती हो।
    2. अपने मुख्य उद्देश्य को नये या उन्नत साधनों से प्राप्त करना चाहती हो।
    3. अपने कारोबार के स्थानीय आकार को बड़ा या परिवर्तित करना चाहती हो।
    4. किसी ऐसे कारोबार को करना जो विद्यमान परिस्थितियों में मितव्ययितापूर्वक या लाभदायक तरीके से करना सम्भव न हो।
    5. पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट उद्देश्य को प्रतिबन्धित करना या रोक लगाना चाहती हो।
    6. उपक्रम के किसी भाग या पूरे उपक्रम को बेचना या निस्तारण करना चाहती हो।
    7. किसी अन्य निगमित संस्था के साथ संविलय करने की इच्छा रखती हो।(धारा–17 (1))

परिवर्तन की प्रक्रिया

1. **विशेष प्रस्ताव पारित करना** – धारा 17 (1) में निर्दिष्ट प्रयोजनों में से किसी उद्देश्य विशेष या एकाधिक उद्देश्यों को पूरा करने हेतु साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करना होता है। साथ ही प्रस्ताव में उस राज्य का नाम दिया जाता है, जहां पंजीकृत कार्यालय को हस्तांतरित किया जा रहा है। (धारा 17 (1))
2. **केन्द्रीय सरकार को आवेदन**– तत्पश्चात परिवर्तन की पुष्टि हेतु केन्द्रीय सरकार को आवेदन किया जाता है। (धारा – 17 (2))
3. **केन्द्रीय सरकार की सन्तुष्टि** – केन्द्रीय सरकार परिवर्तन को अनुमोदित करने से पूर्व यह सुनिश्चित करेगा कि परिवर्तन के परिणामस्वरूप जिन पक्षकारों का हित प्रभावित होने जा रहा है, उनको उचित सूचना दे दी गई है, अथवा यदि ऋणदाता है तो उनके ऋणों का भुगतान कर दिया गया हैं अथवा उनके ऋणों को सुरक्षित कर दिया गया हैं। (धारा 17 (3))

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **रजिस्ट्रार को सूचना**– केन्द्रीय सरकार इस आशय की सूचना रजिस्ट्रार को भी देगा। साथ ही परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार से भी सुझावों एवं विरोधों को आमंत्रित करेगा। (धारा 17 (4))

5. **परिवर्तन की पुष्टि** – केन्द्रीय सरकार द्वारा पूर्ण सन्तुष्टि के पश्चात् पूर्णतः या अंशतः परिवर्तन का आदेश जारी करेगा। आदेश उन शर्तों पर जारी किया जाएगा जिन्हें केन्द्रीय सरकार उपयुक्त समझे। (धारा 17 (5))

6. **परिवर्तन का पंजीयन** – विशेष प्रस्ताव की प्रति, केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदन की प्रति एवं परिवर्तित पार्षद सीमानियम की प्रति रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करने पर रजिस्ट्रार इन प्रलेखों को पंजीकृत कर देता है और अगले 1 माह में परिवर्तन का पंजीयन कर देता है।

(C) उद्देश्य वाक्य (The objective Clause)

पार्षद सीमानियम के तीसरे वाक्य में उन उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है जिनके लिए कम्पनी का समामेलन किया जाता है। कम्पनी संशोधित अधिनियम 1965 लागू होने के पश्चात् उद्देश्य वाक्य को निम्नांकित तीन उप–वाक्यों में विभाजित किया गया है :–

1. **मुख्य उद्देश्य (Main Objects)** इसमें उन उद्देश्यों का समावेश किया जाता है जिनकी प्राप्ति के लिए कम्पनी का निर्माण किया जाता है। साथ ही ऐसे कार्य जो मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के के लिए आनुषंगिक एवं सहायक **(incidental or ancillary)** होते हैं।

2. **अन्य उद्देश्य** – ऐसे उद्देश्य जो मुख्य उद्देश्य में शामिल नहीं हैं।

3. **उन राज्यों के नाम जहां कम्पनी के उद्देश्यों को विस्तारित किया जा सकता है** – गैर व्यापारिक कम्पनियाँ , जिनके उद्देश्य को एकाधिक राज्यों से पूरा किया जाना है, उन राज्यों का नाम भी दर्शाना होगा। कम्पनी के उद्देश्यों के सम्बन्ध में पार्षद सीमानियम के अभिदाताओं को पूर्णतः छूट प्रदान कर रखी है, बशर्ते कि उद्देश्य देश में विद्यमान किसी विधान एवं कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत न हो।

वस्तुतः कम्पनी का यह वाक्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कम्पनी के क्षेत्र एवं सीमाओं का निर्धारण करता है। इसी वाक्य के द्वारा संचालकों के कार्यों पर नियंत्रण, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर रोक, अंशधारियों एवं लेनदारों के हितों की सुरक्षा, रचनात्मक सूचना का सिद्धांत एवं अधिकारों के बाहर कार्य इत्यादि का निर्धारण किया जाता है।

उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन

पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ही कम्पनी का समामेलन किया जाता है। यदि निर्दिष्ट उद्देश्य के बाहर कार्य किया जाता है तो इसे अधिकारों के बाहर कार्य माना जाता है और कम्पनी इसके लिए जवाबदेह नहीं होती है। अंशधारियों एवं ऋणपत्रधारियों का हित प्रत्यक्षतः, इस वाक्य से जुड़ा हुआ होता है। अतः उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करते समय सम्बन्धित पक्षकारों के हितों को दृष्टिगत रखना होता है। वस्तुतः इस वाक्य में परिवर्तन के सम्बन्ध में दो आधारभूत प्रतिबन्ध है –

(a) **सारवान सीमा (Substantive Limit)** – इस प्रतिबन्ध के तहत कम्पनी, उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन केवल अधिनियम की धारा (17 (1)) में दर्शाये गए प्रयोजनों को पूरा करने के लिए ही कर सकती है जिनका उल्लेख 'एक राज्य से दूसरे राज्य' में पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

(b) **प्रक्रियात्मक सीमा (Procedural Limit)** धारा [17 (1)] में निर्दिष्ट प्रयोजन को पूरा करने के लिए सामान्य सभा मे एक विशेष प्रस्ताव पारित किया जाता है। प्रस्ताव पारित होने के अगले एक माह में प्रस्ताव की प्रति एंव परिवर्तित सीमानियम की प्रति रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करनी पड़ती है। (धारा 18 (1)) रजिस्ट्रार उल्लेखित प्रपत्र प्राप्त होते ही, उन्हें पंजीकृत करते हुए नया प्रमाणपत्र जारी कर देता है जो निर्धारित विधि के तहत परिवर्तन का निश्चयात्मक प्रमाण माना जाता है।

(D) पूंजी वाक्य (The Capital Clause)

अंशो द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी को इस वाक्य में अधिकृत पूंजी या पंजीकृत पूंजी के साथ–साथ निश्चित राशि के अंशों में विभाजन को दर्शाया जाता है। कोई भी कम्पनी अंश पूंजी में परिवर्तन किये बिना,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिकृत पूंजी से अधिक अंशों का निर्गमन नहीं कर सकती है। निजी कम्पनी किसी भी प्रकार के अंश, किसी भी अनुपात में निर्गमित कर सकती है। (धारा 90)

पूंजी वाक्य में परिवर्तन

इस परिवर्तन की व्यवस्था को अंश पूंजी वाले अध्याय में दिया गया है –

(E) दायित्व वाक्य (The liability Clause)

अंशों द्वारा सीमित एवं गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियों को दायित्व वाक्य में यह दर्शाना होगा कि उनके सदस्यों का दायित्व धारित अंशों या प्रदत्त गारण्टी की राशि तक सीमित होगा। (धारा 13 (2)) इसका अभिप्राय यह है कि कम्पनी के सदस्य अंशों के अंकित मूल्य की अदत्त राशि के बराबर भुगतान के लिए उत्तरदायी होगे साथ ही गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होगा।

दायित्व वाक्य में परिवर्तन

इसके सम्बन्ध में प्रावधान इस प्रकार है –

1. **असीमित दायित्व से सीमित दायित्व में परिवर्तन** – यदि असीमित दायित्व वाली कम्पनी को सीमित दायित्व वाली कम्पनी में परिवर्तन किया जाता है तो ऐसा परिवर्तन धारा 32 की अनुपालना करते हुए कम्पनी का पंजीयन नये सिरे से सीमित दायित्व वाली कम्पनी के रूप में किया जाता है और पुराने पंजीयन को रद्ध कर दिया जाता है। यद्यपि परिवर्तन से पूर्व उत्पन्न दायित्वों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

2. **सीमित दायित्व से असीमित दायित्व में परिवर्तन** – यह परिवर्तन निम्नांकित तीन तरीके से घटित हो सकता है–

1. **सदस्यों के दायित्व को असीमित करना** – [धारा 38 (a)] यदि पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है जिससे सदस्यों के दायित्व में अभिवृद्धि हो तो ऐसे परिवर्तन का तब तक कोई प्रभाव नहीं होगा जब तक कि सदस्यों की लिखित सहमति प्राप्त न हो जाये।
2. **पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में असीमित दायित्व का उल्लेख** – (धारा – 322) यदि पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में प्रावधान हो कि संचालकों एवं प्रबन्ध संचालकों का दायित्व असीमित होगा तो स्वतः ही प्रबन्धकीय कर्मचारियों का दायित्व भी असीमित ही होगा।
3. **संचालकों, प्रबन्ध संचालक या प्रबन्धक के दायित्व को असीमित करना** (धारा – 323) – यदि अन्तर्नियमों में प्रावधान हो तो विशेष प्रस्ताव पारित करके आगामी प्रबन्धकीय कर्मचारियों के दायित्व को असीमित किया जा सकता है। विद्यमान प्रबन्धकीय कर्मचारियों पर इस प्रावधान का कोई प्रभाव नहीं होगा जब तक कि वे लिखित रूप में सहमति व्यक्त न करें।

(F) संघ एवं हस्ताक्षर वाक्य (The Association Clause)

इस वाक्य में यह लिखा रहता है, ''हम लोग जिनके नाम एवं पते नीचे दिये हुए हैं, कम्पनी के समामेलन हेतु इच्छा रखते है और नाम के आगे अंकित अंशों को लेने के लिए सहमत है।'' प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक अंश लेना अनिवार्य है।

पार्षद सीमानियम के इस वाक्य में, सार्वजनिक कम्पनी की दशा में कम से कम 7 सदस्यों एवं निजी कम्पनी की दशा में कम से कम 2 सदस्यों के हस्ताक्षर होने अनिवार्य हैं।

अधिकार के बाहर का सिद्धांत (Doctrine of Ultra-vires)

एक कम्पनी ऐसे समस्त निर्णयों के लिए बाध्य होती है, यदि वे कार्य –

1. कम्पनी की अधिकार सीमा के भीतर हो।
2. पार्षद सीमानियम के 'उद्देश्य वाक्य' द्वारा अधिकृत हो, और
3. निर्दिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु आवश्यक एवं आनुषंगिक हो।

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

उपर्युक्त शर्तों से भिन्न किये गये कार्य को अधिकारों के बाहर किया गया कार्य माना जाता है। वस्तुतः शब्द 'ultra' का शाब्दिक अर्थ है, **'बाहर'** (beyond) जबकि 'vires' का अर्थ है, **'कार्य'**।

इस प्रकार 'ultravires' का शाब्दिक अर्थ है, 'अधिकारों के बाहर किया गया कार्य'। यद्यपि इस सिद्धांत की पुष्टि अनेकानेक मुकदमों में की गई है, परन्तु सिद्धांत की

विस्तृत विवेचना – ऐशबरी रेलवे केरीज एण्ड आयरन कम्पनी लि. बनाम रीके (1875), एल.आर.7एच.एल. 653 में की गई है। इस मामले की सुनवाई करते हुए लॉर्ड कैयर्न्स ने लिखा है, 'अधिकारों के बाहर किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होता है और ऐसे कार्यों की पुष्टि सभी अंशधारियों द्वारा सर्वसहमति के आधार पर भी नहीं की जा सकती है।'

अधिकारों के बाहर किये गये कार्यों का प्रभाव

1. अधिकारों के बाहर किया गया कार्य प्रभावहीन एवं व्यर्थ (null and void) होता है।
2. ऐसे कार्यों का पुष्टिकरण भी सम्भव नहीं।
3. ऐसे कार्यों के विरूद्ध कोई भी सदस्य न्यायालय से निषेधाज्ञा प्राप्त कर सकता है।
4. कम्पनी का कोई दायित्व नहीं।
5. संचालकों द्वारा गर्भित आश्वासन भंग करने पर, उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।
6. अधिकारों के बाहर, कम्पनी के कोष से खरीदी गई सम्पति पर कम्पनी का अच्छा अधिकार होता है।
7. अधिकारों के बाहर खरीदी गई वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए कम्पनी को बाध्य नहीं किया जा सकता।
8. अधिकारों के बाहर घटित दुष्कृत्यों (Tort) के लिये कम्पनी उत्तरदायी नहीं।
9. यदि कार्य संचालकों के अधिकारों के बाहर हो परन्तु कम्पनी के अधिकारों के भीतर हो तो उसकी पुष्टि की जा सकती है।
10. यदि कोई कार्य अन्तर्नियमों के बाहर हो, परन्तु सीमानियम के भीतर हो, तो भी उस कार्य की पुष्टि की जा सकती है।
11. यदि कोई कार्य अनियिमित (irregular) हो तो सभी अंशधारियों की सर्व सहमति से उसे नियमित किया जा सकता है।

कोई भी कार्य अधिकारों से बाहर है अथवा नहीं, यह एक तथ्यात्मक सवाल है जिसका समाधान पार्षद सीमानियम की विषय–वस्तु के आधार पर ही किया जा सकता है। इस सिद्धांत का मुख्य प्रयोजन विनियोजकों एवं लेनदारों के हितों की रक्षा करना ताकि वे यह जान सके कि उनके द्वारा प्रदत्त धन का उपयोग उसी प्रयोजन के लिए किया जा रहा है जिस प्रयोजन के लिए उन्होंने धन दिया है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पार्षद सीमानियम से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
   (What do you mean by memorandum of Association ?)
2. 'अधिकारों के बाहर' का सिद्धांत क्या है ? (5 अंक)
   (What is a 'doctrine of ultra-vires') ?
3. पार्षद सीमानियम के 'उद्देश्य वाक्य' की विवेचना कीजिये। (5 अंक)
   (Explain the objective clause of the memorandum of association)
4. कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय के स्थान का क्या महत्व है ? (5 अंक)
   (What is the significance of the place of registered office of a company ?)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. 'संघ वाक्य' की विवेचना कीजिये । (5 अंक)

(Explain the association clause)

6. पार्षद सीमानियम क्या है ? इसके महत्व को समझाइये। (15 अंक)

(What is a Memorandum of Association ? State its importance)

7. पार्षद सीमानियम क्या है ? पार्षद सीमानियम के विभिन्न वाक्यों का विवेचन कीजिये। (What is a memorandum of association ? Describe the various clauses of the association) (15 अंक)

8. कम्पनी के 'नाम वाक्य' की व्याख्या कीजिये। इसमें किस प्रकार परिवर्तन किया जाता है ? (Explain the name clause of the company. How it can be changed ?) (15 अंक)

9. उद्देश्य वाक्य की विवेचना कीजिये। इसके परिवर्तन की क्या प्रक्रिया है ?

(Explain the objective clause. What is its proceeding of change ? (15 अंक)

10. पंजीकृत कार्यालय वाक्य एवं उसके परिवर्तन की व्याख्या कीजिये। (15 अंक)

(Describe the registered office clause and its alteration)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय ६ – पार्षद अर्न्तनियम

(Articles of Association)

(A) प्रस्तावना (Introduction)

पार्षद अन्तर्नियम, पार्षद सीमानियम का अधीनस्थ प्रलेख है। जहां पार्षद सीमानियम कम्पनी के कार्य क्षेत्र का निर्धारण करता है, वहीं पार्षद अन्तर्नियम उन नियमों एवं उपनियमों की व्याख्या करता है जिनके द्वारा कम्पनी का दैनिक संचालन किया जाता है। इस दृष्टि से, यह एक आन्तरिक नियमन (Internal regulation) का प्रलेख है।

धारा 2 (2) के अनुसार, ''अन्तर्नियमों का आशय किसी कम्पनी के उन पार्षद अन्तर्नियमों से है जिनको किसी पूर्व के कम्पनी अधिनियम अथवा इस अधिनियम के अधीन मूल रूप से बनाया गया हो अथवा समय–समय पर परिवर्तित किया गया है''। ("Articles means the articles of association of a company as originally framed or as altered from time to time in persuance of any previous companies Law or of this act.")

लॉर्ड बोवेन के अनुसार, ''पार्षद सीमानियम उन आधारभूत शर्तों का प्रलेख है जिनके आधार पर कम्पनी का समामेलन किया जाता है जबकि अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं।''

(Articles are the internal regulations of the company)

कम्पनी मामले के विभाग के अनुसार, ''पार्षद अन्तर्नियम, कम्पनी एवं सदस्यों के बीच अनुबन्ध का आधार है जिनके द्वारा सदस्यों के हितों का निबटारा किया जाता है।''

इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पार्षद अन्तर्नियम दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख है जो सीमानियम के भीतर नियमों एवं उप–नियमों को परिभाषित करता है। यह प्रलेख संचालक मण्डल के अधिकारों, कम्पनी एवं सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों, एवं सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्धों का निर्धारण करता है।

पार्षद अन्तर्नियम की विशेषताएं

1. यह कम्पनी का दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख है।
2. यह सीमानियम के अधीन तैयार किया जाता है।
3. यह एक सार्वजनिक प्रलेख है।
4. यह उन नियमों एवं उपनियमों को दर्शाता हैं जिनके आधार पर कम्पनी का आन्तरिक प्रबन्ध किया जाता है।
5. यह कम्पनी एवं सदस्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करता हैं।
6. इस प्रलेख के द्वारा संचालकों एवं संचालक मण्डल के अधिकारों, कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के साथ–साथ उनके पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट किया जाता हैं।
7. यह प्रलेख अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी के लिए आवश्यक नहीं है। उस स्थिति में सारणी 'अ' के प्रावधान स्वतः ही लागू होंगें।
8. इसे पार्षद सीमानियम की सीमा के भीतर परिवर्तित किया जा सकता है।
9. यह मुद्रित, हस्ताक्षरित एवं अनुच्छेदों में विभक्त होता है।
10. इसे साधन की तरह माना जाता है न कि 'साध्य' की तरह।

(B) पार्षद सीमानियम की विषय–वस्तु (Contents of Articles of Association)

पार्षद अन्तर्नियम उन सभी नियमों एवं उपनियमों का समिश्रण (Composition) है जो कम्पनी के प्रबन्ध एवं संचालन के लिए आवश्यक है। कम्पनी का अन्तर्नियम तैयार करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसे नियम न बने जो सीमानियम या कम्पनी अधिनियम या अन्य किसी प्रचलित विधान के विपरीत हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संक्षेप में अन्तर्नियम की विषय सामग्री इस प्रकार है –

(a) **सामान्य विषय सामग्री** (General Contents) – सामान्यतः अन्तर्नियमों में निम्नांकित सामग्री को सम्मिलित किया जाता है –

1. **अनुसूची 'अ' की सीमाएँ** – अन्तर्नियम में इस बात का उल्लेख होना चाहिये कि कम्पनी पर सारणी–अ, किस सीमा तक लागू होगी ?
2. **प्रारम्भिक अनुबन्ध** – अन्तर्नियम से यह भी जानकारी मिलती है कि प्रारम्भिक अनुबन्ध किस प्रकार स्वीकार किये जायेंगे और उनका क्रियान्वयन किस प्रकार किया जावेगा ?
3. **अंश पूंजी** – अंशधारियों के अधिकार, अधिकारों में परिवर्तन, अभिगोपक कमीशन का भुगतान इत्यादि का उल्लेख भी अन्तर्नियमों में किया जायेगा।
4. **अंशों का आबंटन** – इस शीर्षक में न्यूनतम अभिदान की राशि एवं आबंटन की प्रक्रिया का विवेचन किया जायेगा।
5. **अंश** – अंशों के प्रकार, निर्गमित किये जाने वाले अंशों की संख्या एवं अंकित मूल्य, याचना राशि, याचना के बीच अन्तराल, अंशों का स्कंध में परिवर्तन, अंशों का हस्तांतरण एवं हस्तांकन इत्यादि जानकारी अंशों के सम्बन्ध में देनी होगी।
6. **अभिगोपन** – यदि अंशों एवं ऋणपत्रों का निर्गमन अभिगोपक के माध्यम से करना है तो अभिगोपक की क्षमता एवं अभिगोपन कमीशन इत्यादि जानकारी देनी होगी।
7. **अंश प्रमाणपत्र एवं अंश अधिपत्र** – अंश प्रमाणपत्र एवं अंश अधिपत्र के निर्गमन की शर्तें एवं प्रविधि का उल्लेख, इस शीर्षक में करना होता है।
8. **सदस्य एवं अंशधारी** – इस शीर्षक में सदस्यों के अधिकार, मताधिकार, सूचना का अधिकार, सदस्यों का रजिस्ट्रार, विदेश में संधारित रजिस्टर इत्यादि के बारे में जानकारी देनी होगी।
9. **ऋण प्राप्ति के अधिकार** – अन्तर्नियमों में संचालकों के ऋण लेने के अधिकार एवं उसकी सीमाओं का वर्णन दिया हुआ होना चाहिये।
10. **लाभांश** – अन्तर्नियमों में लाभांश की घोषणा, लाभांश का भुगतान – लाभों का पूंजीकरण इत्यादि की जानकारी दी जाती है।
11. **संचालक** – इस शीर्षक में संचालकों की संख्या, उनकी योग्यता, नियुक्ति, पारिश्रमिक, पदमुक्ति के साथ संचालकों के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का समावेश किया जायेगा।
12. **प्रबन्धकीय कर्मचारी** – अन्तर्नियमों में प्रबन्धक, प्रबन्ध संचालक, अंकेक्षक, सचिव, कोषाध्यक्ष इत्यादि के सम्बन्ध में भी जानकारी देनी होगी।
13. **सभायें** – अन्तर्नियमों में विभिन्न प्रकार की सभाओं, सूचना की विधि, सभाओं की कार्यवाही, कोरम, सूक्ष्म, एजेन्डा, प्रोक्षी, मताधिकार इत्यादि के सम्बन्ध में नियम दिये हुए होने चाहिये।
14. **समापन** – उन दशाओं का विवेचन जिनमें कम्पनी का समापन किया जा सकता है, साथ ही उस प्रक्रिया का विवेचन जिसकी समापन के समय अनुपालना की जायेगी।

(b) **विशेष विषय सामग्री (Special Contents)** –

कम्पनी अधिनियम में कुछ प्रावधान ऐसे है जिनका क्रियान्वयन तभी किया जा सकता है जब उनका उल्लेख पार्षद अन्तर्नियम में हो। अतः कम्पनी निम्नांकित अधिकारों का उपयोग, केवल उन्हीं दशाओं में कर सकती है जब वे पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत हो –

1. भारत के बाहर सार्वमुद्रा का उपयोग । (धारा – 50)
2. अपने ही अंशों को पुनः खरीदने (Buy Back) का अधिकार। (धारा 77 अ–ब)
3. शोधनीय पूर्वाधिकार अंशों को निर्गमन का अधिकार । (धारा – 80)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. अदत्त अंश पूंजी को स्वीकार करने का अधिकार। (धारा – 92)
5. चुकता पूंजी के अनुपात में लाभांश के भुगतान का अधिकार। (धारा – 93)
6. अंश पूंजी में परिवर्तन। (धारा 94)
7. अंश पूंजी में कमी का अधिकार। (धारा – 100)
8. विशेष वर्ग वाले अंशधारियों के हितों में परिवर्तन का अधिकार। (धारा– 106)
9. अंशों एवं ऋणपत्रों के हस्तांतरण की रजिस्ट्री करने से मना करने का अधिकार। (धारा 111 (1))
10. अंश अधिपत्र निर्गमित करने का अधिकार। (धारा 114)
11. कुछ दशाओं में अंश अधिपत्र के वाहक को सदस्य के रूप में स्वीकार करने का अधिकार। (धारा 115 (5))
12. देश के बाहर सदस्यों या ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर को रखने का अधिकार। (धारा– 157)
13. विशेष सूचना चाहने वाले प्रस्ताव । (धारा – 190)
14. कुछ दशाओं में पूंजी में से ब्याज के भुगतान का अधिकार – (धारा 208)
15. पार्षद सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ताओं को छोड़कर अन्य व्यक्तियों को प्रथम संचालक के रूप में स्वीकार करने का अधिकार। (धारा – 254)
16. संचालकों की नियुक्ति एवं बारी–बारी से निवृत्त करने का अधिकार। (धारा – 255)
17. संचालकों की संख्या में कमी या वृद्धि का अधिकार। (धारा – 255)
18. अतिरिक्त संचालक की नियुक्ति का अधिकार । (धारा – 260)
19. आकस्मिक रिक्तता की भरपाई हेतु संचालक की नियुक्ति का अधिकार । (धारा – 262)
20. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर संचालकों की नियुक्ति । (धारा 265)
21. योग्यता अंशों से सम्बन्धित अधिकार। (धारा 270)
22. कार्यवाहक संख्या के अभाव में सभा को स्थगित करने का अधिकार। (धारा 288)
23. संचालकों का पारिश्रमिक । (धारा 309)
24. वैकल्पिक संचालकों की नियुक्ति । (धारा 313)
25. प्रबन्धकीय कर्मचारियों के दायित्व को सीमित करने का अधिकार। (धारा 322 व 323)

(C) सीमानियम एवं अन्तर्नियमों का प्रभाव (Legal effect of Memorandum and Articles)

इन प्रलेखों के कानूनी प्रभाव को इस आधार पर समझा जा सकता है कि ये प्रलेख एक दूसरे को किस प्रकार बाध्य करते है,

1. **सदस्यों का कम्पनी के प्रति दायित्व** – पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम, सदस्यों को कम्पनी के प्रति ठीक उसी प्रकार बाध्य करते है जैसे कि सभी सदस्यों ने इन विलेखों पर अपने हस्ताक्षर किये हो।

बोरलैण्डस ट्रस्टी बनाम स्टील ब्रदर्स एण्ड कम्पनी लि. [(1901) 1 ch. 279]

कम्पनी के संशोधित अन्तर्नियमों में यह प्रावधान था कि यदि कोई सदस्य दिवालिया हो जाये तो अपने अंश, उचित मूल्य पर निर्दिष्ट व्यक्ति को बेचे जायेंगे। कुछ समय पश्चात् बोरलैण्ड दिवालिया हो गया और उसके प्रन्यासी ने अंश बेचने से मना कर दिया, यह तर्क देते हुए कि सदस्य संशोधित अन्तर्नियमों से बाध्य नहीं होता है।

निर्णय दिया गया कि बोरलैण्ड एवं उसका ट्रस्टी अंश बेचने के लिये बाध्य है क्यों कि अन्तर्नियम, सदस्यों एव कम्पनी के बीच अनुबन्ध का निर्माण करता हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **कम्पनी का सदस्यों के प्रति दायित्व** – इसी प्रकार कम्पनी भी सदस्यों के प्रति बाध्य होती है। सदस्य भी कम्पनी को अधिकारों के बाहर कार्य करने पर रोक सकती है।

वूड बनाम ओडेसा वाटरवर्क्स कम्पनी , (1889) 42 **Ch. D. 636**

अन्तर्नियमों में ये प्रावधान था कि संचालक , कम्पनी द्वारा अधिकृत होने पर चुकाये जाने वाले लाभांश की घोषणा कर सकते है। कम्पनी ने प्रस्ताव पारित करके सदस्यों को नकद में लाभांश देने के स्थान पर लाभांश बॉण्ड जारी कर दिया। सदस्यों द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय ने संचालकों को पारित प्रस्ताव के अनुरूप कार्य करने पर रोक लगा दी।

3. **सदस्यों का सदस्यों के प्रति दायित्व** – इन प्रलेखों के आधार पर सदस्य एक दूसरे के विरूद्ध भी वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

रैफिल्ड बनाम हैण्ड्स (1960) ch. 1

अन्तर्नियमों में यह प्रावधान था कि यदि कोई सदस्य अपने अंशों का हस्तांतरण करना चाहे तो इस आशय की सूचना संचालकों को देनी होगी। संचालक, उचित मूल्य पर, बराबर मात्रा में अंश क्रय करेंगे। जब किसी अंशधारी ने इस आशय की सूचना संचालकों को दी तो संचालक यह कह कर लेने से मना कर दिया कि वे अन्तर्नियमों की व्यवस्था से बाध्य नहीं है।

निर्णय दिया गया कि संचालक, सदस्य की हैशियत से निर्दिष्ट अंश लेने के लिए बाध्य है।

4. **कम्पनी का अन्य पक्षकारों के प्रति दायित्व** – अन्तर्नियमों के प्रावधान – कम्पनी एवं बाह्य पक्षकारों के बीच अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं करते है, अर्थात, अन्तर्नियम बाह्य पक्षकारों के लिए बाध्यकारी नहीं है। यह प्रावधान इस नियम पर आधारित है कि ''अनुबन्ध के लिए अजनबी व्यक्ति वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता''

एले बनाम पोजिटिव गवर्नमेंट एश्योरेन्स कम्पनी (1876) 1 ई.एक्ज. डी. 88

अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था थी कि एले को आजीवन कानूनी सलाहकार (Solicitor) के रूप में नियुक्ति की जायेगी और दुराचरण को छोड़कर अन्य किसी कारण से हटाया नहीं जायेगा। तत्पश्चात् एले को बिना दुराचरण के आरोपर पर भी हटा दिया गया। एले ने कम्पनी के विरूद्ध अनुबन्ध भंग के लिए वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि अन्तर्नियम बाह्य पक्षकारों के साथ अनुबन्ध का निर्माण नहीं करता हैं। अतः इस आधार पर वाद को खारिज कर दिया गया।

(D) रचनात्मक सूचना का सिद्धांत (Doctrine of constructive Notice)

रचनात्मक सूचना का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि कोई भी पक्षकार जो कम्पनी के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, वह पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियमों की विषय–वस्तु के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखता है क्यों कि जैसे ही ये प्रलेख पंजीकृत होते है, उसी समय ये सार्वजनिक प्रलेख हो जाते है। यहां तक कि रजिस्ट्रार का कार्यालय भी सार्वजनिक कार्यालय माना जाता है। अतः जब कोई व्यक्ति कम्पनी के साथ जुड़ने की इच्छा रखता है तो यह मानकर चला जाता है कि सम्बन्धित व्यक्ति ने न केवल विलेखों को देखा है बल्कि उनको ठीक तरह से समझ भी लिया है। इसलिए कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य कि इन प्रलेखों के माध्यम से वह सुनिश्चित करे कि किया जाने वाला कार्य कम्पनी की अधिकार सीमा के भीतर है अथवा नहीं।

जानकारी के अभाव में या लापरवाही के कारण कोई ऐसा व्यवहार या अनुबन्ध कर लिया जाता है जो कम्पनी के अधिकार क्षेत्र के बाहर (Ultra Vire) हो तो कम्पनी ऐसे कार्य के लिए अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी नहीं होगी। वह यह कह कर अपने दायित्व से बच नहीं सकता कि उसे उक्त प्रलेखों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं थी।

इस आशय की पुष्टि, **कोटला वेंकट स्वामी बनाम राममूर्ति, अ. आई. आर. (1934) मद्रास, 579** के आधार पर की जा सकती है।

कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह प्रावधान था कि कम्पनी की ओर से किये गये सभी अनुबन्धों एवं प्रलेखों पर प्रबन्ध संचालक, सचिव एवं कार्यकारी संचालक के हस्ताक्षर होंगें। कम्पनी ने वादी के पक्ष में एक बन्धक–पत्र **(Mortgage deed)** जारी किया जिस पर केवल सचिव एवं कार्यकारी संचालक के हस्ताक्षर थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निर्णय दिया गया कि 'बन्धक पत्र' निष्प्रभावी **(in-operative)** है। अपने निर्णय में दलील देते हुए विद्वान न्यायाधीश ने कहा, यदि वादी, अन्तर्नियमों को देख लेता तो उसे विलेख की अहर्ताओं के सम्बन्ध में जानकारी हो जाती''।

(E) आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धांत (Doctrine of Indoor Management)

आंतरिक प्रबन्ध के सिद्धांत की भूमिका, रचनात्मक सूचना के सिद्धांत से भिन्न है। रचनात्मक सूचना का सिद्धांत, बाह्य पक्षकारों के विरूद्ध कम्पनी के हितों रक्षा करता है जबकि आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धांत कम्पनी के विरूद्ध बाह्य पक्षकारों के हितों की रक्षा करता है।

आंतरिक प्रबन्ध के सिद्धांत का यह कहना है कि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम के सम्बन्ध में जानकारी होनी चाहिए परन्तु उसका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह यह सुनिश्चित करें कि निर्दिष्ट नियमों एवं उपनियमों की अनुपालना हो रही है अथवा नहीं।

बाह्य पक्षकारों को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि कार्य विलेखों से असंगत नहीं है। विलेखों की अनुपालना की जा रही है अथवा नहीं, यह देखने का कार्य तृतीय पक्षकारों का नहीं है। यदि कम्पनी द्वारा अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय वांछित प्रविधि की अनुपालना न की है तो भी कम्पनी अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी मानी जायेगी।

रॉयल ब्रिटिश बैंक बनाम टरक्वान्ड (Turquand) (1856) 119 ई. आर. 886

कम्पनी के अन्तर्नियमों में उल्लेख था कि संचालक, कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्ताव पारित कर 'बॉण्ड (Bond)' पर ऋण ले सकते हैं। संचालकों ने, बिना प्रस्ताव पारित किये, वादी से 'बॉण्ड' पर ऋण ले लिया। निर्णय दिया गया कि वादी 'बॉण्ड' में निर्दिष्ट धनराशि कम्पनी से प्राप्त कर सकता है क्योंकि वह यह मान सकता है कि कम्पनी द्वारा ऋण स्वीकृत करते समय पूर्व निर्धारित प्रक्रिया की अनुपालना की थी अर्थात् साधारण सभा में प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् ही बॉण्ड पर ऋण लिया था।

इस सिद्धांत का मुख्य सार यह है कि तृतीय पक्षकारों को कम्पनी के आंतरिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में व्यथित या परेशान होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अन्दर के दरवाजे बाह्य पक्षकारों के लिये बंद होते हैं।

नियम के अपवाद

निम्नांकित दशाओं में आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा, अर्थात, कम्पनी अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी नहीं होगी –

1. **अनियमितता की जानकारी हो** – यदि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति को आंतरिक प्रबन्ध में अनियमितता की जानकारी हो अथवा वह स्वयं अनियमितता से जुड़ा हुआ हो तो इस सिद्धांत का लाभ वह नहीं उठा सकता।
2. **कपट** – कम्पनी, कभी भी अपने अधिकारियों के कपटपूर्ण आचरण के लिए उत्तरदायी नहीं होगी। इस स्थिति में दोषी अधिकारी स्वयं, अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगें।
3. **लापरवाही** – यदि यह सिद्ध हो जाये कि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाला व्यक्ति, सामान्य विवेकशील व्यक्ति की तरह कार्य करता तो उसे अनियिमतता की जानकारी हो जाती अथवा विद्यमान परिस्थितियों से ऐसा प्रतीत हो कि आंतरिक व्यवस्था को देखना उसका कर्त्तव्य हो और उसने ऐसा न किया हो तो भी सम्बन्धित व्यक्ति को इस नियम का फायदा नहीं दिया जा सकता।
4. **अन्तर्नियमों के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव** – यदि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति को अन्तर्नियमों की विषय–वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी ही न हो तो भी टरक्वान्ड का नियम लागू नहीं किया जा सकता।
5. **जब कार्य प्रत्यक्ष अधिकारों के बाहर हो** – यदि कार्य प्रत्यक्षतः कम्पनी के अधिकारों के बाहर हो या कम्पनी के उद्देश्य के असंगत हो तो भी कम्पनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

(F) अन्तर्नियमों में परिवर्तन (Alteration of Articles)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना, कम्पनी का मौलिक अधिकार है जो कम्पनी अधिनियम की धारा 31 द्वारा दिया गया है। कोई भी कम्पनी साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियमों में परिर्वतन कर सकती है। यह एक विधिक अधिकार है जिसे कोई भी व्यक्ति छीन नहीं सकता। यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था कर दी जाए कि कम्पनी अन्तर्नियमों के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती तो यह प्रावधान कम्पनी अधिनियम की धारा 31 का उल्लंघन माना जाएगा और परिणामतः निष्प्रभावी एवं अर्थहीन माना जाएगा।

परिवर्तित अन्तर्नियमों का प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि मूल अन्तर्नियमों का होता है।

परिवर्तन की सीमाएँ –

1. **विशेष प्रस्ताव द्वारा परिवर्तन** – परिवर्तन की सबसे बड़ी सीमा यह है कि अन्तर्नियमों में परिवर्तन केवल विशेष प्रस्ताव द्वारा ही किया जा सकता है।
2. **अधिनियम की इच्छा के विपरीत न हो** – अन्तर्नियमों में कोई ऐसा परिवर्तन भी नहीं किया जा सकता जो कम्पनी अधिनियम में निर्दिष्ट प्रावधान के विपरीत हो।
3. **पार्षद सीमानियम के विपरीत न हो** – वस्तुतः पार्षद अन्तर्नियम, सीमानियम का अधीनस्थ प्रलेख माना जाता है। सीमानियम कम्पनी के कार्यक्षेत्र का निर्धारण करता है जबकि अन्तर्नियम कम्पनी के आंतरिक नियम होते हैं। अतः इस प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये जो पार्षद सीमानियम का अतिक्रमण करें।
4. **सदस्यों की लिखित सहमति** – यदि अन्तर्नियमों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप सदस्यों के दायित्व में वृद्धि हो तो ऐसा परिवर्तन तब तक निष्प्रभावी माना जायेगा जब तक कि सदस्यों की लिखत सहमति प्राप्त न हो जाये।
5. **केन्द्रीय सरकार की लिखित सहमति** – यदि अन्तर्नियमों में परिवर्तन **निम्नांकित विषयों से** सम्बन्धित है तो वह तब तक प्रभावी नहीं माना जायेगा जब तक कि केन्द्रीय सरकार की लिखित सहमति प्राप्त न हो जाये।
   1. यदि सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तन करना हो। (धारा – 31)
   2. यदि परिवर्तन संचालकों की संख्या में वृद्धि से सम्बन्धित हो। (धारा – 259)
   3. यदि परिवर्तन प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति से सम्बन्धित हो।
6. **न्यायाधीकरण द्वारा अनुमोदन (धारा 404)**– यदि अन्याय **(Oppression)** और कुप्रबन्ध (Mismanagement) को रोकने के लिए न्यायाधिकरण से कोई आदेश प्राप्त हुआ है तो अन्तर्नियमों में परिवर्तन करते समय आदेश की अक्षरशः अनुपालना होनी चाहिये।
7. **अवैध कार्यों की स्वीकृति के लिए नहीं** – अन्तर्नियमों में परिवर्तन करने से अवैध कार्य वैध नहीं हो सकते। अतः अवैध कार्यों की पुष्टि हेतु परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिये।
8. **कम्पनी के सामान्य हितों के लिए** – परिवर्तन के प्रति सोच सकारात्मक एवं कम्पनी के अधिकतम हित में होनी चाहिये। यदि परिवर्तन का उद्देश्य बहुमत वाले अंशधारियों को लाभ पहुंचाना एवं अल्पमत वाले अंशधारियों के हितों के प्रतिकूल हो तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन को रोक सकता है।
9. **परिवर्तन न्यायसंगत होना चाहिए** – अन्तर्नियमों में किया गया परिवर्तन 'न्याय एवं समानता' (Justice and Equality) पर आधारित होना चाहिये, अर्थात् विभेदकारी तरीके से लागू नहीं होना चाहिये। साथ ही परिवर्तन सदविश्वास के साथ एवं उचित सूझ–बूझ से किया जाना चाहिये।
10. **परिवर्तन अनुबन्ध भंग के लिए नहीं** – ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिये जो कम्पनी एवं तृतीय पक्षकार के बीच हुए पृथक अनुबन्ध को भंग करने का आधार बने। इस नियम से किया गया परिवर्तन व्यर्थ एवं अप्रभावी होगा।

(G) पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर (Difference between Memorandum of Association and Articles of Association)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जैसा कि हम जानते हैं कि पार्षद अन्तर्नियम, पार्षद सीमानियम के अधीन तैयार किया जाता है। पार्षद सीमानियम कम्पनी के कार्यक्षेत्र की सीमाओं को परिभाषित करता है जिसके बाहर कम्पनी यात्रा नहीं कर सकती, जबकि अन्तर्नियम, कम्पनी के आन्तरिक नियमों का द्योतक है। अन्तर्नियमों के द्वारा कम्पनी अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार नहीं कर सकती। मोटे तौर पर दोनों प्रलेखों में अन्तर इस प्रकार है–

अन्तर का आधार	पार्षद सीमानियम	पार्षद अन्तर्नियम
1. महत्व	यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रलेख है।	इसका गौण महत्व है।
2. आवश्यकता	यह कम्पनी के पंजीयन के लिये आवश्यक है।	अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी के लिये आवश्यक नहीं है।
3. विषय–वस्तु	यह प्रलेख ऐसे वाक्यों को समावेशित करता है जो कम्पनी की सीमाएं निर्धारित करते हैं।	यह नियमों एवं उपनियमों का ऐसा प्रलेख है जिसके द्वारा कम्पनी का आंतरिक प्रबन्ध किया जाता है।
4. कार्यक्षेत्र की सीमा	पार्षद सीमानियम कम्पनी अधिनियम के विरूद्ध तैयार नहीं किया जा सकता।	पार्षद अन्तर्नियम, सीमानियम एवं अधिनियम, दोनों के अधीन तैयार किया जाता है।
5. स्पष्टीकरण	सीमानियम में अन्तर्नियमों का स्पष्टीकरण नहीं होता हैं।	जबकि अन्तर्नियमों में सीमानियम का स्पष्टीकरण होता है।
6. परिवर्तन	इस प्रलेख में आसानी से परिवर्तन नहीं किया जा सकता।	'विशेष प्रस्ताव' द्वारा आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है।
7. अनुबन्ध	यह प्रलेख कम्पनी एवं बाह्य पक्षकारों के साथ अनुबन्ध का आधार होता है।	यह प्रलेख कम्पनी एवं सदस्यों के बीच अनुबन्ध का आधार होता है।
8. नियंत्रण	यह कम्पनी अधिनियम द्वारा शासित होता है।	यह पार्षद सीमानियम द्वारा शासित होता है।
9. बाह्य पक्षकारों के साथ सम्बन्ध	अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय पार्षद सीमानियम के सम्बन्ध में जानकारी होना अनिवार्य है।	बाह्य पक्षकारों के साथ सीमित सम्बन्ध होता है, क्योंकि यह आन्तरिक प्रबन्ध को दर्शाता है।
10. अधिकारों के बाहर	पार्षद सीमानियम के बाहर किये गये कार्य को सर्व–सहमति के आधार पर भी पुष्टि नहीं की जा सकती।	परन्तु अन्तर्नियमों के बाहर एवं सीमानियम के भीतर कार्यों की पुष्टि की जा सकती है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पार्षद अन्तर्नियम क्या है ? (5 अंक)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(What is an 'Articles of Association'. ?)

2. ‘रचनात्मक सूचना का सिद्धांत क्या है ? (5 अंक)

(What is doctrine of 'Constructive Notice'.?)

3. आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धांत क्या है ? (5 अंक)

(What is the doctrine of Indoor Management)

4. पार्षद अन्तर्नियम क्या है ? इसकी विषयवस्तु क्या है ? समझाइये। (5 अंक)

(What is an 'Articles of Association' ? What are its contents ? Explain.)

5. पार्षद अन्तर्नियम क्या है ?सीमानियम एवं अन्तर्नियम में अन्तर स्पष्ट कीजिए। (15 अंक)

(What is an 'Articles of Association'? Distinguish between Memorandum and Articles of Association.)

6. ‘‘पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम सार्वजनिक प्रलेख है’’ विवेचना करते हुए आंतरिक प्रबन्ध के सिद्धांत की विवेचना कीजिये। (15 अंक)

("Memorandum and Articles are public documents" Explain this statement and discuss the doctrine of 'Indoor Management'.

7. क्या पार्षद अन्तर्नियम को परिवर्तित किया जा सकता है ? यदि हां तो किन प्रतिबन्धों के अधीन परिवर्तन संभव है। (15 अंक)

(Can Articles of Association be altered? If so, under what restrictions they may be altered.)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अध्याय ७ – प्रविवरण

(Prospectus)

(A) प्रस्तावना – अर्थ एवं विशेषताएँ (Introduction – Meaning and Characteristics)

सार्वजनिक कम्पनी के निर्माण का मुख्य प्रयोजन, सार्वजनिक अभिदान के माध्यम से पूंजी की व्यवस्था करना होता है। जब कम्पनी को बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता हो और स्वयं के साधनों से पूंजी जुटाना सम्भव न हो तो जनता की छोटी–छोटी बचतों को आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से पूंजी की व्यवस्था करने से निम्नांकित दो लाभ मिलते हैं–

1. कम्पनी, अपनी आवश्यकतानुसार चाहे जितनी पूंजी की व्यवस्था कर सकती है।
2. सीमित दायित्व के साथ–साथ अपनी सामर्थ्यता के अनुसार अंशदान दिया जाता है, अतः जोखिम की मात्रा को भी सीमित किया जा सकता है।

इस प्रकार छोटे–छोटे विनियोजक अपनी पूंजी का लाभदायक उपयोग करते हुए, राष्ट्रीय निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए कम्पनी को एक ऐसा प्रलेख जिसमें कम्पनी से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण सूचनाएँ, विशेषकर विनियोजकों के हितों को एवं उनके निर्णय को प्रभावित करने वाली सूचनाएँ देते हुए जनता के बीच जारी करना पड़ता है। ऐसे प्रलेख को ही प्रविवरण के नाम से जाना जाता है।

प्रविवरण वह खिड़की है जिसके माध्यम से बाह्य पक्षकार या विनियोजन कम्पनी के विंहगम दृश्य को देख सकते हैं। अतः कम्पनी को चाहिये कि कम्पनी अपनी सभी महत्वपूर्ण क्रियाओं, भावी सम्भावनाओं एवं विगत इतिहास (यदि हो तो) के बारे में जानकारी प्रदान करें। क्योंकि विनियोजकों के द्वारा विनियोग करने या न करने का निर्णय मूलतः प्रविवरण में दी गई सूचनाओं एवं विषय–वस्तु के अध्ययन के आधार पर ही लिया जाता हैं।

धारा 2 (36) के अनुसार, ''प्रविवरण का आशय ऐसे विलेख से है जो प्रविवरण की तरह वर्णित अथवा निर्गमित किया जाता है तथा इसमें ऐसी सूचना, परिपत्र, विज्ञापन अथवा अन्य प्रपत्र शामिल किये जाते हैं जो कि एक समामेलित संस्था के अंशों या ऋणपत्रों के खरीदने के लिए जनता से प्रस्ताव आमंत्रित करते हैं।''

('Prospectus means any document described or issued as a prospectus and includes any notice, circular, advertisement or other document inviting offers from the public for the subscription or purchase of any shares in, or debentures of, a body corporate.")

पेरिन्स एण्ड जाफरे के अनुसार, ''प्रविवरण एक ऐसा प्रलेख है जिसमें निर्गमन की शर्तें दी हुई होती है तथा इसके द्वारा अंशों या ऋणपत्रों को क्रय करने अथवा अभिदान हेतु जनता को निमन्त्रण दिया जाता है।

इस प्रकार कोई भी प्रलेख, जो कम्पनी के अंशों एवं ऋणपत्रों के क्रय कने हेतु जनता को निमंत्रण दिया जाता है।, उसे प्रविवरण कहते हैं।

विशेषताएँ

1. यह एक प्रलेख है।
2. इसका निर्गमन समामेलन के पश्चात् किया जाता है।
3. इसमें किसी भी सूचना, परिपत्र, विज्ञापन इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।
4. इसका मुख्य प्रयोजन अंशों या ऋणपत्रों में अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण देना होता है।
5. यह केवल सार्वजनिक कम्पनी द्वारा ही निर्गमित किया जा सकता है।
6. निजी कम्पनी प्रविवरण के निर्गमन को निषेध करती है।
7. इस प्रलेख के द्वारा सार्वजनिक जमाएँ (Public Deposits) भी आमंत्रित की जा सकती है। (धारा 58 B)
8. इसमें तिथि का उल्लेख होता है जो सामान्यतः प्रविवरण के निर्गमन की तिथि मानी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. यह संचालक या प्रस्तावित संचालक द्वारा हस्ताक्षरित होता है।

(B) जनता को निमंत्रण (Invitation to the public)

प्रविवरण की परिभाषा एवं अर्थ से स्पष्ट है कि यह जनता को दिया जाने वाला निमंत्रण होता है। यदि इस विलेख में 'जनता को निमंत्रण' का भाव न हो तो यह अपना अर्थ खो देता है। अतः यह सुनिश्चित करना होता है कि कोई निमंत्रण, जनता को दिया गया है अथवा नहीं। यदि कोई विलेख 'जनता को निमंत्रण' की शर्त सन्तुष्ट करता हो तो उसे प्रविवरण ही माना जायेगा, चाहे उसका निर्गमन जनता के किसी वर्ग को ही क्यों न हो। दूसरे शब्दों में, विद्यार्थी वर्ग, महिला वर्ग, विशेष आयु वर्ग, वेतनभोगी कर्मचारी वर्ग इत्यादि वर्गों को आमंत्रित किया जाता है तो भी उसे प्रविवरण ही माना जाएगा और इस प्रकार से दिया गया निमंत्रण जनता को दिया गया निमंत्रण ही समझा जायेगा।

नेश बनाम लिंड, 199 अ.सी. 158:140 एल.टी. 146 के मामले में निर्णय दिया, ''यदि किसी एकल व्यक्ति को निजी स्तर पर सूचना दी जाती है तो यह निमंत्रण की श्रेणी मे नहीं माना जायेगा।''

कम्पनी द्वारा तैयार किया गया एक ऐसा विलेख जिस पर अंकित था, ''पूर्णतः निजी एवं गोपनीय'' (Strictly Private & Confiedetial), परन्तु प्रविवरण के रूप में तैयार एवं निर्गमित किया गया। इस विलेख में अधिनियम द्वारा चाही गई समस्त सूचनाओं का समावेश नहीं था। कम्पनी ने आवेदन पत्र के साथ यह विलेख कानूनी सलाहकार (Solicitor) के पास प्रेषित किया, जिसने यह प्रपत्र वादी (Plaintiff) को सौंप दिया।

निर्णय दिया गया कि यह निमंत्रण, सार्वजनिक निमंत्रण की श्रेणी में नहीं आता है, अतः वादी की याचिका को खारिज कर दिया गया।

निम्नांकित मामलों में दिये गये निमंत्रण को 'जनता को दिया गया निमंत्रण' नहीं माना जाता है–

1. जब अंश या ऋणपत्र, उन्हीं व्यक्तियों के लिए उपलब्ध हो जिन्होंने इस आशय के लिए मांग की हो।
2. जब निमंत्रण इस प्रकार से दिया गया हो कि मामले की परिस्थितियों के अनुसार लगे कि यह, 'निमंत्रण देने वाले एवं लेने वाले' के बीच घरेलू मामला हो।
3. जब निमंत्रण पर स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ हो कि 'पूर्णतः निजी एवं गोपनीय' प्रकाशन के लिए नहीं।
4. जब अंश या ऋणपत्र, निमंत्रण पाने वाले के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में परित्याग (Renounce) नहीं किया जा सकता हो।

कम्पनी संशोधित अधिनियम 2000 के अनुसार, ''यदि कोई कम्पनी वित्तीय वर्ष में एक साथ 50 या अधिक व्यक्तियों को आमंत्रित करती है तो इसे जनता को दिया गया निमंत्रण माना जाएगा।''

(B) प्रविवरण के निर्गमन से सम्बन्धित प्रावधान (Legal Provisions as to issue of Prospectus)

प्रविवरण के निर्गमन से सम्बन्धित निम्नांकित वैधानिक प्रावधान है –

1. प्रत्येक प्रविवरण पर तिथि लिखी हुई होनी चाहिये। (धारा 55)
2. प्रत्येक प्रविवरण में अनुसूची–द्वितीय द्वारा विनिर्दिष्ट तरीके से जानकारी दी जानी चाहिये। (धारा 56)
3. प्रत्येक आवेदन पत्र के साथ प्रविवरण या मुख्य सूचनाओं सहित स्मरण पत्र संलग्न होना चाहिये।
4. विशेषज्ञ, जिसने अपनी राय व्यक्त की है, उसका कम्पनी के साथ 'सारवान हित' नहीं होना चाहिये। (धारा 57)
5. यदि किसी विशेषज्ञ का विवरण प्रविवरण में सम्मिलित किया है तो उसकी लिखित सहमति प्राप्त करनी चाहिये, अन्यथा वह कथन निष्प्रभावी माना जायेगा। (धारा 58)
6. प्रत्येक प्रविवरण, निर्गमन से पूर्व रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत होना चाहिये। (धारा 60)
7. रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत होने के अगले 30 दिनों में जनता को निर्गमित किया जाना चाहिये। (धारा 60 (4))

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. प्रविवरण के पंजीकृत होने के पश्चात् साधारण सभा में सदस्यों की सहमति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता। (धारा 61)

9. प्रविवरण में यह चेतावनी भी होनी चाहिये कि कोई भी व्यक्ति , काल्पनिक नाम (Fictitious Name) से आवेदन न करें। (धारा 68 A)

10. पंजीयन से पूर्व 'सेबी' द्वारा जांच करानी चाहिये।

11. प्रविवरण में उन स्कन्ध विनियम केन्द्र/केन्द्रों का नाम दिया जाना चाहिए जहां सूचियन हेतु आवेदन किया है। (धारा 73 (A))

(D) प्रविवरण की विषय–वस्तु (Content of Prospectus)

वस्तुतः प्रविवरण कम्पनी का सार (essence) है। प्रविवरण के माध्यम से बाहय पक्षकार या विनियोजक कम्पनी के सम्बन्ध में सम्पूर्ण महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। प्रविवरण में सम्पूर्ण तथ्यात्मक जानकारी व्यवस्थित तरीके से एवं पूर्ण निर्धारित मापदण्डों के अनुसार दी हुई होती है। अतः विनियोजकों के द्वारा विनियोजन का निर्णय इसी विलेख द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित होता है।

धारा 56 में उल्लेख है कि प्रविवरण में – 1. द्वितीय अनुसूची के प्रथम भाग में वर्णित जानकारी दी जानी चाहिए, 2. साथ ही द्वितीय अनुसूची के द्वितीय भाग के अुनसार तैयार की गई रिपोर्ट संलग्न होनी चाहिये, और 3. तृतीय भाग में, भाग प्रथम एवं द्वितीय में प्रदत्त सूचनाओं का स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिये।

संक्षेप में प्रविवरण की विषय–वस्तु इस प्रकार है –

(a) द्वितीय अनुसूची का भाग प्रथम (Part I of Schedule II) -

1. **सामान्य सूचनाएँ (General Informations)**

1. कम्पनी का नाम एवं पंजीकृत कार्यालय का पता।
2. केन्द्रीय सरकार की सहमति (if any)
3. स्कन्ध विनियम केन्द्रों का नाम जहां सूचियन हेतु आवेदन किया है।
4. 'काल्पनिक नाम' से आवेदन पर चेतावनी।
5. निर्गमन बंद होने के अगले 90 दिनों में न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी न होने पर प्राप्त समस्त धनराशि लौटाने की घोषणा।
6. निर्गमन खुलने, बंद होने एवं जल्दी बंद होने की तिथि।
7. अंकेक्षकों एवं अग्रणी प्रबन्धकों (Lead Manger) के नाम एवं पते।
8. ऋणपत्रों के निर्गमन की दशा में, ऋणपत्र न्यास विलेख (Debenture trust deed) के तहत न्यासी का नाम एवं पता।
9. यदि किसी जांच अभिकरण द्वारा अंशों एवं ऋणपत्रों का मूल्याकंन कराया है तो इसकी सूचना।
10. अभिगोपकों का नाम एवं पता, साथ ही अभिगोपित राशि।
11. अभिगोपकों द्वारा घोषणा कि उनके पास सम्भावित दायित्वों को पूरा करने हेतु पर्याप्त कोष है।
12. संचालकों द्वारा घोषणा कि आवेदन एवं आबंटन के साथ प्राप्त सम्पूर्ण धनराशि पृथक बैंक खाते में रखी जायेगी।

2. **कम्पनी की पूंजी संरचना (Capital Structure of the Company) –**

1. अधिकृत पूंजी, निर्गमित, अभिदत्त एवं प्रदत्त पूंजी।
2. वर्तमान निर्गमन का आकार, जिसमें प्रवर्तकों या किसी अन्य को वरीयता दी जा रही हो तो उसका पृथकसः उल्लेख।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. वर्तमान निर्गमन एवं ऋणपत्रों को अंशों में परिवर्तन का प्रावधान हो तो परिवर्तन के पश्चात् चुकता पूंजी।

3. **वर्तमान निर्गमन की शर्तें–(Terms of the present issue) –**

1. भुगतान की शर्तें
2. विलेख धारकों के अधिकार
3. आवेदन का तरीका, आवेदन पत्रों की उपलब्धता, भुगतान का तरीका

इत्यादि।

4. **निर्गमन का विवरण–(Particulars of the issue)** – 1. उद्देश्य 2. परियोजना की लागत 3. वित्त के साधन जिसमें प्रवर्तकों के अंशदान का उल्लेख हो।

5. **कम्पनी, प्रबन्ध एवं परियोजना–(Company, Management and Project)**

1. इतिहास, मुख्य उद्देश्य और कम्पनी का मुख्य व्यवसाय
2. सहायक कम्पनी या कम्पनियां हो तो उसकी जानकारी।
3. प्रवर्तक एवं उनकी पृष्ठभूमि।
4. प्रबन्धकीय कर्मचारियों के नाम एवं पते।
5. परियोजना की स्थिति।
6. उत्पाद की प्रकृति।
7. भावी सम्भावनाएँ – कारोबार चालू करने के अगले 3 वर्षों में क्षमता के उपयोग की प्रत्याशा एवं भावी लाभ की सम्भावना।
8. पूंजी बाजार से सम्बन्धित आंकड़े – अधिकतम एवं न्यूनतम मूल्य।

6. यदि विगत तीन वर्षों में कम्पनी उसी समूह की अन्य पूंजी का निर्गमन किया हो तो उसका विवरण।

7. यदि कम्पनी एवं संचालकों के विरूद्ध कोई आपराधिक मामला लम्बित हो तो उसका उल्लेख साथ ही वैधानिक देयताओं के सम्बन्ध में त्रुटि की जानकारी।

9. जोखिम तत्वों के सम्बन्ध में प्रबन्धकों की अवधारणा – इसमें कच्चे माल की उपलब्धता, विनियम दरों में परिवर्तन की सम्भावना, विपणन बाधाएँ, परियोजना में विलम्ब इत्यादि तथ्यों को सम्मिलित करना होगा।

(b) द्वितीय अनुसूची का द्वितीय भाग (Part II of Schedule II) –

1. **सामान्य सूचनाएं (General Informations) –**

1. संचालकों, अंकेक्षकों, कानूनी सलाहकारों, अग्रणी प्रबन्धकों, निर्गमन रजिस्ट्रार, बैंकर, विशेषज्ञ आदि की लिखित सहमति।
2. विशेषज्ञों का कथन, यदि सम्मिलित किया गया हो तो।
3. पिछले तीन वर्षों में संचालकों एवं अंकेक्षकों में कोई परिवर्तन हुआ हो तो कारण सहित जानकारी।
4. निर्गमन के अधिकार हेतु पारित प्रस्ताव की प्रति।
5. आबंटन एवं अंश प्रमाण–पत्र अवधि एवं प्रक्रिया।
6. कम्पनी सचिव, कानूनी सलाहकार, अग्रणी प्रबन्धक, अंकेक्षक, बैंकर, ब्रोकर इत्यादि के नाम एवं पते।

2. **वित्तीय सूचनाएँ –**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. लाभ हानि के साथ–साथ सम्पत्तियों और दायित्वों के सम्बन्ध में अंकेक्षकों की रिपोर्ट, पिछले 5 वर्षों में चुकाई गई लाभांश की दर, सहायक कम्पनी/कम्पनियों (यदि हो) के सम्बन्ध में पिछले 5 वर्षों की अंकेक्षकों की रिपोर्ट।
2. यदि निर्गमन से प्राप्त राशि का उपयोग विद्यमान उपक्रम को क्रय करना हो अथवा विद्यमान उपक्रम के 50 प्रतिशत से अधिक भाग को क्रय करना हो तो पिछले 5 वर्षों के लाभ–हानि खाते एवं चिट्ठे के सम्बन्ध में लेखापाल की रिपोर्ट।

3. **वैधानिक एवं अन्य सूचनाएँ – (Statutory and Other Inforamations) –**

1. न्यूनतम अभिदान।
2. निर्गमन का व्यय जिसमें, सलाहकारों, निर्गमन रजिस्ट्रार, निर्गमन प्रबन्धक, ऋणपत्रधारियों के प्रन्यासी इत्यादि का शुल्क भी सम्मिलित हो।
3. अभिगोपन कमीशन एवं दलाली।
4. पिछले 5 वर्षों के सार्वजनिक निर्गमों या अधिकार अंशों का विवरण।
5. पूर्व के निर्गमों पर कमीशन या दलाली।
6. नकद के अलावा अंशों का निर्गमन।
7. प्रविवरण जारी करने के तिथि तक ऋणपत्र, शोध्य पूर्वाधिकार अंश अथवा अन्य प्रलेख जिनका शोधन बाकी है – की राशि।
8. अभिदान करने का विकल्प।
9. निर्गमन से प्राप्त धनराशि का स्थाई सम्पत्तियों में किया गया उपयोग।
10. संचालकों, प्रस्तावित संचालकों, पूर्णकालिक संचालकों का पारिश्रमिक, कम्पनी के साथ जुड़ा हुआ हित, ऋण लेने की शक्तियां एवं योग्यता अंश इत्यादि की जानकारी।
11. सदस्यों का मताधिकार, लाभांश, अंशों पर ग्रहणाधिकार, अंशों को जब्त करने, अधिकारों में परिवर्तन की प्रक्रिया इत्यादि प्रावधानों का ब्यौरा।
12. अंशों या ऋणपत्रों के हस्तांतरण पर कोई प्रतिबन्ध, हो तो।
13. पिछले 5 वर्षों में सम्पत्तियों के पुनर्मूल्याकंन का विवरण।
14. महत्वपूर्ण अनुबन्ध एवं प्रलेखों की जांच।

(c) द्वितीय अनुसूची का तृतीय भाग की विषय सामग्री

(Subject matter of Part III of Schedule II) –

वस्तुतः इस शीर्षक में उपर्युक्त विषय सामग्री के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण दिया हुआ होता है। साथ ही निम्नांकित जानकारी दी हुई होती है :–

1. **प्रलेखों की जांच** – समय एवं स्थान जहां महत्वपूर्ण अनुबन्धों, लेखों एवं अन्य आधारभूत प्रलेखों की जांच की जा सकती है।
2. **घोषणा** – कम्पनी द्वारा यह घोषणा कि, कम्पनी अधिनियम, सेबी के दिशा–निर्देशों एवं केन्द्रीय सरकार के प्रावधानों की अनुपालना कर ली गई है और कुछ भी प्रावधानों के विपरीत नहीं हैं।

(E) प्रविवरण में भूल और मिथ्याकथन एवं उनका प्रभाव

(Omission and mis-statement in Prospectus and their consequences) –

प्रविवरण तैयार करने का 'स्वर्णिम नियम' (Golden rule)। वस्तुतः प्रविवरण में निर्दिष्ट जानकारी के आधार पर जन सामान्य यह समझ सकते है कि कम्पनी क्या है ? कम्पनी की भावी योजनाएँ क्या है ? और कम्पनी का भविष्य कैसा है ? अतः कम्पनी के साथ व्यवहार करने अथवा विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने का यह एक मुख्य आधार है। इसी प्रलेख के द्वारा सार्वजनिक जमाएँ आमंत्रित की जाती है और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंशों एवं ऋणपत्रों में अभिदान हेतु जनता को निमंत्रण दिया जाता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रलेख में दी गई सम्पूर्ण जानकारी ईमानदारी, सत्यनिष्ठा एवं समझदारी के साथ दी जानी चाहिए तथा किसी भी तथ्यात्मक बात को छिपाना नहीं चाहिए। मिथ्यावर्णन और तथ्यात्मक छिपाव विनियोजकों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए प्रविवरण तैयार करते समय अधिकतम सावधानी की अपेक्षा की गई है।

प्रविवरण जारी करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों का यह दायित्व है कि प्रविवरण में दी गई तथ्यात्मक जानकारी न केवल पूर्णतः सही होनी चाहिये बल्कि किसी सारभूत तथ्य को छिपाना भी नहीं चाहिये। प्रविवरण में अपेक्षित इस प्रकार की ईमानदारी एवं विश्वसनियता को ही 'स्वर्णिम नियम' का सिद्धांत कहा जाता है। इस सिद्धांत की अनुपालना वी.सी. कीण्डरसले द्वारा ''न्यू ब्रसविक एटसेट्रा कम्पनी बनाम मगरिज (1860)'' । Dr. and sm. 33 के मामले में की थी। इसी सिद्धांत को वी.सी. पेजवुड ने 'अंशधारियों एवं संचालकों के बीच आचरण का नियम (The rule of conduct between shareholders and directors) बताया।

धारा 65 में स्पष्ट है कि एक प्रविवरण मिथ्याकथन एवं भूल द्वारा प्रेरित तब माना जाता है जब–

1. प्रविवरण में सम्मिलित किया गया कथन अपने आप में भ्रमित करने वाला हो अथवा जिस रूप में उसका उपयोग किया गया है, उस रूप में भ्रमित (Misleading) करने वाला हो।

2- किसी भूल के कारण प्रविवरण को भ्रमित करने वाला समझा जाये। (Calculated to mislead)

इस प्रकार प्रविवरण में सम्मिलित असत्य कथन अथवा भूल अथवा भ्रम उत्पन्न करने वाले भाव को ही मिथ्याकथन कहा जाता है।

भूल एवं मिथ्याकथन का प्रभाव :–

संचालकों द्वारा प्रविवरण तैयार करते समय अतिशयोक्तिपूर्ण एवं चापलूसीयुक्त भाषा का उपयोग न हो, इस प्रयोजनार्थ पीड़ित पक्षकार को दोषी पक्षकारों के विरूद्ध निम्नांकित अधिकार प्राप्त है :–

(a) **कम्पनी के विरूद्ध अधिकार (Righst against company)** – यदि किसी व्यक्ति ने प्रविवरण में विद्यमान असत्यकथन या भूल से प्रेरित होकर अंशों में अभिदान किया हो तो कम्पनी के विरूद्ध निम्नांकित दो अधिकार प्राप्त होंगे –

1. **अनुबन्ध के परित्याग का अधिकार** – **(Rescission of the contract)** – इस अधिकार के तहत् आबंटी **(Allottee)** आबंटित अंशों का परित्याग कर सकता है, चाहे प्रविवरण में सम्मिलित मिथ्याकथन जानबूझकर हो अथवा अज्ञानवश। अंशों का परित्याग करने के साथ ही पीड़ित पक्षकार चुकाई राशि वापिस प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः इस प्रकार का अनुबन्ध व्यर्थनीय माना जाता है जिसका क्रियान्वयन करना या न करना पूर्णतः पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर निर्भर करता है। परन्तु इस अधिकार का उपयोग करते ही आबंटित अंशों का समर्पण करना होता है। समर्पण करते ही अंशधारी का नाम सदस्यों के रजिस्टर में से हटा दिया जाता है। अंशों के परित्याग का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब –

   1. कथन असत्य होना चाहिये।
   2. तथ्यों का सक्रिय छिपाव जो कपट की श्रेणी में हो।
   3. असत्य कथन से अंशधारी अंश लेने हेतु प्रेरित हुआ हो।
   4. मिथ्याकथन या भूल, महत्वपूर्ण तथ्य से सम्बन्धित होनी चाहिये जो क्रय के निर्णय को प्रभावित कर सके।
   5. अंशों का आवेदन करते समय अंशधारी ने प्रविवरण में दिये गये कथन पर विश्वास करते हुए आवेदन किया हो।
   6. प्रविवरण, कम्पनी या उसके अधिकृत व्यक्ति या संस्था द्वारा जारी हुआ हो।
   7. पीड़ित पक्षकार ने अंश कम्पनी से क्रय किये हो, खुले बाजार से नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. मिथ्याकथन की जानकारी होते ही पीड़ित पक्षकार ने इस अधिकार का उपयोग किया हो।

2. **क्षतिपूर्ति का अधिकार–(Claim for damage) -** यदि असत्य कथन से प्रेरित होने के कारण आबंटी को किसी प्रकार का नुकसान, अर्थात मौद्रिक क्षति हुई हो तो क्षतिपूर्ति के लिए भी कम्पनी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करते समय भी वे समस्त शर्तें सुनिश्चित करनी होगी जो अनुबन्ध के परित्याग के समय सिद्ध करी थी। यहां यह उल्लेखनीय है कि यदि पीड़ित पक्षकर कम्पनी के विरूद्ध क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम अंशों का परित्याग करना होगा, साथ ही यह प्रमाणित करना होगा कि सत्यता की जानकारी होने के पश्चात् अंशधारी के रूप में कार्य नहीं किया है।

(b) संचालकों, प्रवर्तकों एवं विशेषज्ञों के विरूद्ध अधिकार

(Righst against Directors, Promoters and Experts)

पीड़ित पक्षकार, प्रविवरण में मिथ्याकथन या भूल के कारण निम्नांकित पक्षकारों को उत्तरदायी ठहरा सकता है, बशर्ते कि उनका दोष सिद्ध हो जाये –

1. वे समस्त व्यक्ति जो प्रविवरण निर्गमन के समय कम्पनी में संचालक के रूप में कार्य कर रहे थे।
2. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने अपना नाम, प्रविवरण मे संचालक के रूप में देने के लिए सहमत हुए हो।
3. प्रत्येक व्यक्ति जो कम्पनी का प्रवर्तक हो।
4. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने प्रविवरण निर्गमन हेतु अन्य पक्षकारों को अधिकृत किया हो।

इस अधिकार को निम्नांकित खण्डों में विभक्त किया जा सकता है –

1. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद–(Claim for damage)** यदि यह सिद्ध कर दिया जाय कि कोई भी व्यक्ति अंश या ऋणपत्र क्रय करते समय, प्रविवरण में सम्मिलित मिथ्याकथन के कारण प्रेरित हुआ है तो प्रत्येक दोषी पक्षकार, पीड़ित पक्षकार की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा, बशर्ते कि–

   1. उसने प्रविवरण निर्ममन से पूर्व अपनी सहमति वापिस ले ली थी अथवा बिना सहमति के प्रविवरण निर्गमित किया गया था।
   2. प्रविवरण का निर्गमन उसकी जानकारी के बिना किया गया था और जैसे ही उसे जानकारी हुई, उसने इस आशय की सार्वजनिक सूचना उचित समयावधि में दी थी।
   3. यदि यह सिद्ध कर दिया हो कि प्रविवरण निर्गमन के पश्चात् परन्तु आबंटन से पूर्व, जैसे ही मिथ्याकथन की जानकारी हुई, उसने अपनी सहमति वापिस लेते हुए उचित कारणों के साथ सार्वजनिक सूचना दी थी।
   4. यदि यह सिद्ध कर दे कि उसके पास कथन को सत्य मानने का उचित आधार था और कथन सत्य ही होगा।
   5. यदि कथन, किसी विशेषज्ञ की राय पर आधारित हो और विशेषज्ञ पर्याप्त सक्षम होने के साथ–साथ, लिखित सहमति दी हो। (धारा – 62)

2. **धारा 56 की अनुपालना न करने पर क्षतिपूर्ति का दावा –**
(Claim for damage for non compliance of sec. 56)

धारा 56 में स्पष्ट प्रावधान है कि प्रविवरण की विषय–वस्तु द्वितीय अनुसूची के भाग प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है) में वर्णित सामग्री के अनुरूप होना चाहिये। ऐसा न करने पर यदि किसी पक्षकार को कोई क्षति पहुंचती है तो प्रत्येक उत्तरदायी पक्षकार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. **सामान्य कानून के अधीन वाद (Claim under the General Law)** – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 17 के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति ने कपट का सहारा लेते हुए किसी दूसरे पक्षकार को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया है तो उस स्थिति में भी दोषी पक्षकार, पीड़ित पक्षकार की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा। अनुबन्ध अधिनियम के तहत वाद प्रस्तुत करने पर आबंटी को अंशों या ऋणपत्रों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

परित्याग की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् आबंटी रहते हुए भी क्षति की पूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **दण्डनीय दायित्व (Criminal Liability)** – जब यह सिद्ध हो जाता है कि प्रविवरण मिथ्याकथन या भूल से प्रभावित है तो दोषी पक्षकार दण्डनीय दायित्व के लिए भी उत्तरदायी होगा, अर्थात् दोषी पक्षकार को 2 वर्ष का कारावास अथवा 50000 रूपये अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकता है। परंतु निम्नांकित दशाओं में उन्हें क्षम्य किया जा सकता है, यदि वे यह सिद्ध कर दे कि –

1. कथन, ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं था ।
2. कथन को सही मानने का उचित एवं युक्तिसंगत आधार था – (धारा – 63)

यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर या लापरवाही से कोई ऐसा कथन, वचन या भविष्यवाणी करता है जो असत्य, धोखा देने वाली या भ्रमात्मक है, अथवा तथ्यों को जानबूझकर छिपाते हुए अंशों एवं ऋणपत्रों को क्रय करने हेतु प्रेरित किया जाता है तो दोषी पक्षकार को 5 वर्ष का कारावास अथवा 1.00 लाख रूपये अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकता है। (धारा 68)

यद्यपि विशेषज्ञों का दण्डनीय दायित्व नहीं होता है। (धारा 63 (2))

(F) विविध अवधारणाएँ (Miscellanious Concpts) –

(a) शेल्फ प्रविवरण (Shelf Prospectus) (धारा 60 A)

ऐसी सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएँ, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक या अनुसूचित बैंकें जिनका मुख्य प्रयोजन वित्त प्रदान करना है, नवीन प्रावधानों के तहत शेल्फ प्रविवरण जारी करना अनिवार्य कर दिया है। शेल्फ प्रविवरण का मुख्य प्रयोजन, एक निश्चित समयावधि में प्रविवरण के निर्गमन की बाध्यता से मुक्त करना। यह प्रविवरण प्रथम निर्गमन के अगले 1 वर्षतक विधिमान्य होता है।

शेल्फ प्रविवरण का अभिप्रायः सभी सूचनाओं से युक्त फाईल जो शेल्फ में रखी हुई हो और वित्तीय संस्थाओं या बैंक द्वारा निर्गमित की गई हो।

प्रथम निर्गमन के पश्चात् आगामी निर्गमों की दशा में संस्था को एक सूचना स्मरण पत्र (Information Memorandum) जारी करना पड़ता है जो प्रथम निर्गमन या पूर्व निर्गमन के पश्चात् संस्था की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों, सम्पत्तियों पर उत्पन्न प्रभारों या अन्य किसी महत्वपूर्ण परिवर्तनों को दर्शाता है।

इस प्रकार शेल्फ प्रविबरण सभी नवीनतम मूल्यों के साथ सूचना स्मरण पत्र के साथ मिलकर प्रविवरण का निर्माण करता है, जिसका पंजीयन रजिस्ट्रार के पास कराना होता है।

(b) सूचना स्मरण पत्र (Information Memorandum) (धारा 60 B)

पिछले कुछ वर्षों से प्रतिभूतियों का निर्गमन 'बुक बिल्डिंग' के आधार पर होने लगा है। इस स्थिति में सूचना स्मरण पत्र जारी करना होता है। सूचना स्मरण पत्र निर्गमित करते समय कम्पनी को निम्नांकित प्रावधानों की अनुपालना करनी होती है –

1. **यह केवल सार्वजनिक कम्पनी द्वारा ही जारी किया जा सकता है –**

सर्वप्रथम प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सूचनाएँ स्मरण पत्र के माध्यम से जनता को देते हुए इसका पंजीयन कराया जाता है। (धारा 60 B(1))

2. **मायावी प्रविवरण जारी करना– Issuing Red Herring Prospectus)** – जब सूचना स्मरण पत्र के माध्यम से अभिदान हेतु आंमत्रित किया जाता है तो अभिदान खुलने के कम से कम 3 दिन पूर्व मायावी प्रविवरण रजिस्ट्रार के पास फाईल करना पड़ता है। मायावी प्रविवरण से अभिप्रायः ऐसे प्रविवरण से है जिसमें प्रतिभूतियों के मूल्य एवं मात्रा के सम्बन्ध में वास्तविक जानकारी दी हुई नहीं होती है। (धारा 60 B(2))
3. **सूचना स्मरण पत्र एवं मायावी प्रविवरण** – का वही प्रभाव होता है जो परम्परागत प्रविवरण का होता है। (धारा 60 B(3))

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. निर्गमनकर्त्ता कम्पनी का यह कर्त्तव्य है कि यदि सूचना स्मरण पत्र एवं मायावी प्रविवरण में कोई विचलन हो तो उसकी सूचना व्यक्तिशः आवेदकों को दें। (धारा 60 B(4) & B (5))

5. अग्रिम अभिदाताओं को सूचना देने के साथ–साथ, उन्हें आवेदन पत्र वापिस लेने का अवसर देना होगा। (धारा 60 B(6))

6. सूचना प्राप्ति के अगले 7 दिनों में आवेदक चाहे तो आवेदन पत्र वापिस ले सकते हैं। (धारा 60 B(7))

7. उपर्युक्त प्रावधानों की अनुपालना के बिना अंशों का आबंटन करना व्यर्थ माना जायेगा। आवेदक, अभिदान के रूप में चुकाई गई धनराशि 15 प्रतिशत ब्याज सहित वापिस प्राप्त कर सकते हैं। (धारा 60 B(8))

8. अंत में, आबंटन की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् अंतिम प्रविवरण, सम्पूर्ण वास्तविक सूचनाओं के साथ, रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना होगा। (धारा 60 B(9))

(c) विक्रय हेतु प्रस्ताव/प्रभावों द्वारा प्रविवरण

(Offer for sale/Prosectus by implications) (धारा 60 B)

जैसा कि हम जानते है कि प्रविवरण तैयार करना एवं जारी करना अत्यन्त ही जटिल एवं पेचिदा कार्य है। अतः कम्पनियां प्रायः इस अधिकार का भार्रापण किसी निर्गमन गृह (Issueing House) को करते हुए इस दायित्व से बचने का प्रयास करती है। निर्गमन गृह इस आबंटित अंशों या ऋणपत्रों को जनता के सन्मुख क्रय हेतु प्रस्तुत करता है।

जब कोई कम्पनी किसी निर्गमन गृह को अंशों का आबंटन इस दृष्टिकोण से करती है कि सभी अंश या ऋणपत्र अथवा उनके किसी भाग का निर्गमन जनता को किया जायेगा तो जिस प्रलेख के द्वारा आबंटित अंशों या ऋणपत्रों को क्रय करने हेतु जनता को आमंत्रित किया जाता है, उसे विक्रय हेतु प्रस्ताव या प्रभावों द्वारा प्रविवरण कहा जाता है।

विक्रय हेतु प्रस्ताव के प्रति कम्पनी, संचालकों एवं प्रवर्तकों का दायित्व वैसा ही होता है, जैसा कि प्रविवरण के प्रति होता है।

इनके साथ–साथ, विक्रय हेतु प्रस्ताव के प्रति निर्गमन गृह का भी दायित्व हो जाता है। वस्तुतः इस प्रक्रिया के माध्यम से निर्गमन गृह कम्पनी को पूर्ण अभिदान की गारण्टी प्रदान करता हैं

यदि निर्गमन गृह कम्पनी हो तो विक्रय हेतु प्रस्ताव पर कम से कम 2 संचालकों के हस्ताक्षर होने चाहिए और यदि साझेदारी फर्म हो तो कम से कम आधे साझेदारों के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(d) स्थानापन्न प्रविवरण (Statement in lieu of Prospectus) (धारा 70)

सामान्यतया, एक सार्वजनिक कम्पनी जनता के माध्यत से पूंजी जुटाने का प्रयास करती है, तब उसे प्रविवरण जारी करना होता है। परन्तु जनता से पूंजी प्राप्त करना सार्वजनिक कम्पनी के लिए आवश्यक नहीं है। वह अपने स्वयं के साधनों या निजी स्त्रोंतों से भी पूंजी प्राप्त कर सकती है। तब पूंजी की व्यवस्था संचालकों, प्रवर्तकों, सम्बन्धियों, रिश्तेदारों एवं मित्रों के माध्यम से की जाती हैं। उन दशाओं में कम्पनी को एक अन्य प्रलेख, जिसमें कम्पनी अधिनियम की तृतीय अनुसूची के अनुरूप जानकारी दी हुई हो, तैयार करना पड़ता है, इसी प्रलेख को ''स्थानापन्न प्रविवरण'' कहा जाता है। कम्पनी द्वारा अंशों का आबंटन करने के कम से कम तीन दिन पूर्व इस प्रलेख को रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत करना पड़ता है। वस्तुतः यह प्रलेख पूंजी निर्गमन से सम्बन्धित शर्तों का महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता हैं। यदि इस प्रलेख में भी कोई मिथ्याकथन अथवा भूल हो तो पीड़ित पक्षकार को वैसा ही अधिकार प्राप्त होता है जैसा कि प्रविवरण में भूल या मिथ्याकथन की दशा में प्राप्त होता है।

निम्नांकित दशाओं में स्थानापन्न प्रविवरण निर्गमित किया जा सकता है –

1. सार्वजनिक कम्पनी, जब वह प्रविवरण निर्गमित न करें।

2. सार्वजनिक कम्पनी, जब उसका मन्तव्य समामेलन के समय प्रविवरण जारी करने का न हो और व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त करना चाहती हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. यदि कोई निजी कम्पनी का सार्वजनिक कम्पनी के रूप में परिवर्तन हुआ हो तो परिवर्तन के अगले 30 दिनों में यह प्रलेख रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना होगा।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रविवरण क्या है ? (What is a Prospectus ?) (5 अंक)
2. 'सार्वजनिक निमन्त्रण' से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
   (What do you mean by 'Public Invitation'.?)
3. 'स्थानापन्न प्रविवरण क्या है ? (What is statement in lieu of prospectus ?) (5 अंक)
4. 'शेल्फ प्रविवरण' क्या है ? (What is a Shelf Prospectus ?) (5 अंक)
5. 'सूचना स्मरणपत्र' को समझाइये।' (Explain the 'Information Memorandum') (5 अंक)
6. 'मायावी प्रविवरण' क्या है ? (What is a 'Red Herring Prospectus ?) (5 अंक)
7. 'विक्रय हेतु प्रस्ताव या माना हुआ प्रविवरण क्या है ? (5 अंक)
   (What is a offer for sale or deemed prospectus ?)
8. प्रविवरण को परिभाषित कीजिए। प्रविवरण से सम्बन्धित विषय–वस्तु की विवेचना कीजिए।(15 अंक)
   (Define the term prospectus. Explain the contents of the prospectus.)
9. प्रविवरण के मिथ्याकथन एवं भूल के क्या प्रभाव होते हैं ? (15 अंक)
   (What are the consequences of 'Mis-statement' and omission in the prospectus)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय ८ – अंश

(Shares)

(A) प्रस्तावना : अर्थ एवं विशेषताएँ (Introduction : Meaning & Characteristics)

कम्पनी की अंश पूंजी, छोटे–छोटे टुकड़ों में बंटी होती है जिसे 'अंश' कहते हैं। अंश का शाब्दिक अर्थ है – भाग या हिस्सा। वस्तुतः अंश, कुछ निश्चित अधिकारों एवं दायित्वों को व्यक्त करता है। इस दृष्टि से अंश, अधिकारों एवं दायित्वों का पुंज है।

अधिनियम की धारा (धारा 2 (46)) के अनुसार, ''अंश का आशय एक कम्पनी की अंशपूंजी के अंश से है, तथा इसमें स्कन्ध भी सम्मिलित है, जब तक कि स्कन्ध एवं अंश में स्पष्ट या गर्भित रूप से अन्तर नहीं किया गया हो।''

("Share means a share in the share capital of a company and includes stock except where a distinction between stock and share is expressed or implied.")

एम.सी. कुच्छल के अनुसार, ''अंश वह इकाई है जिसमें कम्पनी की सम्पूर्ण पूंजी को विभाजित किया जाता है।''

न्यायमूर्ति फार्वेल (Justice Farwell) के अनुसार, अंश कोई धनराशि नहीं है वरन् एक ऐसा हित है जिसकों मुद्रा में मापा जाता है और यह 'अनुबन्ध में वर्णित विभिन्न अधिकारों से बना हुआ है।'

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि अंश, अंशपूंजी का एक हिस्सा है जो मुद्रा के रूप में मापा जाता है और इसके धारक को कई अधिकार प्राप्त होते है।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. यह चल सम्पत्ति की तरह माना जाता है।
2. यह वस्तु विक्रय अधिनियम – 1930 की धारा 2 (7) के अनुसार परिभाषित माल (Goods) की श्रेणी में आता है।
3. प्रत्येक अंश अपने भिन्न संख्याओं से व्यक्त किया जाता है।
4. यह 'अधिकारों एवं दायित्वों' का पुलिन्दा है।
5. यह कम्पनी में अंश–पूंजी का प्रतीक होता है।
6. यह अंश पूंजी का हिस्सा है जो अन्तर्नियमों की सीमाओं के भीतर हस्तान्तरणीय होता हैं।
7. यह कम्पनी में अंशधारियों के हितो का द्योतक हैं।
8. सभी अंशधारी, संयुक्त रूप से कम्पनी के स्वामी नहीं माने जाते हैं। स्वामित्व कम्पनी में ही निहित होता है।
9. यद्यपि अंश हस्तान्तरणीय होते है, परन्तु इसे विनियम साध्य विलेख नहीं माना जाता है।
10. प्रत्येक अंशधारी को अंश प्रमाणपत्र जारी किया जाता है जो अंशधारी द्वारा धारित अंशों की संख्या को व्यक्त करता है।
11. प्रायः प्रत्येक अंशधारी कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में पंजीकृत होता है।
12. यदि अंशों का हस्तांतरण डिपोजिटरी के माध्यम से हो तो अंशधारी का नाम उस डिपोजिटरी में लाभार्थी **(Beneficial Owner)** के रूप में सम्मिलित किया जाता है।
13. प्रत्येक अंश का अंकित मूल्य होता हैं
14. यदि अंशधारी भिन्न भिन्न श्रेणी के हो तो उनके अधिकार कर्त्तव्य एवं दायित्व भी भिन्न भिन्न होंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(B) अंशों के प्रकार (Kinds of Shares)

अंशों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) समता अंश– (Equity Shares)

धारा 85 (2) के अनुसार, ''समता अंश वे अंश है जो कि पूर्वाधिकार अंश नहीं है।''

('Equity shares means all shares which is not preference share.')

इस दृष्टिकोण से समता अंशों से अभिप्रायः उन अशों से है जिनके धारकों को, कम्पनी के समापन के समय, पूंजी पर प्रत्याय एवं पूंजी के हिस्से में पूर्वाधिकार अंशधारियों, के पश्चात राशि प्राप्त करने का अधिकार होता है। दूसरे शब्दों में पूर्वाधिकारियों को लाभांश के भुगतान एवं पूंजी की अदायगी में समता अंशधारियों की तुलना में पूर्वाधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार जिन धारकों को उक्त दोनों अधिकार प्राथमिकता के आधार पर प्राप्त नहीं होते हैं, उन्हें समता अंश कहा जाता है।

समता अंशधारियों को प्राप्त अधिकार– (Rights of Equity Share Holders)

1. सामान्य सभा के माध्यम से लाभांश की पुष्टि का अधिकार।
2. लाभांश प्राप्त करने का अधिकार।
3. विभिन्न संभाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार।
4. सभा में उपस्थित होने एवं मतदान में भाग लेने का अधिकार।
5. मतदान की मांग करने का अधिकार।
6. अंशों के हस्तान्तरण का अधिकार।
7. पुस्तकों का निरीक्षण एवं उनकी प्रतिलिपि प्राप्त करने का अधिकार।
8. प्रति पुरूष (Proxy) नियुक्ति का अधिकार।
9. कम्पनी द्वारा प्रदत्त अन्य अधिकार।

(b) पूर्वाधिकार अंश – (Preference Shares)

पूर्वाधिकार अंश वे अंश है जिनके धारकों को निम्नांकित दो अधिकारों के सम्बन्ध में पूर्वाधिकार होता हैं –

1. कम्पनी के जीवन काल में, लांभाश के भुगतान के सम्बन्ध में, और
2. समापन के समय, पूंजी में से हिस्सा प्राप्त करने के सम्बन्ध में। (धारा 85(1))

पूर्वाधिकार अंशधारियों को प्राप्त अधिकार – (Rights of Preference Share Holders)

1. लाभांश की घोषणा के पश्चात् पूर्व निर्धारित दर से लाभांश प्राप्त करने का अधिकार।
2. समापन के समय, समता अंशधारियों की तुलना में पूंजी में से हिस्सा प्राप्त करने का पूर्वाधिकार।
3. समता अंशधारियों को चुकाने के पश्चात् बचे लाभ में से अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करने का अधिकार।
4. अपने हितों को प्रभावित करने वाले विषयों पर मताधिकार का अधिकार।
5. अन्तर्नियमों से अधिकृत होने पर अपने अंशों को समता अंशों में बदलने का अधिकार।
6. निर्धारित समयावधि या 20 वर्ष (जो भी पहले हो) में अंशों के शोधन (re-deemed) का अधिकार। (धारा 80 (5 A))

पूर्वाधिकार अंशों के प्रकार (Kinds of Preferences Shares)

पूर्वाधिकार अंशों को , उनकी प्रकृति के आधार पर निम्नांकित भागों में बांटा जा सकता है –

1. संचयी पूर्वाधिकार अंश (**Cumulative Preference Shares**) ऐसे अंशों पर देय लाभांश संचित होता रहता है जब तक कि पूर्ण भुगतान नहीं कर दिया जाता ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. गैर–संचयी पूर्वाधिकार अंश **(Non cumulative preference shares) -** ऐसे अंश जिन पर देय लाभांश संचयी नहीं होता है, गैर संचयी पूर्वाधिकार अंश कहलाते है। ऐसे अंशों के धारक बकाया लाभांश की मांग नहीं कर सकते है।

3. भागयुक्त पूर्वाधिकार अंश **(Participating Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनके धारकों को समता अंशधारियों को चुकाने के पश्चात् बचे लाभ में से, पूर्व निर्धारित अनुपात पर, अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है, उन्हें भागयुक्त पूर्वाधिकार अंश कहा जाता है।

4. अभागयुक्त पूर्वाधिकार अंश **(Non Participating Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनके धारकों को पूर्व निर्धारित दर पर ही लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है, अर्थात अतिरिक्त लाभांश में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता है।

5. परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश **(Convertible Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनको निश्चित तिथि या निश्चित समयावधि के पश्चात् समता अंशों में बदलने का अधिकार होता है, परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश कहा जाता है।

6. अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश **(Non Convertible Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनके धारकों को अपने अंश समता अंशों में बदलने का अधिकार नहीं होता है, अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश कहा जाता है।

7. शोधनीय पूर्वाधिकार अंश – **(Re-deemable Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनका शोधन निश्चित समयावधि के पश्चात् या 20 वर्ष में (जो भी पहले हो) किया जा सकता हो, उन्हें शोधनीय पूर्वाधिकार अंश कहा जाता है।

8. प्रत्याभूति पूर्वाधिकार अंश – **(Guaranteed Preference Shares) -** ऐसे अंश जिनके धारकों को एक निश्चित दर से निश्चित अवधि तक लाभांश की गारण्टी दी जाती है, प्रत्याभूति पूर्वाधिकार अंश कहा जाता है।

(C) अंशों का निर्गमन (Issue of Shares)

जब कोई कम्पनी अंशों का निर्गमन करती है तो उसे कम्पनी अधिनियम एवं अन्तर्नियमों की अनुपालना करनी पड़ती है जो संक्षेप में इस प्रकार है –

अ. **सममूल्य पर निर्गमन – (Issue at par)** – जब कोई कम्पनी, अपने अंशों का निर्गमन अंकित मूल्य **(Nominal Value)** पर करती है तो उसे सम–मूल्य पर निर्गमन कहा जाता है। सामान्यतः नई कम्पनी द्वारा सम मूल्य पर ही निर्गमन किया जाता है।

ब. **प्रीमियम पर निर्गमन – (Issue at Premium) -** धारा 78, जब अंशों का निर्गमन 'अंकित मूल्य' से अधिक मूल्य पर किया जाता है तो इसे प्रीमियम पर निर्गमन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में अंकित मूल्य एवं निर्गमन मूल्य के अन्तर को ही प्रीमियम कहा जाता है।

प्रीमियम पर निर्गमन के सम्बन्ध में निम्नांकित वैधानिक प्रावधान है –

1. प्रीमियम के रूप में प्राप्त राशि का हस्तान्तरण 'प्रतिभूति प्रीमियम खाते' में किया जाना चाहिये।
2. 'प्रतिभूति प्रीमियम खाते' का उपयोग केवल निर्दिष्ट प्रयोजनों के लिये ही किया जा सकता है, जैसे –
   - कम्पनी के सदस्यों को पूर्ण प्रदत्त बोनस अंश निर्गमित करना।
   - प्रारम्भिक व्ययों को अपलिखित **(Written off)** करना।
   - अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन के समय चुकाये गये कमीशन या बट्टे को अपलिखित करना।
   - शोधनीय पूर्वाधिकार अंश या ऋणपत्रों के शोधन के समय प्रीमियम का भुगतान करना।

(स) **बट्टे पर निर्गमन – (Issue at discount) (Section 79)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जब अंशों का निर्गमन अंकित मूल्य से कम कीमत पर किया जाता है तो इसे बट्टे पर निर्गमन कहा जाता है। वस्तुतः अंकित मूल्य एवं निर्गमन मूल्य के अन्तर को ही 'बट्टा' कहा जाता है।

बट्टे पर अंशों के निर्गमन की दशाएँ

1. बट्टे पर अंशों का निर्गमन केवल उन्हीं अंशों का किया जा सकता है जो पहले निर्गमित किये हुए हो।
2. यह निर्गमन तब तक सम्भव नहीं जब तक कि समामेलन का प्रमाणपत्र प्राप्त किये कम से कम 1 वर्ष की अवधि पूरी न हुई हो।
3. यह निर्गमन तब तक सम्भव नहीं जब तक कि साधारण प्रस्ताव के द्वारा अधिकृत न हो। साधारण प्रस्ताव में बट्टे की दर भी देनी होगी। बट्टे की दर 10 प्रतिशत से अधिक तब तक नहीं हो सकती जब तक कि केन्द्रीय सरकार की दृष्टि में, विद्यमान परिस्थितियों में अधिक दर वांछनीय न हो।
4. बट्टे पर निर्गमन से सम्बन्धित प्रस्ताव, केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित होना चाहिए। केन्द्रीय सरकार विद्यमान परिस्थितियों में, उन शर्तों के आधार पर निर्गमन का आदेश देगी जो वह उचित समझे।
5. केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के पश्चात् अगले 2 माह में निर्गमन करना होगा जब तक कि केन्द्रीय सरकार द्वारा तिथि बढ़ा दी न जाए।
6. बट्टे पर निर्गमन का उल्लेख प्रविवरण में भी होना चाहिये। साथ ही बट्टे की वह राशि जो अपलिखित की गई है और शेष राशि जिसका अपलेखन होना है, का उल्लेख भी प्रविवरण में करना चाहिये।

(D) अंश प्रमाणपत्र – (Shares Certificate) (Section 113)

प्रत्येक आबंटी **(Allottee)** को कम्पनी की ओर से एक प्रमाण पत्र प्राप्त होता है जो इस बात का प्रमाण होता है कि आबंटी निश्चित संख्या के अंशों का धारक है, इस प्रमाणपत्र को ही अंश प्रमाणपत्र कहा जाता है।

धारा 84 (1) के अनुसार, ''अंश प्रमाणपत्र कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन निर्गमित एक प्रमाणपत्र है जिसमें किसी सदस्य द्वारा धारण किये गये अंश निर्दिष्ट होते हैं, और ऐसा प्रमाणपत्र ऐसे अंशों के सम्बनध में स्वत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।'' (A share certificate is a certificate issued by the company under the common seal of the company specifying any shares held by member, shall be prima-facie evidence of the title of the member of such shares.)

वस्तुतः अंश प्रमाणपत्र स्वत्व का लिखित प्रमाण है –

अंश प्रमाणपत्र की विषय – वस्तु (Contents of Share Certificate)

1. कम्पनी एवं उसके पंजीकृत कार्यालय का नाम एवं पता।
2. अंश प्रमाणपत्र की संख्या।
3. अंशधारी का नाम एवं पता।
4. अंशों की संख्या।
5. अंशों का क्रमांक।
6. अंशों पर चुकाई गई राशि।
7. निर्गमन की तिथि।
8. सार्वमुद्रा।
9. कम से कम 2 संचालकों एवं सचिव द्वारा हस्ताक्षरित।

अंश प्रमाणपत्र से सम्बन्धित प्रावधान (Provisions relating to share certificate)

1. **समय सीमा** –अंश प्रमाणपत्र की सुपुर्दगी, अंश आबंटन के तीन माह के भीतर एवं हस्तान्तरण पंजीकृत होने के 2 माह के भीतर देनी होगी।
2. **सुपुर्दगी की विधि** – अंश प्रमाणपत्र की सुपुर्दगी व्यक्तिशः या डाक द्वारा दी जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **समय सीमा में वृद्धि** – यदि केन्द्रीय सरकार उपलब्ध कारणों से सन्तुष्ट हो तो सुपुर्दगी की तिथि बढ़ाई जा सकती है, परन्तु 9 माह से ज्यादा अवधि बढ़ाई नहीं जा सकती है।

4. **दण्ड**– यदि उक्त प्रावधानों का उल्लंघन किया जाता है तो कम्पनी एवं दोषी अधिकारी को 5000 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से तब तक दण्डित किया जायेगा जब तक कि दोष जारी रहे।

5. **दोष निवारण एवं केन्द्र सरकार का आदेश**– यदि अंश प्रमाणपत्र की सुपुर्दगी के सम्बन्ध में त्रुटि की जाती है तो इस त्रुटि का निवारण, आवेदक से आवेदन प्राप्त होने के अगले 10 दिनों में करना होगा। ऐसा न करने पर आवेदक केन्द्रीय सरकार को अपील कर सकता है। केन्द्रीय सरकार के आदेशों की अनुपालना अक्षरशः करनी होगी।

6. **निक्षेपधारी संस्था को आबंटन विवरणी प्रस्तुत करना** (धारा 113 (4)) – यदि अंशों का लेनदेन निक्षेपधारी संस्था **(Depository)** के माध्यम से किया जाता है तो आबंटन के तुरन्त पश्चात् आबंटन विवरण (Allotment return) उक्त संस्था को प्रेषित करनी होगी।

   यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि किसी कम्पनी का प्रारम्भिक निर्गमन (Initial Issue) 10 करोड़ रूपये या इससे अधिक है तो अंश प्रमाण पत्रों का निर्गमन – गैर मौद्रिक (Demate) रूप में निक्षेपधारी संस्था द्वारा किया जायेगा और धारा 113(4) के प्रावधानों की अनुपालना की जायेगी।

7. **अंशधारी होने का ढोंग या प्रतिरूपण (Personation)** करने पर दण्ड – (धारा – 116) यदि कोई व्यक्ति अंशधारी न होने के बावजूद भी अंशधारी होने का ढोंग करता है ताकि किसी अन्य व्यक्ति के साथ धौखा कर सके तो ढोंगी व्यक्ति को तीन वर्ष का कारावास तथा जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है।

8. **कम्पनी (अंश प्रमाणपत्र निर्गमन) नियम 1960** – यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो अंश प्रमाणपत्र के सम्बन्ध में इन नियमों की अनुपालना करनी होगी।

अंश अधिपत्र (Share Warrant) (धारा 114 एवं 115)

अंशों द्वारा सीमित कम्पनी यदि चाहे तो पूर्ण प्रदत्त अंशों को अंश अधिपत्रों में बदला जा सकता है। अंश अधिपत्र में बदलने पर अधिपत्र का वाहक ही उल्लेखित अंशों का धारक माना जाएगा। वस्तुतः अंश अधिपत्र को 'विनियम साध्य विलेख' माना जाता है, अतः सुपुर्दगी मात्र से ही विलेख में निहित स्वामित्व का हस्तांतरण हो जाता है। जब अंश प्रमाण पत्र के धारक को अंश अधिपत्र जारी किया जाता है तो उसका सदस्यों के रजिस्टर में से नाम काट दिया जाता है जिससे उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।

अंश अधिपत्र के निर्गमन की दशाएँ (Conditions for the issue of shares warrant)

1. अंश, पूर्णप्रदत्त होने चाहिये।
2. कम्पनी, अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होनी चाहिये।
3. केन्द्रीय सरकार की पूर्व सहमति प्राप्त होनी चाहिये।
4. प्रारम्भ में अंश अधिपत्र, जारी नहीं किया जा सकता।

अंश प्रमाणपत्र को ही अंश अधिपत्र में बदला जा सकता है।

5. अंश अधिपत्र पर भी कम से कम 2 संचालकों एवं सचिव के हस्ताक्षर होने चाहिये।

यदि अंश अधिपत्र धारक चाहे तो इस विलेख को पुनः कम्पनी को सुपुर्द करते हुए, अपना नाम सदस्यों के रजिस्टर में दर्ज करा सकता है। साथ ही यदि अन्तर्नियमों के द्वारा अधिकृत हो तो अधिपत्र धारकों को कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए सदस्यों की तरह माना जा सकता है।

नोट :– वर्तमान में अभौतिक (डी–मेट) रूप में प्रतिभूतियों का लेनदेन,डिपोजिटरी के माध्यम से होने लगा है, अतः यह व्यवस्था अपना महत्व खोती जा रही है।

(E) स्कन्ध एवं अंश (Stock & Shares)

स्कन्ध, पूर्ण प्रदत्त अंशों का सम्मिलित रूप है जिन्हें इच्छानुसार टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है ताकि धारक को हस्तातंरण करने में सुविधा रहे। अंशों को स्कन्ध में बदलते समय इनके अंकित मूल्य को ध्यान में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नहीं रखा जाता है। जब अंश पूर्ण प्रदत्त हो जाते है तो इन्हें सुविधाजनक स्थिति में स्कन्ध में बदला जा सकता है। उदाहरणार्थ – यदि किसी व्यक्ति के पास 100 रूपये अंकित मूल्य का अंश है, अर्थात 100 रूपये के अंश को 10, 20, 30 एवं 40 रूपये के स्कन्धों में बदला जा सकता है। इस प्रकार स्कन्ध के माध्यम से धारक, इच्छित मुद्रा में हस्तान्तरण कर सकता है जबकि अंश टुकड़ों में हस्तान्तरित नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दों में अंश को टुकड़ों में हस्तान्तरण करने का आधार केवल स्कन्ध ही है।

यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो अंश एवं स्कन्ध में कोई अन्तर नहीं होता है, अर्थात स्कन्ध धारक को भी वही अधिकार प्राप्त होते है जो अंशधारी को प्राप्त होते हैं।

धारा 2 (46) के अनुसार, ''अंश का आशय कम्पनी की अंश पूंजी के एक अंश से है एवं इसमें स्कन्ध भी सम्मिलित है, जब तक कि स्कन्ध और अंशों में स्पष्ट या गर्भित रूप से अन्तर नहीं हैं।''

धारा 94 (1) (C) के अनुसार, ''अंशों द्वारा सीमित कम्पनी यदि अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत हो तो साधारण सभा में साधारण प्रस्ताव पारित करके सभी या कुछ पूर्णदत्त अंशों को स्कन्ध एवं स्कन्ध को पुनः अंशों में बदला जा सकता है।

अंश व स्कन्ध में अन्तर (Distinction between Shares & Stock)

1. अंशों का अंकित मूल्य होता है जबकि स्कन्ध का कोई अंकित मूल्य नहीं होता हैं।
2. अंश निर्गमन के द्वारा पूंजी प्राप्ति की जाती है जबकि स्कन्ध केवल अंशों का परिवर्तन है।
3. अंश पूर्णदत्त या अपूर्णदत्त हो सकते है जबकि स्कन्ध सदैव पूर्णदत्त ही होते हैं।
4. अंश, पूर्ण इकाई के रूप में ही हस्तान्तरित हो सकता है जबकि स्कन्ध, छोटे–छोटे हिस्सों में भी हस्तान्तरित हो सकता है।
5. अंशों के अपने पृथक नम्बर होते है, जबकि स्कन्ध के कोई नम्बर नहीं होते हैं।
6. एक ही प्रकार के सभी अंशों के समान अंकित मूल्य होता है जबकि स्कन्ध के भिन्न–भिन्न मूल्य हो सकते हैं।
7. अंश क्रय करने हेतु जनता को निमंत्रण दिया जाता है जबकि स्कन्ध लेने हेतु जनता को निमंत्रण नहीं दिया जा सकता।
8. अंश निर्गमित करने से पूर्व रजिस्ट्रार के यहां पंजीकृत होते हैं, जबकि स्कन्ध में परिवर्तन हेतु, रजिस्ट्रार को केवल सूचना दी जाती है।
9. चाहे सार्वजनिक कम्पनी हो या निजी कम्पनी, अंश निर्गमित किये जा सकते हैं, जबकि स्कन्ध केवल अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी ही निर्गमित कर सकती है।
10. अंशों का एक पृथक रजिस्टर होता है, जबकि स्कन्ध का कोई पृथक रजिस्टर नहीं होता है।

(F) बोनस अंश अथवा लाभों का पूंजीकरण (Bonus Shares or Capitalisation of Profit)

सामान्यतः लाभांश का भुगतान नकद में ही किया जाता है, परन्तु यदि कम्पनी अन्तर्नियमों के द्वारा अधिकृत हो तो अपने सदस्यों को लाभांश के बदले में पूर्ण प्रदत्त अंश निर्गमित कर सकती है। इस प्रकार जब कोई कम्पनी अपने लाभ को नगद में वितरण न करे, इस उद्देश्य से संचित करती है ताकि विद्यमान अंशधारियों को उनके द्वारा चुकाई गई पूंजी के अनुपात में निशुल्क अंशों का निर्गमन किया जा सके तो इस प्रकार से अंशों के निर्गमन को ही 'बोनस अंश' कहा जाता है। इस व्यवस्था में लाभों को अंश पूंजी में बदला जाता है, अतः इसे लाभों के पूंजीकरण के नाम से भी जाना जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि बोनस अंशों का निर्गमन केवल अविभाजित लाभों (Undistributed Profits) में से ही किया जा सकता हैं, जो इस प्रकार है –

1. लाभ हानि खाते का जमा शेष।
2. स्वतंत्र संचयों का शेष।
3. अंश प्रीमियम खाते का शेष।
4. पूंजीगत लाभ खाते का शेष, और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. पूंजी शोधन खाते का शेष।

बोनस अंश निर्गमन की दशाएँ (Conditions of the issue of Bonus Shares)

1. पर्याप्त मात्रा में अविभाजित लाभ होना चाहिये।
2. अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने के साथ–साथ साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव द्वारा अनुमोदन होना चाहिये।
3. बोनस अंश, पूर्ण प्रदत्त अंशों के रूप में ही निर्गमित किये जा सकते है।
4. लाभांश के स्थान पर बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता है।
5. बोनस अंश निर्गमित करने के अगले 30 दिनों में आबंटन विवरण रजिस्ट्रार के पास प्रेषित की जानी चाहिये।
6. 'सेबी' द्वारा जारी की गई मार्गदर्शक बातों की भी अनुपालना की जानी चाहिये, जो इस प्रकार है –
   - यह नियम केवल सूचीबद्ध कम्पनियों पर ही लागू होता है।
   - सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन से उत्पन्न कोष का उपयोग बोनस अंशों के लिये नहीं किया जा सकता।
   - बोनस अंशों का निर्गमन तभी किया जा सकता है जब कम्पनी ने स्थाई जमाओं एवं ऋणपत्रों के भुगतान में कोई त्रुटि न की हो।
   - वैधानिक देयताओं के भुगतान में त्रुटि करने पर भी बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता।
   - यदि बोनस अंशों के निर्गमन से अधिकृत पूंजी में वृद्धि की सम्भावना हो तो बोनस अंश जारी करने से पूर्व अंशपूंजी में परिवर्तन करना होगा।
   - बोनस अंशों की घोषणा के पश्चात् अगले 6 माह में क्रियान्वयन होना अनिवार्य है।

(G) अधिकार अंश (धारा 81) (Right Shares)

यदि कोई सार्वजनिक कम्पनी अपने निर्माण की तिथि के 2 वर्ष पश्चात् अथवा प्रथम आंबटन के एक वर्ष पश्चात् (जो भी पहले हो), अपनी अभिदत्त पूंजी (Subscribed Capital) में वृद्धि करना चाहती है तो जारी किये गये अतिरिक्त अंशों पर कम्पनी के विद्यमान समता अंशधारियों का उनके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में क्रय करने का अधिकार होगा। इस प्रकार के निर्गमन में समता अंशधारियों को प्राथमिकता के आधार पर वरीयता दी जाती है, अतः इन्हें अधिकार अंश (Right Share) या पूर्वाधिकार (Rights of Pre-emption) कहा जाता है।

अधिकार अंशों के प्रावधान (Provisions of right shares)

1. यदि कोई कम्पनी समामेलन के 2 वर्ष पश्चात् या प्रथम आबंटन के 1 वर्ष पश्चात् (जो भी पहले हो) अंशों का और निर्गमन करना चाहे तो सर्वप्रथम विद्यमान समता अंशधारियों को क्रय करने हेतु अवसर प्रदान किया जायेगा।
2. समता अंशधारियों को यह अधिकार उनके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में ही प्राप्त होगा।
3. समता अंशधारियों को इस आशय की सूचना देते समय प्रस्तावित अंशों की संख्या एवं स्वीकृति की अवधि (जो 15 दिन से कम की नहीं हो सकती) देनी होगी।
4. यदि निर्दिष्ट समयावधि में स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है तो कम्पनी प्रस्ताव को अस्वीकृत मान सकती है।
5. यदि अन्तर्नियमों में विपरीत शर्त न हो तो सदस्यों को अन्य व्यक्तियों के पक्ष में त्यागने का अधिकार (Right of renunciation) उपलब्ध रहेगा।
6. न तो सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त होती है और न त्यागने के अधिकार का उपयोग किया जाता है तो संचालक मण्डल, कम्पनी के अधिकतम हित में, निर्दिष्ट अंश अन्य व्यक्तियों को निर्गमित कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. 1 जनवरी 2002 को अधिकार अंशों के सम्बन्ध में सेबी द्वारा मार्गदर्शन जारी किया गया है, उनकी अनुपालना भी करनी होगी।

(H) अंशों का अभिगोपन (Underwriting of shares)

समामेलन के पश्चात् सार्वजनिक कम्पनी को पूंजी की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रयोजनार्थ कम्पनी द्वारा प्रविरण तैयार किया जाता है और पूंजी अभिदान हेतु जनता में निर्गमित किया जाता है। वस्तुतः पूंजी अभिदान की अवस्था एक जटिल प्रक्रिया है। यदि इस प्रक्रिया में न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी नहीं होती है तो आवेदन पत्र के साथ प्राप्त सम्पूर्ण राशि आवेदकों को लौटानी होती है और कम्पनी, व्यापार प्रारम्भ करने के प्रमाण–पत्र से वंचित हो जाती है। अतः अधिकांश कम्पनियां अपने अंशों एवं ऋणपत्रों का विक्रय अभिगोपकों के माध्यम से करती है।

वस्तुतः अभिगोपन, कम्पनी एवं अभिगोपकों के मध्य एक ऐसा ठहराव है जिसमें अभिगोपक कम्पनी को प्रतिफल के बदले यह गारण्टी देता है कि यदि कम्पनी के समस्त अंश या ऋणपत्र जनता द्वारा नहीं लेने पर, शेष अंश या ऋणपत्र उनके द्वारा ले लिये जायेंगे। अभिगोपन की प्रक्रिया में जो प्रतिफल चुकाया जाता है, उसे 'अभिगोपन कमीशन' के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में 'सेबी' के निर्देशानुसार सार्वजनिक निगमों का अभिगोपन आवश्यक हो गया है।

वैधानिक प्रावधान (Statutory Provisions)

1. अंशों का अभिगोपन 'संचालक मण्डल' की देख–रेख में किया जायेगा।
2. अभिगोपन कमीशन की दर का उल्लेख अन्तर्नियमों में होना चाहिये, परन्तु यह दर अंशों के मूल्य का 5 प्रतिशत एवं ऋणपत्रों के मूल्य के 2½ प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो सकती। (धारा 76)
3. संचालकों द्वारा अभिगोपक की आर्थिक सुदृढ़ता के सम्बन्ध में एवं उसकी सीमाओं के सम्बन्ध में भी घोषणा करनी होगी।
4. प्रविवरण के साथ अभिगोपक एवं कम्पनी के बीच हुए अनुबन्ध की प्रति भी रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करनी होगी।
5. अभिगोपन कमीशन का भुगतान नकद या अंशों द्वारा किया जा सकता है।

(I) स्वेट (श्रम) समता अंश (धारा 79 A) (Sweat equity Shares)

कम्पनी (संशोधित) अधिनियम, 1999 द्वारा धारा 79 A लागू की गई, जिसके तहत सेवाओं के बदले में अंशों के निर्गमन का प्रावधान किया गया। यह अंश उन कर्मचारियों एवं संचालकों को देने की व्यवस्था की गई जिन्होंने उपयोगिता वृद्धि या बौद्धिक संपदा विकास या अन्य उल्लेखनीय सेवाओं के कारण कम्पनी को लाभान्वित किया हो। इस प्रकार ऐसे अंश जो कम्पनी के कर्मचारियों या अधिकारियों को, उनकी सेवाओं के बदले में बट्टे पर (at discount) या नकद के अतिरिक्त अन्य रूप में निर्गमित किये जाते हो, स्वेट समता अंशों के नाम से जाने जाते है।

अन्य प्रावधान (Other Provisions) –

1. अंश, ऐसे वर्ग से सम्बन्धित होने चाहिये जो पहले निर्गमित हो चुके हैं।
2. ऐसा निर्गमन, सामान्य सभा में विशेष प्रस्ताव द्वारा अधिकृत होना चाहिये।
3. विशेष प्रस्ताव में अंशों की संख्या, उनका मूल्य एवं प्रतिफल के साथ–साथ संचालकों या कर्मचारियों का विवरण, जिन्हें ये अंश दिये जा रहे है।
4. ऐसे अंश निर्गमित करते समय कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ किये, कम से कम एक वर्ष व्यतीत हो चुका हो।
5. यदि सूचीबद्ध कम्पनी है तो सेबी के दिशानिर्देशों की अनुपालना भी करनी होगी।
6. स्वेट समता अंशों को सभी प्रयोजनों के लिए समता अंशों की श्रेणी में ही माना जाता है, अतः जो सीमाएँ, प्रतिबन्ध या प्रावधान समता अंशों पर लागू होंगें, वही स्वेट समता अंशों पर लागू होंगे।

(J) अंशों का आबंटन (Allotment of Shares)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रविवरण या अन्य किसी माध्यम से, आवेदन पत्र के साथ जनता को निमंत्रण दिया जाता है। निमंत्रण के बदले में प्रस्तावित विनियोजक या आवेदक, अंशों को क्रय करने हेतु कम्पनी को आवेदन करते हैं जिसे प्रस्ताव (offer) कहा जाता है।

जब प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत आवेदन पत्र को कम्पनी द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो इसे ही अंशों का आबंटन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, कम्पनी की असमायोजित (Unappropriated) पूंजी का समायोजन करना ही, अंशों का आबंटन कहलाता है।

आबंटन से सम्बन्धित नियम (Rules as to allotment)

अंशों के आबंटन से सम्बन्धित प्रतिबन्धों को निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है –

(a) जब अंशों का निर्गमन जनता को न करना हो – जनता को निमंत्रण न देने पर, प्रविवरण निर्गमित करने की आवश्यकता नहीं होती है। उस स्थिति में अंशों के आबंटन के कम से कम तीन दिन पूर्व प्रविवरण के स्थान पर एक अन्य प्रलेख, जिसे स्थानापन्न प्रविवरण कहा जाता है, रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना पड़ता है। इस अवस्था में न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी करने की आवश्यकता नहीं होती है, साथ ही कम्पनी को सेबी के दिशा निर्देशों, की अनुपालना भी नहीं करनी पड़ती है।

(b) **जब जनता को निमंत्रण दिया जाता हो** – इस स्थिति में निम्नांकित प्रावधानों की अनुपालना सुनिश्चित करनी होगी –

1. **प्रविवरण का पंजीयन** – सर्वप्रथम, जनता को जारी किये जाने वाले प्रविवरण, जिस पर प्रस्तावित संचालकों या संचालकों के हस्ताक्षर हो, का रजिस्ट्रार के पास पंजीयन कराना अनिवार्य है। (धारा 60 (1))

2. **न्यूनतम अभिदान** – जब तक न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी नहीं होगी, तब तक अंशों का आबंटन नहीं हो सकता। जब कोई कम्पनी सार्वजनिक या अधिकार अंशों या ऋणपत्रों का निर्गमन करती है तो कुल निर्गमित राशि के 90 प्रतिशत भाग के लिए अभिदान प्राप्त होना अनिवार्य है। (धारा 69 (2))

3. **न्यूनतम अभिदान की राशि नकद में प्राप्त करना** – न्यूनतम अभिदान की राशि नकद में प्राप्त होना आवश्यक है। हां, चैक, बैंक ड्रॉफ्ट, स्टॉक इन्वेस्ट को नकद की तरह ही माना जाता है। (धारा 69 (2))

4. **आवेदन राशि** – अंकित मूल्य के कम से कम 5 प्रतिशत राशि, आवेदन के साथ प्राप्त होनी आवश्यक है। (धारा 69 (3))

5. **अनुसूचित बैंक में जमा रखना** – आवेदन पत्र के साथ प्राप्त धनराशि को अनुसूचित बैंक में तब तक जमा रखना होगा जब तक कि :–

   – कम्पनी को व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त न हो जाये।

   – न्यूनतम अभिदान की शर्त पूरी न हो जाए।

   – स्कन्ध विनियम केन्द्र/केन्द्रों से सूचियन की स्वीकृति प्राप्त न हो जाये।

   (धारा 73 (3))

6. **न्यूनतम अभिदान की अवधि** – न्यूनतम अभिदान की राशि, प्रविवरण जारी करने के अगले 120 दिनों में प्राप्त होनी चाहिए। 120 दिनों में प्राप्त न होने पर अगले 10 दिनों में प्राप्त सम्पूर्ण राशि आवेदकों को लौटानी होगी, अन्यथा दोषी संचालक, संयुक्त एवं पृथक–पृथक रूप में 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर भुगतान के लिए उत्तरदायी होगें। (धारा 69 (5))

7. **अभिदान सूची खुली रखना** – कोई भी कम्पनी प्रविवरण जारी करने के अगले 5 वें दिन तक अंशों का आबंटन नहीं कर सकती । इस अवधि को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु कम नहीं किया जा सकता। 5 वें दिन से पूर्व अंशों का आबंटन किया जाता है तो इसे अनियमित आबंटन नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

माना जाता है परन्तु कम्पनी एवं दोषी अधिकारियों को 50000 रूपये की राशि से दण्डित किया जा सकता है। (धारा 72)

8. **स्कन्ध विनियम केन्द्र/केन्द्रों में अंशों का सूचियन** – कम्पनी ने जिन स्कन्ध विनियम केन्द्र/केन्द्रों में सूचियन हेतु आवेदन किया है, उनकी सहमति अभिदन सूची बन्द होने के अगले 10 सप्ताह में प्राप्त होनी चाहिये, अन्यथा आबंटन व्यर्थ माना जायेगा। (धारा 73) साथ ही अगले 8 दिनों में प्राप्त राशि लौटानी होगी, वरन् संचालक 4 से 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

9. **अधि अभिदान (Over Subscription) होने पर** – आबंटन की प्रक्रिया पूर्ण होने के अगले 8 दिनों में अतिरिक्त राशि आवेदकों को लौटानी होगी, अन्यथा कम्पनी एवं दोषी अधिकारी, संयुक्त तथा पृथक–पृथक रूप में, ब्याज सहित, भुगतान के लिये उत्तरदायी होंगे। (धारा 73 2 (a))

10. **आबंटन विवरण (Allotment Return)**–आबंटन के पश्चात् अगले 30 दिनों में निम्नांकित सूचनाओं सहित एक विवरण पत्र रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना होगा जिसे आबंटन विवरणी कहा जाता है –

- अंशों की संख्या एवं उनका अंकित मूल्य जो नकद के बदले जारी किये है, साथ ही आंबटियों के नाम एवं पते।
- नकद के अलावा 'अन्य प्रतिफल' के बदले जारी किये गये अंशों की संख्या एवं उनका अंकित मूल्य।
- यदि बोनस अंश जारी किये है तो उन अंशों का विवरण एवं प्रस्ताव की प्रति।
- यदि बट्टे पर अंशों का आबंटन हुआ है तो प्रस्ताव की प्रति, बट्टे की दर एवं यदि आवश्यक हो तो केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति की प्रति।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. आबंटन से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
   (What do you mean by allotment ?)
2. 'आबंटन विवरणी' क्या है ? (5 अंक)
   (What is a return on allotment?)
3. स्वेट समता अंशों पर प्रकाश डालिये ? (5 अंक)
   (Write a note on 'Sweat Equity Share' ?)
4. लाभों के पूंजीकरण से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
   (What do you mean by capitalisation of profits ?)
5. 'अधिकार अंश' क्या है ? (5 अंक)
   (What is the right shares ?)
6. अंशों के अभिगोपन से क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
   (What do you mean by a underwriting of shares ?)
7. अंशों के आबंटन से क्या आशय है ? सार्वजनिक कम्पनी द्वारा अंशों का आबंटन करते समय किन शर्तों की अनुपालना करनी होगी ? (15 अंक)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(What is the meaning of allotment of shares? What conditions must be satisfied before a public company can allot its shares ?)

8. विभिन्न प्रकार के अंशों की व्याख्या कीजिये। अंश एवं स्कन्ध में क्या अन्तर है ? (Explain the different types of shares. What is difference between 'Share & Stock'?)
(15 अंक)

9. अंश से आपका क्या अभिप्राय है ? निम्नांकित के सम्बन्ध में विवेचना कीजिये –

10. अ. प्रीमियम पर निर्गमन ब. सम मूल्य पर निर्गमन

स. बट्टे पर निर्गमन। (15 अंक)

(What do you mean by Share ? Explain the law relating to

a. Issue at premium b. issue at par c. Issue at discount

10. अंश प्रमाणपत्र से आपका क्या अभिप्राय है ? अंश प्रमाणपत्र एवं अंश अधिपत्र में अन्तर कीजिये। (15 अंक)

(What do you mean by 'Share Certificate' ? Distinguish between share certificate and share warrant.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय 9 – अंश पूंजी

(Share Capital)

(A) प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यतया, कम्पनी अपनी पूंजी की व्यवस्थ अंशों एवं ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा करती है। जब पूंजी की व्यवस्था अंशों के निर्गमन द्वारा की जाती है तो इसे अंश पूंजी कहा जाता है।

एम. सी. कुच्छल के अनुसार, ''अंश पूंजी से तात्पर्य उस पूंजी से है जो कि कम्पनी को अंशों के निर्गमन से प्राप्त हुई है अथवा प्राप्त करनी है''। (The term share capital denotes the amount of capital raised or to be raised by the issue of shares by a company)

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि अंशों के विक्रय द्वारा जुटाई गई धनराशि को ही अंश पूंजी कहा जाता है।

(B) अंश पूंजी का वर्गीकरण– (Classification of Share Capitla)

कम्पनी के सम्बन्ध में 'पूंजी' शब्द का उपयोग निम्नांकित अर्थों में किया जा सकता है –

1. **अधिकृत या पंजीकृत पूंजी (Authorised or Registered Capital)**

   अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी को अधिकतम पूंजी की मात्रा, जिसका निर्गमन कम्पनी अपने जीवन काल में कर सकती है, दर्शानी होगी। यह पूंजी एवं इसका अंशों में विभाजन, कम्पनी के पार्षद सीमानियम में दी हुई होती है।

2. **निर्गमित पूंजी (Issued Capital)** – अधिकृत पूंजी का वह भाग जो अभिदान हेतु जनता को आमंत्रित किया जाता है, निर्गमित पूंजी के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः कम्पनी सम्पूर्ण पूंजी का निर्गमन एक साथ न करके, आवश्यकतानुसार करती है।

3. **अभिदत्त पूंजी (Subscribed Capital)** – यदि सम्पूर्ण निर्गमित पूंजी हेतु आवेदन पत्र प्राप्त हो जाये तो निर्गमित पूंजी एवं अभिदत्त पूंजी का अन्तर समाप्त हो जाता है। अन्यथा, निर्गमित पूंजी का वह भाग जो जनता द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, अभिदत्त पूंजी के नाम से जाना जाता है।

4. **याचित पूंजी (Called up Capital) -** यह अभिदत्त पूंजी का वह भाग है जिसकी कम्पनी द्वारा मांग की गई है। यदि 10 रूपये अंकित मूल्य का अंश हो और 5 रूपये प्रति अंश के रूप में मांग की गई हो तो 5 रूपये प्रति अंश, याचित पूंजी के नाम से जानी जायेगी।

5. **अयाचित पूंजी (Un Called up Capital)** – अभिदत्त पूंजी का वह भाग जिसकी मांग न की गई हो, अयाचित पूंजी कहा जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में 5 रूपये प्रति अंश अयाचित पूंजी की श्रेणी में मानी जायेगी।

6. **चुकता पूंजी (Paid up Capital) -** याचित पूंजी का वह भाग जो अंशधारियों द्वारा भुगतान कर दिया गया हो, चुकता पूंजी के नाम से जाना जाता है। यदि सम्पूर्ण राशि एक साथ मांग ली जाती है तो याचित पूंजी एवं चुकता पूंजी का अन्तर समाप्त हो जाता है।

7. **आरक्षित पूंजी (Reserve Capital)** – अयाचित पूंजी का वह भाग जिसकी मांग कम्पनी के समापन के समय ही आवश्यकता पड़ने पर की जाती हो, उसे आरक्षित पूंजी के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः आरक्षित पूंजी की आवश्यकता, समापन की प्रक्रिया को संचालित करने हेतु होती है।

(C) अंश पूंजी में परिवर्तन (Alteration of Share Capital) (Section – 94)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंशों द्वारा सीमित या गारण्टी द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी, जिसमें अंशपूंजी हो, यदि चाहे तो निम्नांकित तरीके से अंश पूंजी में परिवर्तन कर सकती है, बशर्ते कि अन्तर्नियमों के द्वारा अधिकृत हो –

1. नये अंशों के निर्गमन द्वारा अंशपूंजी में वृद्धि।
2. अधिक या कम राशि के अंशों में विभाजन तथा एकीकरण।
3. पूर्ण प्रदत्त अंशों का स्कन्ध में या स्कन्ध का अंशों में परिवर्तन।
4. अंशों को सीमानियम द्वारा निर्धारित राशि से कम अंकित मूल्य के अंशों में विभाजित करके।
5. ऐसे अंशों को रद्द करके जो किसी के द्वारा नहीं लिये गये हो।

अंश पूंजी में परिवर्तन के अधिकार का उपयोग, कम्पनी की सामान्य सभा में 'साधारण प्रस्ताव' पारित करके किया जा सकता है। परिवर्तन के अगले 30 दिनों में इस आशय की सूचना रजिस्ट्रार को देनी होगी। (धारा 95)

अंश पूंजी में कमी (धारा 100 से 103) (Reduction of Share Capital)

धारा 100 में यह प्रावधान है कि यदि अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी या गारण्टी द्वारा सीमित जिसमें अंश पूंजी हो, यदि अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत हो तो विशेष प्रस्ताव पास करके अंश पूंजी में कमी कर सकती है। वस्तुतः अंश पूंजी में की गई कमी का प्रभाव प्रत्यक्षतः लेनदारों एवं ऋणपत्रधारियों पर पड़ता हैं क्योंकि पूंजी में से ही इनका भुगतान किया जाता है। इसलिए अंशपूंजी में कमी उचित आधारों एवं वैधानिक प्रावधानों के तहत ही की जा सकती है।

राष्ट्रीय न्यायाधीकरण की सहमति के आधार पर निम्नांकित तरीके से अंशपूंजी में कमी की जा सकती है –

1. **अदत्त अंशों के दायित्व को समाप्त करके – (Extinguishing the liability regarding un paid shares) [Sec. 100(1)(a)]** – जैसे, एक कम्पनी की अंश पूंजी 1,00,000 रूपये है जो 10 रूपये वाले 10,000 अंशों में विभाजित है। प्रति अंश 6 रूपये चुका दिये गये हैं। कम्पनी का यह मानना है कि 4 रूपये अदत्त राशि की आवश्यकता निकट भविष्य में नहीं है। ऐसी स्थिति में इस अदत्त राशि के दायित्व को समाप्त करते हुए अंश पूंजी में कमी कर सकती है।
2. **नष्ट हुई चुकता पूंजी या ऐसी पूंजी जो विद्यमान सम्पत्तियों का प्रतिनिधित्व न करती हो, निरस्थ करके (Cancelling paid up capital which is lost or doesn't represent by available assets)** (धारा 100 (1)(b)), जैसे, कम्पनी में हुई हानि के कारण 10 रूपये मूल्य के अंश घटकर 5 रूपये प्रति अंश हो गये। अर्थात कम्पनी की आधी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी। इस स्थिति में वैधानिक प्रावधानों के तहत 10 रूपये वाले अंश को 5 रूपये वाले अंश में बदला जा सकता है तथा कोई अतिरिक्त दायित्व नहीं रहेगा। अथवा, यदि अंश का अंकित मूल्य 10 ही रखना है तो 5 रूपये प्रति अंश को पूर्णदत्त मान (यद्यपि अंश पूर्ण प्रदत्त है) लिया जाता है और 5 रूपये प्रति अंश का दायित्व बना रहता है।
3. **अधिक चुकता पूंजी का भुगतान करके (Paying off excess paid up capital) [Sec. 100 (1) (c)] -** यदि कम्पनी यह महसूस करती है कि अंश पूंजी वर्तमान आवश्यकताओं से बहुत अधिक है। उस स्थिति में अतिरिक्त अंश पूंजी आवेदकों को लौटाई जा सकती है। जैसे – कम्पनी के पास 1,00,000 रूपये की अंश पूंजी है जो 10 रूपये वाले 10000 अंशों में विभाजित हैं। कम्पनी प्रति अंश 4 रूपये लौटाना चाहती है। इस स्थिति में 6 रूपये वाले पूर्ण प्रदत्त अंश स्वीकार कर लिये जायेगें। यदि अंकित मूल्य 10 रूपये ही रखना है तो 4 रूपये प्रति अंश का दायित्व बना रहेगा।

अंश पूंजी में कमी की प्रक्रिया (Procdure of the reduction of share capital)

1. **अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत** – अंश पूंजी में कमी हेतु पहली शर्त यह है कि अन्तर्नियमों में अंश पूंजी में कमी का प्रावधान होना चाहिये। यदि प्रावधान नहीं है तो विशेष प्रस्ताव द्वारा आवश्यक संशोधन करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **'विशेष प्रस्ताव' पारित करना** – तत्पश्चात् अंश पूंजी में कमी हेतु साधारण सभा में विशेंष प्रस्ताव पारित करना पड़ता है।

3. **न्यायाधीकरण को अनुमोदन हेतु आवेदन** – कम्पनी द्वारा पारित विशेष प्रस्ताव के अनुमोदन हेतु न्यायाधीकरण को प्रस्तुत करना पड़ता है। न्यायाधीकरण अपनी सहमति व्यक्त करने से पूर्व लेनदारों, ऋणपत्रधारियों एवं अल्पसंख्यक अंशधारियों के हितों को भलीभांति समझने का प्रयास करता है। इस प्रयोजनार्थ न्यायाधीकरण को निम्नांकित प्रक्रिया की अनुपालना करनी होगी –

1. **लेनदारों की सूची तैयार करना** – न्यायाधीकरण उन लेनदारों की सूची तैयार करेगा, जिनका हित अंश पूंजी में कमी के कारण प्रभावित हो रहा है।

2. **लेनदारों की आपत्तियाँ आमंत्रित करना** – तत्पश्चात् लेनदारों से आपत्तियां आमंत्रित करती है और उन्हें उचित अवसर भी प्रदान करती है।

3. **सहमति के बाहर रखना –** यदि किसी लेनदार को पूर्ण सुरक्षित कर दिया जाता है या अंश पूंजी में कमी पर उसे कोई शिकायत नहीं है तो न्यायाधीकरण उसे सहमति से बाहर रख सकता है।

4. **अंशधारियों के हितो को सुरक्षित करना** – तत्पश्चात् विभिन्न वर्गों के अंशधारियों के हितों पर ध्यान दिया जाता हैं और उनके हितों को भी सुरक्षित करने का प्रयास किया जाता हैं।

5. **न्यायाधीकरण द्वारा अनुमोदन** – यदि न्यायाधीकरण इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि प्रत्येक लेनदार, जिसे आपत्ति का अधिकार था, ने अंश पूंजी में कमी पर अपनी सहमति दे दी है अथवा उसे ऋणों का भुगतान कर दिया है या सुरक्षित कर दिया है तो न्यायाधीकरण एक आदेश के तहत, उन शर्तों के आधार पर जिन्हें वह उचित समझे, अंश पूंजी में कमी के प्रस्ताव को अनुमोदित कर देता है। (धारा 102)

6. **'और' कमी की गई (and reduced) शब्द का प्रयोग** – यदि न्यायाधीकरण उचित समझे तो कम्पनी के नाम के आगे '**And reduced**' शब्द का उपयोग करने के लिये आदेश दे सकता है और आदेश में प्रयोग की अवधि को निर्धारित भी कर सकता है।

7. **अन्य कारणों का प्रकाशन** – यदि न्यायालय उचित समझे तो कम्पनी को उन कारणों के प्रकाशन 'जिनको वह उचित समझे' का भी आदेश दे सकता है जिनके परिणाम स्वरूप पूंजी में कमी करनी पड़ी।

8. **पंजीयन**–अंत में विशेष प्रस्ताव की प्रति, राष्ट्रीय न्यायाधीकरण का अनुमोदन एवं परिवर्तित पूंजी का विवरण रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना होगा। रजिस्ट्रार प्राप्त विलेखों से सन्तुष्ट होने पर उन्हें पंजीकृत कर देगा। (धारा 103)

   जब 'पूंजी में कमी' का पंजीकरण हो जायेगा तो यह इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण होगा कि पूंजी में कमी कर दी गई है और कमी से सम्बन्धित सभी अहर्त्ताओं को पूर्ण कर लिया गया है।

9. **पंजीकरण का प्रकाशन**–न्यायाधीकरण के निर्देशानुसार, कम्पनी को 'पूंजी में कमी के पंजीकरण' का प्रकाशन, उस विधि एवं तरीके से करना होगा जिसे न्यायालय उचित समझे।

10. **पूंजी का विवरण ,'पूंजी वाक्य' का स्थान**– परिवर्तित पूंजी का विवरण, पंजीकरण के पश्चात् सभी प्रयोजनों के लिए पार्षद सीमानियम के पूंजी वाक्य की तरह माना जायेगा और इस रूप में माना जायेगा जैसे कि वह मूल रूप में तैयार किया गया हो।

पूंजी में घटोतरी एवं पूंजी में कमी (Diminution and Reduction of Capital)

पूंजी में घटोतरी (Diminution), वस्तुतः अनिर्गमित पूंजी और अधिकृत पूंजी को निरस्त करने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार अधिकृत पूंजी का वह भाग जो किसी के भी द्वारा न लिया गया हो अथवा जनता को प्रस्तावित करने की सम्भावना न हो, वैधानिक प्रावधानों की अनुपालना करते हुए कम्पनी उसे निरस्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में इस परिवर्तन का निर्गमित पूंजी के साथ सम्बन्ध नहीं होता है। वास्तव में इस शब्दावली का प्रयोग धारा 94 के तहत् पूंजी के पुनर्गठन के रूप में ही किया जाता है। पूंजी में पुनर्गठन हेतु अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने के साथ–साथ सामान्य सभा में साधारण प्रस्ताव पारित करना पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वहीं दूसरी ओर पूंजी में कमी का सम्बन्ध, निर्गमित, अभिदत्त या चुकता पूंजी के निरस्तीकरण से है जिसका प्रत्यक्ष जुड़ाव लेनदारों एवं ऋणपत्रधारियों के हितों से होता हैं। पूंजी में कमी से सम्बन्धित विस्तृत विवेचना 100 से 103 तक की धाराओं में की जा चुकी हैं।

कम्पनी द्वारा अंशों या प्रतिभूतियों का पुनः क्रय (Buy back of shares/securities bycompany)

कम्पनी संशोधित अधिनियम, 1999 की धारा 77A एवं 77B में यह प्रावधान है कि यदि कम्पनी चाहे तो निम्नांकित प्रावधानों की अनुपालना करते हुए अपने स्वयं के अंश पुनः क्रय कर सकती है –

1. **पुनः क्रय हेतु पर्याप्त कोष होना चाहिए जिसका निर्माण निम्नांकित तरीके से किया जा सकता है –**
    1. स्वतंत्र कोष, अथवा
    2. अंश प्रीमियम खाते द्वारा, अथवा
    3. पूर्व में निर्गमित अंशों की राशि से (अर्थात् पुनः क्रय के प्रयोजन से निर्गमित अंशों या विशेष प्रतिभूतियों से प्राप्त राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता)
2. **पुनः क्रय की शर्तें** – पुनः क्रय को क्रियान्विति करने हेतु निम्न शर्तें पूरी होनी चाहिये –
    1. पुनः क्रय अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत हो।
    2. यदि पुनः क्रय चुकता पूंजी एवं स्वतंत्र संचय के 25 प्रतिशत या अधिक भाग को समेटे हुए है तो विशेष प्रस्ताव द्वारा अनुमोदित होना चाहिये।
    3. इस सम्बन्ध में संचालक मण्डल द्वारा प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिये। (पहले यह अधिकार सामान्य सभा द्वारा शाषित होता था)
    4. सामान्य दशाओं में पुनः क्रय चुकता पूंजी एवं स्वतंत्र संचयों के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये।
    5. पुनः क्रय के पश्चात् ऋण समता अनुपात 2:1 से अधिक नहीं होना चाहिये।
    6. पुनः क्रय करते समय सेबी के दिशा–निर्देशों की अनुपालना भी करनी होगी।
3. **पुनः क्रय के स्त्रोत** – पुनः क्रय इस प्रकार कर सकते हैं –
    1. विद्यमान अंशधारियों से आनुपातिक आधार पर, अथवा
    2. खुले बाजार से, अथवा
    3. ओड लोट (Odd Lots) में से, अथवा
    4. स्टॉक विकल्प अथवा स्वेट समता अंशों के धारकों से ।

पुनः क्रय की प्रक्रिया (Procedure of Buy Back)

1. **सभा की सूचना** – सर्वप्रथम सभा के सम्बन्ध में उन सभी सदस्यों को सूचना देनी होगी जो सूचना प्राप्त करने के हकदार है। सूचना में निम्नांकित तथ्यों का समावेश होना चाहिये –
    1. महत्वपूर्ण तथ्यों का पूर्ण प्रकटीकरण।
    2. पुनः क्रय की आवश्यकता।
    3. प्रतिभूतियों का वर्ग एवं उनकी संख्या।
    4. पुनः क्रय की अवधि, इत्यादि।
2. **विशेष प्रस्ताव पारित करना**– यदि पुनः क्रय चुकता पूंजी एवं स्वतंत्र संचयों के 25 प्रतिशत या अधिक भाग समेटे हुए हो तो सामान्य सभा में 'विशेष प्रस्ताव' पारित करना होगा।
3. **शोधनक्षमता की घोषणा**– पुनः क्रय से पूर्व कम्पनी को यह घोषणा करनी होगी कि कम्पनी सभी देयताओं का भुगतान करने की स्थिति में है तथा घोषणा की तिथि से अगले 12 माह तक कम्पनी के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दिवालिया होने की सम्भावना नहीं हैं। इस घोषणा पर कम से कम दो संचालकों जिनमें एक प्रबन्ध संचालक (यदि हो तो) के हस्ताक्षर होने चाहिये।

4. **पुनः क्रय का क्रियान्वयन**– पुनः क्रय का क्रियान्वयन प्रस्ताव पारित होने के अगले 12 माह तक हो जाना चाहिये।

5. **पूंजी शोधन संचय खाते में राशि का हस्तान्तरण**– यदि पुनः क्रय स्वतंत्र संचयों में से करना है तो सर्वप्रथम उन अंशों के अंकित मूल्य की राशि की सीमा तक की राशि पूंजी शोधन संचय खाते में हस्तांतरित करनी होगी।

6. **प्रतिभूतियों को नष्ट करना**– पुनः क्रय की प्रक्रिया पूर्ण होने के अगले 7 दिनों में उन प्रतिभूतियों को भौतिक रूप से नष्ट करना होगा।

7. **पुनः निर्गमन पर रोक**– पुनः क्रय के पश्चात् अगले 24 माह में उसी प्रकार की प्रतिभूतियों का पुनः निर्गमन नहीं किया जा सकता।

8. **पृथक रजिस्टर**– जिन प्रतिभूतियों का पुनः क्रय किया गया है, उनसे सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचनाओं का पृथक रजिस्टर में इन्द्राज रखना होगा।

9. **पुनः क्रय का विवरण**– अंत में सूचीबद्ध कम्पनियों द्वारा पुनः क्रय से सम्बन्धित विवरण अगले 30 दिनों में सेबी के सन्मुख प्रस्तुत करना होगा।

10. **पुनः क्रय पर निषेध**– यदि कोई कम्पनी वैधानिक देयताओं या विधिक भुगतानों का दोषी हैं तो उसे पुनः क्रय का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अंश पूंजी से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
(What do you mean by Share Capital ?)
2. आरक्षित पूंजी और पूंजी संचय में अन्तर स्पष्ट कीजिए ? (5 अंक)
(Distinguish between 'reserve capital' and 'capital reserve')
3. कौनसे कोषों में से कम्पनी पुनः क्रय कर सकती है ? (5 अंक)
(Out of which funds, a company can buy back its shares ?)
4. पूंजी में कमी के विभिन्न तरीके क्या है ? (5 अंक)
(What are the method, for the reduction of share capital ?)
5. 'पूंजी में घटोतरी' एवं 'पूंजी में कमी' में अंतर कीजिए ? (5 अंक)
(Distinguish between 'diminution and reduction of capital)
6. कम्पनी अधिनियम 1956 में पूंजी में कमी से सम्बन्धित प्रावधानों की विवेचना कीजिये। (15 अंक)
(Explain the provisions of the company Act 1956 regarding the 'reduction of capital')
7. पुनः क्रय पर लघु निबन्ध लिखिए। (15 अंक)
(Write a 'Short Note' over buy back of shares.)

संदर्भ के लिये पुस्तकें

: Books Recommended :

1. Company Law of Auditing – Nolakha, Jain, Khandelwal, Pareek
2. Company Law – N.D. Kapoor
3. Company Law – Avtar Singh
4. कम्पनी अधिनियम – चूण्डावत, खीचा, जोशी, जैन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Section B
कम्पनी विधी एवं अंकेक्षण
अध्याय प्रथम
संचालक [Directors]

कम्पनी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका प्रबन्ध प्रजातांत्रिक प्रबन्ध प्रणाली द्वारा किया जाता है। इसमें स्वामित्व तथा प्रबन्ध पृथक–पृथक हो जाते है। यद्यपि कम्पनी के वास्तविक स्वामी उसके अंशधारी होते है, किन्तु अंशधारियों की संख्या बहुत अधिक होने तथा देश के विभिन्न भागों में फैले होने के कारण कम्पनी का प्रबन्ध एवं संचालन इनके द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है। अतः कम्पनी के अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध एवं संचालन के लिए अपने प्रतिनिधियों को नियुक्त करते है, जिन्हे संचालक कहते है।

आशय –

सामान्यतः संचालक से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो कि किसी कार्य विशेष के संदर्भ में उसका संचालन करता है। कम्पनी के संदर्भ में संचालक से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो अंशधारियों द्वारा कम्पनी का प्रबन्ध, संचालन, निरीक्षण तथा निर्देशन करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions) –

कम्पनी अधिनियम,1956 की धारा 2 (13) के अनुसार– ''संचालक से आशय किसी भी ऐसे व्यक्ति से है जो कि संचालक के पद पर कार्य कर रहा है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए। **धारा 2 (30)** के अनुसार ''संचालक कम्पनी का अधिकारी होता है।''

वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार ''संचालक का आशय ऐसे व्यक्तियों से है जिन्हें कम्पनी का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया जाता है।''

भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी एक मामले के निर्णय में संचालक की परिभाषा दी है। इसके अनुसार, ''संचालक वह व्यक्ति है जो किसी कम्पनी की नीति का मार्गदर्शन करता है और उसकी कार्य प्रणाली का निरीक्षण करता है।''

धारा 252 (3) के अनुसार, ''कम्पनी के संचालकों को सामूहिक रूप से संचालक मण्डल कहा जाता है।'' संचालक मण्डल कम्पनी का प्रमुख प्रबन्धकीय अंग है जिसका गठन अंशधारियों द्वारा चुने हुए संचालकों से किया जाता है। वास्तव में, कम्पनी का सम्पूर्ण प्रबन्ध तन्त्र ही '**संचालक मण्डल**' में ही केन्द्रित रहता है, ये ही समस्त निर्णय लेते है तथा प्रबन्ध संचालक अथवा प्रबन्धक के माध्यम से समस्त निर्णयों का क्रियान्वयन करवाता है।

संचालकों की स्थिति

भारतीय कम्पनी अधिनियम में संचालकों की स्थिति के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नही किया गया है। इसलिए कम्पनी में संचालकों की स्थिति की व्याख्या करना अपेक्षाकृत एक कठिन कार्य हैं। किन्तु समय–समय पर अनेक न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों एवं उनके द्वारा इस सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचारो के आधार पर ही संचालकों की स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है।

लॉर्ड सेलबोर्न ने ग्रेट इस्टर्न रेल्वे बनाम टर्नर के विवाद में निर्णय देते हुये संचालकों की स्थिति के संबध में कहा गया है कि, ''संचालक कम्पनी के प्रन्यासी अथवा एजेन्ट होते है। वे कम्पनी की सम्पत्ति एवं धन के लिए प्रन्यासी है तथा उन व्यवहारों के लिए कम्पनी के एजेन्ट है जिन्हें वे कम्पनी की और से करते हैं।''

लार्ड बोवेन ने एक मामले के निर्णय में लिखा है कि, ''संचालको को कभी एजेन्ट कहा जाता है, कभी प्रन्यासी तथा कभी प्रबन्ध साझेदार।''

लॉर्ड जस्टिश कार्जेश हार्डी के मतानुसार, ''संचालक, प्रबन्ध साझेदारों की स्थिति में भी होते है। जिनकी नियुक्ति समस्त अंशधारियों के पारस्परिक प्रबन्ध द्वारा संचालकों के पद को पूरा करने के लिए की जाती है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त न्यायाधीशों के विचारों के अध्ययन यह स्पष्ट होता है कि संचालक कम्पनी में विभिन्न स्थितियों में कार्य करते है। इस आधार पर संचालकों की स्थिति को मुख्यतः इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

I. **कम्पनी के एजेन्ट के रूप में –** यद्यपि कम्पनी द्वारा संचालक की नियुक्ति वास्तव में एजेन्ट के रूप में नहीं की जाती है। किन्तु फिर भी संचालक उस सीमा तक कम्पनी के एजेन्ट माने जाते है जिस सीमा तक उन्हे अधिकार हस्तान्तरित किये जाते है।

कम्पनी एक कृत्रिम वैधानिक व्यक्ति है अतः वह स्वंय व्यक्तिगत रूप से कार्य नहीं कर सकती इसलिए वह अपने कार्य संचालकों के माध्यम से ही करती है। अतः एजेन्सी अधिनियम के सामान्य सिद्वान्तों के आधार पर कम्पनी एवं संचालकों का सम्बन्ध वास्तव में नियोक्ता एंव एजेन्ट का होता है।

फरग्यूसन बनाम विल्सन के विवाद में निर्णय देते हुये संचालक की कम्पनी के सम्बन्ध में स्थिति को स्पष्ट करते हुये **न्यायाधीश लॉर्ड केयनर्स ने कहा है कि,** एक सार्वजनिक कम्पनी के संचालकों की स्थिति एक एजेन्ट के रूप में होती है। कम्पनी स्वंय एक व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं कर सकती इसलिए वह केवल संचालकों के द्वारा ही कार्य करती है जो कि उसके एजेन्ट होते है। अतः कम्पनी तथा उसके संचालकों का सम्बन्ध बिल्कुल नियोक्ता तथा एजेण्ट का होता है।

संचालक की स्थिति को एजेन्ट के रूप में स्पष्ट करने की दृष्टि से निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट किये जा सकते है –

1. यदि संचालक अपने अधिकारों की सीमा में कम्पनी के लिए कोई अनुबंध करते है तो उससे कम्पनी ही उत्तरदायी होते है, संचालक नही।
2. कम्पनी के संचालकों को कम्पनी के व्यवसाय का संचालन करने के लिए एक एजेन्ट की भाँति सब अधिकार एंव कर्त्तव्य प्राप्त होते हैं।
3. संचालक को दी गई सूचना कम्पनी को दी गई सूचना मानी जाती है।
4. अधिकार क्षेत्र के बाहर के कार्यों के लिए एजेन्ट भाँति संचालक भी व्यक्तिगत रूप से उतरदायी होते है।
5. कम्पनी के कार्यो के लिए संचालकों द्वारा अपने नाम में किये गये अनुबन्धों में दूसरा पक्षकार वाद प्रस्तुत कर सकता है।

6- कोई कम्पनी उन कार्यो की पुष्टि कर सकती है जो कार्य कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में है किन्तु संचालकों के अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

7- संचालक अंशधारियों के बहुमत के एजेन्ट नहीं है वे तो केवल कम्पनी के एजेन्ट है जिनमें समस्त अंशधारी शामिल है।

II. कम्पनी के प्रन्यासी के रूप में–संचालक कुछ सीमा तक कम्पनी की सम्पत्तियों के प्रन्यासी के समान उत्तरदायी होते है। **न्यायाधीश सैलबोर्न ने एक मामले के निर्णय में लिखा है कि** ''संचालक कम्पनी के धन तथा सम्पत्ति के प्रन्यासी होते है''

रामास्वामी अय्यर बनाम ब्रह्मया एण्ड कम्पनी के वाद में निर्णय देते हुये मद्रास उच्च न्यायालय ने यह माना है कि–''संचालक कम्पनी के प्रन्यासी होते है अतः कम्पनी के धन के दुरूपयोग के लिए उन्हे प्रन्यासियों की तरह उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।''

यद्यपि संचालकगण संचालक मण्डल के रूप में सामूहिक रूप से कम्पनी में कार्य करते है परन्तु अग्रलिखित कार्यों के लिए संचालकों को प्रन्यासी की तरह माना जाता है।

1. कम्पनी की सम्पतियों के लिए प्रन्यासी।
2. कम्पनी के धन के लिए प्रन्यासी।
3. शक्तियों के प्रयोग के सम्बंन्ध में प्रन्यासी
4. संचालक कम्पनी के लिए प्रन्यासी है न कि अंशधारियों के व्यक्तिगत कार्यों के लिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

III. प्रबन्ध साझेदार के रूप में–संचालकों की नियुक्ति अंशधारियों द्वारा कम्पनी का प्रबन्ध करने हेतु की जाती है। अतः वे एक और प्रबन्धक है तो दूसरी और संचालक। संचालक स्वय भी कम्पनी के अंश खरीदते है और कम्पनी की पूँजी में अशंदान करते है। अतः वे कम्पनी में साझेदार भी होते है। इस प्रकार एक सीमा तक संचालकों की स्थिति कम्पनी के प्रबन्ध साझेदार के रूप में होती है।

ओटोमेटिक सेल्फ क्लीनिंग सिडिकेट लिमिटेड बनाम कुनीनहोम के वाद में निर्णय देते हुये न्यायमूर्ति हार्डी ने कहा है कि–''संचालक प्रबन्ध साझेदारो की स्थिति में होते है जिनकी नियुक्ति समस्त अंशधारियों की पारस्परिक सहमति द्वारा संचालक के पद को पूरा करने के लिए की जाती है।''

इनरी विन्चाम शिप बिल्डिग बाइलर एण्ड साल्ट कम्पनी के वाद में भी संचालकों को प्रबंन्ध साझेदार के रूप में मानते हुये कहा गया है कि–''संचालक प्रबन्ध करने वाले साझेदार होते है। और यदि वे अपने अधिकारों का दुरूपयोग करते है तो इसके कारण हुई क्षति की पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराये जा सकते है।''

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संचालक कम्पनी के अंश लेने के कारण एक और तो वे उसके साझेदार है तो दूसरी और कम्पनी का प्रबंध व्यवस्था के कारण वे प्रबन्धक भी है।

IV. विश्वाश्रित व्यक्ति के रूप में–संचालक की कम्पनी मे स्थिति विश्वाश्रित होती है। वास्तव में संचालक का पद परम विश्वास का होता है। अतः उन्हें अपने समस्त कार्य पूर्ण सद्भावना एवं सावधानी से करने चाहिए। **न्यायाधीश रौमिली ने कहा है कि**–''संचालक ऐसे व्यक्ति है जो कि अंशधारियों के लाभ हेतु कम्पनी के कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए चुने जाते है। यह एक विश्वास का पद है जिसे स्वीकार कर लेने पर उसका पूर्ण रूप से निष्पादन करना उसका दायित्व है।''

अतः संचालकों को कम्पनी का कार्य सद्विश्वास से करना चाहिए। एक संचालक को कम्पनी के संचालन के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने होते है जैसे –

– अंशों का आबंटन

– अंशों का हस्तांतरण

– अंशों का हरण

– लांभाश वितरण

– कम्पनी के लिए बहुमूल्य सम्पत्तियों का क्रय–विक्रय।

– कम्पनी की पूँजी का प्रयोग आदि।

उपरोक्त सभी कार्यों को उसे पूर्ण सद्विश्वास एवं सद्भाव का परिचय देते हुये पूरे करने चाहिए।

V. एक आवश्यक अंग के रूप में–संचालकों की स्थिति के सम्बन्ध में विचार करते समय एक मत यह भी स्पष्ट होता है कि संचालक कम्पनी के आवश्यक अंग होते है। कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति होती है जिसका सम्पूर्ण कार्य संचालकों की सहायता से पूरा होता है। ये कम्पनी की नीतियाँ निर्धारण करते हैं और उन्हें कार्यरूप में परिणित करने के लिए आवश्यक प्रयास करते है। एक मामले के निर्णय में **न्यायाधीश नेविल ने अत्यन्त ही स्पष्ट लिखा है कि ''संचालक मण्डल कम्पनी का मस्तिष्क होता है और कम्पनी रूपी शरीर केवल संचालकों के माध्यम से ही कार्य करता है।''**

अतः हम यदि इस कथन से यह निष्कर्ष निकाले कि कम्पनी संचालकों पर आधारित होती है और उनका शरीर संचालकों के मस्तिष्क से प्रभावित होता है, उसी के अनुरूप कार्य करता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। चूँकि मस्तिष्क तथा शरीर को अलग–अलग नहीं किया जा सकता है, अतः संचालक भी कम्पनी के अभित्र अंग होते है।

यदि संचालकों को कम्पनी का अभिन अंग नहीं माना जाए तो अत्यन्त गम्भीर परिणाम भी हो सकते हैं। इसके अभाव में संचालकों को कई कार्यों के दायित्वों के प्रति उत्तरदायी ठहराने में कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। संचालकों को कम्पनी के संचालन के प्रति उत्तरदायी ठहराने के लिए उन्हें कम्पनी के आवश्यक अंग रूप में मानना ही पड़ेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

VI. एक अधिकारी के रूप में–संचालकों की कम्पनी में स्थिति एक अधिकारी के रूप में होती है। भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 2(30) के अनुसार–''संचालको को कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन न करने पर संचालकों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

VII. एक कर्मचारी के रूप में–सामान्यतः किसी संचालक को कम्पनी में कर्मचारी के रूप में नियुक्त नही किया जाता है किन्तु इस सम्बन्ध मे इसकी नियुक्ति पर कम्पनी अधिनियम के अधीन कोई प्रतिबन्ध भी नही लगाया गया है। अतः एक संचालक कम्पनी में संचालक के पद के अतिरिक्त एक कर्मचारी के रूप में भी कार्य कर सकता है।

कम्पनी अधिनियम की धारा 314 के अनुसार–''एक संचालक को कम्पनी में प्रबन्ध संचालक अथवा तकनीकी संचालक के रूप में लाभ के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार वह पृथक–पृथक दो स्थितियों में काम कर सकता है।

लि. बनाम लीज एयर फार्मिंग के मामले में यह निर्णय दिया जा चुका है कि एक व्यक्ति कम्पनी का संचालक होते हुये कर्मचारी भी हो सकता है।

उपरोक्त विवेचना के बाद निष्कर्ष के रूप में संचालकों की स्थिति के सम्बन्ध में एम. आर. जेसेल के विचार प्रस्तुत किये जा सकते है। इन्होने **डीन. कोल माइनिंग फोरेस्ट के मामले मे कहा था कि–**''संचालको को कभी प्रन्यासी तो कभी प्रबन्ध साझेदार कहा जाता है। यह विशेष महत्व नही रखता है कि आप उन्हें क्या कहते है वास्तविक रूप में संचालक व्यावसायिक व्यक्ति है जो कि एक व्यावसायिक संस्था का अपने और अंशधारियों के लाभ हेतु प्रबन्ध करता है वे कम्पनी से विश्वाश्रित सम्बन्ध रखते है।''

संचालकों की संख्या
(Number of Directors)

कम्पनी संचालकों की संख्या के सम्बन्ध में निम्नालिखित प्रमुख प्रावधान है :–

I. न्यूनतम संख्या–यद्यपि संचालकों की संख्या का निर्धारण कम्पनी के अन्तर्नियमों की व्यवस्था के अनुसार होता है। परन्तु न्यूनतम संख्या के लिए अधिनियम में स्पष्ट प्रावधान है। अतः कम्पनी अधिनियम के अनुसार–

1. प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी में कम से कम तीन संचालक होने आवश्यक है।
   (a) किन्तु सन् 2000 में संशोधित धारा 252 के अनुसार जिस सार्वजनिक कम्पनी में पाँच करोड़ रूपये या अधिक की प्रदत्त पूंजी हो, तथा
   (b) एक हजार या अधिक लघु अंशधारी हो, उस कम्पनी में लघु अंशधारियों का एक संचालक हो सकता है। ऐसा संचालक निर्धारित की गई विधि से चुना जायेगा।
2. अन्य किसी भी कम्पनी में कम से कम दो संचालक होने आवश्यक है। (धारा 252)

II. संख्या में वृद्वि या कमी :–कोई कम्पनी अपनी साधारण सभा में साधारण प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियमों की सीमाओं के भीतर संचालकों की संख्या में वृद्धि या कमी कर सकती है। (धारा 258)

यदि कोई सार्वजनिक कम्पनी संचालकों की संख्या में अन्तर्नियमों के अधीन निर्धारित अधिकतम संख्या से अधिक वृद्वि करती है तो उसके लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है, अन्यथा ऐसी वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं होता है। कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1965 के अनुसार यह भी व्यवस्था है कि यदि निर्धारित अधिकतम संख्या 12 या उससे कम है तब यदि वृद्वि करने पर कुल संख्या 12 से अधिक नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है। (धारा 259)

संचालकों द्वारा धारित पदों की संख्या

संचालकों द्वारा धारित पदो के संम्बन्ध मे प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार है–

1. **अधिकतम कम्पनियों की संख्या** :– कोई भी व्यक्ति एक समय में 15 से अधिक कम्पनियों में संचालक के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। (2000 में संशोधित धारा 275)
2. **पन्द्रह से अधिक कम्पनियों के संचालक द्वारा चयन करना –** यदि कोई व्यक्ति कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 के लागू होने से पहले ही 15 से अधिक कम्पनियों में संचालक है तो उसे इस अधिनियम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के लागू होने के दो माह मे उन 15 कम्पनियों का चयन करना होगा जिसमे वह संचालक बने रहना चाहता है। शेष कम्पनियों से उसे पद त्याग करना होगा। इस प्रकार इस अधिनियम के प्रभावी होने के दो माह बाद कोई व्यक्ति 15 से अधिक कम्पनियों में संचालक नहीं बना रह सकेगा।(धारा 276)

3. **पन्द्रह से अधिक कम्पनियों में संचालक बन जाने पर चयन करना–** यदि कोई व्यक्ति पहले से ही 15 कम्पनियों में संचालक है तथा कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 के लागू होने के बाद वह किसी अन्य कम्पनी में भी संचालक के रूप में चुन लिया जाता है तो ऐसी दशा में उसे अन्य कम्पनी में संचालक चुन लिये जाने के 15 दिनों के भीतर किसी एक कम्पनी से संचालक पद छोड़ना पड़ेगा। अतिरिक्त संचालक पद छोड़ने के बाद से ही नये पद की नियुक्ति प्रभावशाली हुई मानी जावेगी। यदि वह इस 15 दिन की अवधि में अन्य किसी कम्पनी के संचालक पद से त्यागपत्र नही देता है तो अन्य कम्पनी में हुई उसकी नियुक्ति व्यर्थ हो जायेगी। (2000 में संशोधित धारा 277)

4. **चौदह या कम कम्पनियों में संचालक होने परः–** यदि कोई व्यक्ति पहले से ही 14 या कम कम्पनियों मे संचालक है तथा कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 2000 के लागू होने के बाद कुछ अन्य कम्पनियों में संचालक नियुक्त कर दिया जाता है और उसके पास 15 से अधिक कम्पनियों में संचालक पद हो जाते है तो उसे कुल 15 कम्पनियों का चयन करना होगा।(2000 में संशोधित धारा 277(2))

5. **कम्पनियों की गणनाः–** संचालक पद के लिए 15 कम्पनियों की गणना करते समय निम्नलिखित कम्पनियों में धारित संचालक पदों को सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

   (i) स्वतंत्र निजी कम्पनी में धारित पद

   (ii) असीमित कम्पनियों में धारित पद

   (iii) ऐसी कम्पनियों मे धारित पद जिनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है अथवा लाभाशं वितरण पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है।

   (iv) ऐसी कम्पनियाँ जिनमें वैकल्पिक संचालक के रूप में कार्य कर रहा है (धारा 278 (1))

   (v) विदेशी कम्पनियों में धारित संचालक पद

6. **अर्थदण्ड –** यदि कोई व्यक्ति इस धारा के प्रावधानों के विरूद्व 15 से अधिक कम्पनियों में संचालक पद स्वीकार करता है तो प्रत्येक अतिरिक्ति कम्पनियों के संचालक पद के लिए पचास हजार रूपये का जुर्माना किया जा सकता है। (2000 में संशोधित धारा 279)

संचालकों की नियुक्ति

कम्पनी के प्रारम्भ के समय ही संचालकों की नियुक्ति कर देनी चाहिये क्योंकि संचालकों के अभाव में कोई कम्पनी सामान्य परिस्थितियों में भी सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकती। संचालकों की नियुक्ति करना कम्पनी की इच्छा पर निर्भर नही है वरन् उसे कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्धारित न्यूनतम संख्या में संचालक नियुक्त करने ही होते है। इस प्रकार कम्पनियों में संचालकों की नियुक्ति करना आवश्यक हो जाता है।

संचालकों की नियुक्ति की विधियाँ –

सचांलको की नियुक्ति के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम में वर्णित व्यवस्थाएँ अग्रलिखित है –

I प्रथम संचालकों की नियुक्ति –कम्पनी के प्रथम संचालको की नियुक्ति के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ इस प्रकार है–

1. अन्तर्नियमों में नाम – कम्पनी के प्रथम संचालकों की नियुक्ति प्रायः इसके प्रवर्तकों द्वारा की जाती है। इस विधि के अर्न्तगत प्रवर्तक कम्पनी के समामेलन के समय रजिस्ट्रार के कार्यालय में जो अन्तर्नियम प्रस्तुत करते है, उनमें प्रथम संचालकों के नाम लिख देते है और ये व्यक्ति ही कम्पनी के प्रथम संचालक कहलाते है।

2. सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ता – यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों का

– रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

– उसमें संचालकों के नाम नही दिये गये है,

– उसमें प्रथम संचालक नियुक्ति करने की विधि नही दी गयी है,

तो ऐसी स्थिति में सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति ही कम्पनी के प्रथम संचालक मानें जायेगे।

यदि सीमानियम पर हस्ताक्षरकर्त्ता अधिक है अथवा यदि हस्ताक्षरकर्त्ता उचित समझते है तो वे बहुमत द्वारा अपनों में से ही प्रथम संचालकों की नियुक्ति कर सकते है।

3. हस्ताक्षरकर्त्ता समामेलित संस्थाएँ होने पर– यदि कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षरकर्त्ताओं में समामेलित संस्थाएँ है तो कम्पनी का कोई संचालक नहीं माना जायेगा जब तक कि संचालकों की नियुक्ति धारा 255 के अनुसार अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार नही हो जाती है।

4. प्रथम संचालकों का कार्यकाल – प्रथम संचालकों का कार्यकाल उस समय तक रहता है जब तक कि कम्पनी की साधारण सभा में संचालकों की नियुक्ति नहीं की जाती है। यद्यपि प्रथम संचालकों को इस सभा में पुनः नियुक्ति किया जा सकता है।

II. सदस्यों द्वारा साधारण सभा में नियुक्ति – प्रवर्तकों द्वारा नियुक्ति किये गये प्रथम संचालकों की अवधि कम्पनी की प्रथम वार्षिक साधारण सभा तक होती है। तत्पश्चात् कम्पनी के नये संचालकों की नियुक्ति कम्पनी के सदस्यों द्वारा कम्पनी की प्रथम वार्षिक साधारण सभा में की जाती है क्योंकि संचालकों का चुनाव सदस्यों का प्रथम एवे महत्वपूर्ण कार्य है। अतः वे इस पद्वति द्वारा कम्पनी का सुचारू रूप से संचालन करने हेतु अपने संचालक नियुक्त करते है।

सदस्यों द्वारा नियुक्त संचालकों के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ इस प्रकार है –

1. पारी से अवकाश ग्रहण करना – कुल संचालकों की संख्या के 2/3 संचालकों में से 1/3 संचांलक प्रतिवर्ष पारी से अवकाश ग्रहण करेंगे (1/3 स्थायी संचालक होते है)। (धारा 256(1))
2. सबसे पहले नियुक्ति संचालक सबसे पहले अवकाश ग्रहण करेगा। (धारा 256(2))
3. रिक्त पद भरना(पारी से अवकाश ग्रहण करने के कारण रिक्त पद) (धारा 256(3))
4. अवकाश ग्रहण करने वाले संचालकों को ही संचालक मानना (पुनः नियुक्त)(धारा 256(4))
5. अन्य व्यक्ति को भी संचालक पद पर खड़े होने का अधिकार। (धारा 257(1))
6. संचालकों की लिखित सहमति कम्पनी को देना। (धारा 264(1))
7. संचालक होने की सहमति नियुक्ति के 30 दिन के भीतर रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना। (धारा 264(2))

III. संचालक मण्डल द्वारा संचालकों की नियुक्ति – कम्पनी अधिनियम में कुछ परिस्थितियों में संचालक मण्डल को भी संचालक नियुक्त करने का अधिकार है, किन्तु संचालक मण्डल को ऐसे अधिकार केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब कि कम्पनी के अन्तर्नियमों में उन्हें अधिकृत किया हो। अतः यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऐसी व्यवस्था हो तो निम्नलिखित संचालकों की नियुक्ति की जा सकती है।

1. यदि आवश्यक हो तो अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने पर **अतिरिक्त संचालकों की नियुक्ति** (धारा 260)।
2. संचालक की मृत्यु, त्यागपत्र, समय से पूर्व सेवा समाप्ति अथवा अयोग्यता के कारण **आकस्मिक रूप से रिक्त स्थान पर संचालक की नियुक्ति** (धारा 262)।
3. **वैकल्पिक संचालक की नियुक्ति–** कम्पनी का कोई मूल संचालक उस राज्य से जिसमें संचालक मण्डल की सभाएँ सामान्यतः की जाती है, कम से कम तीन माह अथवा अधिक अवधि के लिए बाहर गया हुआ हो। (धारा 313)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

IV. **तीसरे पक्षकारों द्वारा नियुक्ति –** कम्पनी के अर्न्तनियमों द्वारा अधिकृत होने पर तीसरे पक्षकारों को भी कम्पनी में एक अथवा अधिक संचालकों को नियुक्त करने का अधिकार दिया जा सकता है। निम्नलिखित पक्षकारों को तीसरे पक्षकारों की श्रेणी में सम्मलित किया जा सकता है –

– ऋणपत्र धारी।

– सम्पत्ति विक्रेता।

– बैक अथवा वित्तीय संस्था।

– राज्य सरकार।

V. **केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति –** कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1988 द्वारा संशोधित धारा 408 के अनुसार कम्पनी, जनता अथवा अंशधारियों के हितों की प्रभावकारी ढंग से सुरक्षा करने के लिए केन्द्रीय सरकार अधिकरण के आदेश से किसी भी कम्पनी में संचालक नियुक्त कर सकती है।

अधिकरण केन्द्रीय सरकार को किसी कम्पनी में संचालक नियुक्त करने का आदेश तभी देता है, जबकि –

1. केन्द्रीय सरकार ने इसको कोई अन्याय का मामला भेजा हो, अथवा
2. कम्पनी को कम से कम 100 सदस्यों ने इस हेतु उसे प्रार्थना पत्र दिया हो, अथवा
3. कुल मतशक्ति के 1/10 वें भाग पर अधिकार रखने वाले सदस्यों ने इस हेतु प्रार्थना पत्र दिया हो।

VI. आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर संचालकों की नियुक्ति– यदि कम्पनी के अर्न्तनियमों में ऐसी व्यवस्था है तो धारा 265 के अधीन संचालकों की नियुक्ति आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा की जा सकती है। तथा केन्द्रीय सरकार के आदेश पर भी कम्पनी को आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर संचालक नियुक्त करने पड़ते है।

इस प्रकार की नियुक्ति का मूल उद्देश्य अल्पसंख्यक अंशधारियों की रक्षा करने के लिए एवं संचालक मण्डल में उनके प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करना है। यद्यपि संचालकों की ऐसी नियुक्ति अनिवार्य नहीं है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर संचालकों की नियुक्ति तीन वर्ष में एक बार होती है।

आनुपातिक प्रतिनिधत्व प्रणाली के आधार पर संचालकों की नियुक्ति की दो विधियां है :

1. **एकल हस्तान्तरणीय मत प्रणाली**

इस प्रणाली में मतदाता अपनी प्राथमिकता अथवा पसन्दता क्रम में सभी प्रत्याशियों को क्रम निर्धारित करके मत देता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत मतदाता को मत–पत्र दिया जाता है और उसे प्रत्येक प्रत्याशी के नाम के समक्ष अपना प्राथमिकता अथवा पसन्दगी या वरीयता क्रम लिखने के लिए कहा जाता है मतदाता क्रमशः अपना प्राथमिकता या पसन्दगी 1,2,3,.....आदि संख्याएं प्रत्याशियों के नाम के सामने लिखकर निर्धारित कर देता है।

मतगणना करने से पूर्व प्रत्याशियों की जीत के लिए एक निश्चित मतसंख्या, जिसे कोटा कहते है, इस कोटा को निर्धारित करने का सूत्र इस प्रकार है–

$$\text{कोटा} = \frac{\text{कुल मतदान}}{\text{पदो कीसंख्या} + 1}$$

जो सदस्य कोटा द्वारा निर्धारित मत प्राप्त कर लेते है, वे चुने हुए संचालक माने जाते हैं।

2. **संचयी मत प्रणाली -** इस प्रणाली के अन्तर्गत एक अंशधारी को एक अंश पर उतने ही मत देने का अधिकार होता है जितने स्थानों के लिए चुनाव हो रहा है। उदाहरण के लिये एक कम्पनी में चार संचालको का चुनाव किया जा रहा है तथा इस अंशधारी के पास 100 अंश है। वह एक व्यक्ति के पक्ष में ही (100X4) 400 मत देने का अधिकार रखता है। ऐसा करने से अल्पमत वाले अंशधारी कम से कम अपना एक संचालक नियुक्त करवाने में अवश्य सफल हो जाते है।

संचालकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(Restrictions on the Appointment of Directors)

भारतीय कम्पनी अधिनियम में अनेक व्यवस्थाओं के अधीन संचालकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाये गये है, जो इस प्रकार है :–

1. **केवल एकाकी व्यक्ति को ही संचालक नियुक्त करना :–** कोई भी कम्पनी किसी एकाकी व्यक्ति को ही संचालक के रूप में नियुक्त कर सकती है। किसी भी समामेलित संस्था या फर्म को संचालक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है। (धारा 253)

2. **संचालक पहचान नम्बर धारक की ही नियुक्ति :–** प्रत्येक कम्पनी केवल ऐसे व्यक्ति को ही संचालक के रूप में नियुक्ति या पुनः नियुक्त करेगी जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालक पहचान नम्बर आबंटित कर दिया है। **(कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 2006)**

   जिन व्यक्तियों की संचालक के रूप में नियुक्ति इस संशोधन अधिनियम, 2006 के लागू होने से पूर्व ही हो चुकी है, उन्हें इस अधिनियम के लागू होने के 60 दिनों के भीतर केन्द्रीय सरकार को संचालक पहचान नम्बर (DIN) के लिए आवेदन करना पड़ेगा। केन्द्रीय सरकार आवेदन प्राप्त होने के एक माह के भीतर पहचान नम्बर आबंटित कर देगी। **(कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2006 द्वारा जोड़ी गयी धारा 266A)**

3. **संचालक के रूप में नाम देने पर प्रतिबन्ध :–** किसी भी व्यक्ति का नाम कम्पनी के प्रविवरण में संचालक या प्रस्तावित संचालक के रूप में तब तक नहीं दिया जा सकता है जब तक कि उसने अथवा उसके अधिकृत एजेण्ट ने निम्नलिखित शर्तों को पूरा नहीं कर दिया हो :

   (i) संचालक के रूप में कार्य करने के लिए अपनी लिखित एवं हस्ताक्षरयुक्त सहमति रजिस्ट्रार के सम्मुख प्रस्तुत कर दी हो तथा

   (ii) अपने योग्यता अंशों, यदि कोई हों तो, के सम्बन्ध में सीमानियम पर हस्ताक्षर कर दिये हों अथवा योग्यता अंश ले लिये हैं तथा उनका भुगतान कर दिया है। (धारा 266)

4. **अन्तर्नियमों द्वारा नियुक्ति नहीं :–** किसी भी व्यक्ति को अन्तर्नियमों द्वारा संचालक के रूप में नियुक्त नही किया जा सकता है। [धारा 266(1)]

5. **अयोग्यता का न होना :–** निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति कम्पनी के संचालक नहीं बन सकेगें :

   (i) यदि वह **अस्वस्थ मस्तिष्क** का है।

   (ii) यदि वह **अमुक्त दिवालिया** है।

   (iii) यदि उसने **दिवालिया घोषित** होने के लिए आवेदन कर दिया है।

   (iv) यदि उसे **नैतिक अपराध** के लिए कम से कम छः माह की सजा मिली हो तथा ऐसी सजा को पूरी हुए पाँच वर्ष पूरे नहीं हुए हों।

   (v) ऐसा व्यक्ति जिसने **याचना राशि** का भुगतान नहीं किया हो तथा ऐसी याचना राशि के भुगतान करने की अन्तिम तिथि को छः महीने पूरे न हो गये हों।

   (vi) कोई ऐसा व्यक्ति जिसको न्यायालय द्वारा कम्पनी के साथ **कपट अथवा कर्त्तव्य भंग करने** के कारण [धारा 203 के अन्तर्गत] संचालक बनने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया हो तथा न्यायालय ने उसकी नियुक्ति के लिए अनुमति नहीं दी हो। [धारा 274(1)]

   किन्तु केन्द्रीय सरकार राजकीय बजट में अधिसूचना जारी करके **निम्न अयोग्यतोओं को दूर कर** सकती हैः

   (i) नैतिक अपराध के लिए कारावास की अयोग्यता तथा

   (ii) याचना राशि के भुगतान में त्रुटि की अयोग्यता। [धारा 274 (2)]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अयोग्यता सम्बन्धी उपर्युक्त सभी प्रावधान सार्वजनिक, निजी तथा सभी सहायक कम्पनियों पर लागू होते है। किन्तु कोई स्वतन्त्र निजी कम्पनी चाहे तो संचालकों की अयोग्यता के ओर अधिक आधार तय कर सकती है। सार्वजनिक कम्पनियों तथा उसकी सहायक कम्पनियों को अयोग्यता के आधारों को बढ़ाने की छूट नहीं है। [धारा 274(3)]

6. दोषी कम्पनियों का संचालक :– जो कम्पनी निम्नांकित के लिए दोषी है, उसका संचालक पुनः उस कम्पनी का संचालक नहीं बन सकता है :

(i) जिस कम्पनी ने एक अप्रैल 1999 से या उसके बाद के किन्हीं **तीन निरन्तर वर्षों के वार्षिक लेखे तथा विवरणियाँ** प्रस्तुत नहीं की है, अथवा

(ii) जिस कम्पनी ने जमाओं तथा उन पर ब्याज के भुगतान परिपक्वता पर नहीं किया है और ऐसा दोष एक या अधिक वर्षों से जारी है, अथवा

(iii) जिस कम्पनी ने परिपक्वता ऋणपत्रों का भुगतान नहीं किया है और ऐसा दोष एक या अधिक वर्षों से जारी है, अथवा

(iv) जिस कम्पनी ने घोषणा के बाद लाभांश का भुगतान नहीं किया है और ऐसा दोष एक या अधिक वर्षों से जारी है।

उपर्युक्त प्रकार से **दोषी कम्पनी का कोई भी संचालक पाँच वर्षों तक किसी भी अन्य कम्पनी का संचालक भी नियुक्त नहीं किया जा सकेगा। [कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 द्वारा जोड़ी गई धारा 274(g)]**

7. निर्धारित संख्या से अधिक कम्पनियों का संचालक – कोई भी व्यक्ति जो पहले ही 15 कम्पनियों का संचालक है तो वह किसी भी अन्य कम्पनी (16वीं) के संचालक रूप में तभी कार्य कर सकता है जबकि वह अपनी ऐसी (16 वीं कम्पनी में) नियुक्ति के 15 दिन के भीतर किसी अन्य कम्पनी में संचालक पद का परित्याग कर देता है। [धारा 276 तथा 277]

8. नामांकन की सूचना :– कोई भी व्यक्ति (जो संचालक पद से निवृत्त हो रहा है उसको छोड़कर) जो कम्पनी के संचालक पद के लिए उम्मीदवार बनना चाहता है, उसे स्वयं को अथवा उसके अधिकृत प्रतिनिधि को कम्पनी की सामान्य सभा के कम से कम 14 दिन पूर्व अपने उम्मीदवारी की सूचना कम्पनी के कार्यालय में प्रस्तुत कर देनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति ऐसी सूचना यथासम्भव नहीं देता है तो वह व्यक्ति संचालक पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। [धारा 257]

संचालक पद का रिक्त होना

कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार निम्नलिखित दशाओं में से किसी भी दशा में संचालक का पद रिक्त हुआ माना जता है (धारा 283)

1. **योग्यता अंश न लेने पर** :– यदि कोई संचालक अपनी नियुक्ति के दो माह के भीतर अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार योग्यता अंश नहीं लेता है तो उस संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है।
2. **अस्वस्थ मस्तिष्क का घोषित किया जाना –** यदि किसी संचालक को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा अस्वस्थ मस्तिष्क का घोषित कर दिया जाता है तो ऐसे संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है।
3. **दिवालियेपन का प्रार्थना–पत्र देना –** यदि कोई संचालक अपने आप को दिवालिया घोषित करवाने के लिए न्यायालय में प्रार्थना–पत्र देता है तो ऐसे संचालक का भी पद रिक्त हुआ माना जाता है।
4. **दिवालिया घोषित किया जाना –** यदि किसी संचालक को न्यायालय ने दिवालिया घोषित कर दिया है तो उस आदेश की तिथि के तीस दिन बाद से उस संचालक का भी पद रिक्त हुआ माना जाता है।
5. **नैतिक अपराध का दोषी –** यदि किसी संचालक को नैतिक अपराध का दोषी पाया गया है और उसे इसके लिए कम से कम छः माह की सजा दी गई है तो ऐसे संचालक का पद भी स्वतः रिक्त हुआ माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **याचना राशि के भुगतान में त्रुटि होने पर –** यदि कोई संचालक अपने द्वारा एकाकी अथवा संयुक्त नाम में धारित अंशो की याचना राशि के भुगतान करने की अन्तिम तिथि के छः महीनों में भुगतान करने में असमर्थ रहता है तो उसका संचालक पद भी स्वतः रिक्त हो जाता है। किन्तु **केन्द्रीय सरकार चाहे तो राजकीय गजट में विज्ञप्ति प्रकाशित करके ऐसी अयोग्यता को समाप्त कर सकती है।**

7. **संचालक मण्डल की लगातार तीन सभाओं में अनुपस्थित होने पर –** यदि कोई संचालक 'संचालक मण्डल' की अनुमति के बिना संचालक मण्डल की लगातार तीन सभाओं में अथवा लगातार तीन महीनों में हुई सभाओं में, जो भी अवधि लम्बी हो, में अनुपस्थित रहता है तो उसके बाद संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है।

   इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई संचालक बीमारी के कारण अनुपस्थित रहता है तो उस संचालक का पद रिक्त हुआ नहीं माना जाता है।

8. **ऋण लेने या प्रतिभूति देने पर –** यदि कोई संचालक केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना [धारा 294 के विरूद्ध] कम्पनी से ऋण लेता है अथवा कोई फर्म जिसमे वह साझेदार है अथवा वह कम्पनी जिसमें वह संचालक है, कम्पनी से ऋण लेती है अथवा ऋण के लिए गारण्टी या जमानत प्राप्त करती है, तो ऐसी दशा में उस संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है।

9. **हित प्रकट न करने पर –** यदि कोई संचालक कम्पनी द्वारा किये गये अनुबन्धों में निहित अपने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष हित को संचालक मण्डल के समक्ष [धारा 299 के अनुसार] प्रकट नहीं करता है तो ऐसे संचालक का पद भी स्वतः रिक्त हो जाता है।

10. **कपटपूर्ण कार्यों के लिए दोषी होने पर –** यदि किसी संचालक को कम्पनी के प्रवर्तन, निर्माण, प्रबन्ध आदि के कार्यों मे दोषी ठहरा दिया जाता है अथवा कम्पनी के समापन के समय कपट का दोषी पाया जाता है तो ऐसे संचालक का पद स्वतः रिक्त हो जाता है।

11. **पद से हटा देने पर –** यदि कोई कम्पनी एक साधारण प्रस्ताव पारित करके किसी संचालक को उसके पद से हटा दे [धारा 284 (1) के अन्तर्गत] तो ऐसे हटाये गये संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है।

12. **पद या नौकरी समाप्त होने पर :–** यदि किसी व्यक्ति को संचालक इसलिए नियुक्त किया गया है कि वह कम्पनी में किसी पद पर बैठा हुआ है अथवा कम्पनी में नौकरी कर रहा है तो ऐसी दशा में ज्यों ही वह पद या नौकरी समाप्त होगी, उसका संचालक पद रिक्त हुआ जाना जावेगा। [धारा 283 (1)]

धारा 283 की उपर्युक्त व्यवस्थाओं के अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम की अन्य धाराओं के अन्तर्गत भी अनेक परिस्थितियों में संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है, वे परिस्थितियाँ निम्नानुसार हैः

13. **कम्पनी में लाभ का पद बिना सहमति के प्राप्त करने पर–** यदि किसी कम्पनी का कोई संचालक अथवा उसका साझेदार अथवा सम्बन्धी अथवा कोई निजी कम्पनी जिसका वह संचालक है, अथवा ऐसी निजी कम्पनी का संचालक या प्रबन्धक उस कम्पनी की पूर्व सहमति के बिना उसमें 500 रू. या इससे अधिक के मासिक लाभ का पद स्वीकार करता है तो उस संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है। कम्पनी की सहमति विशेष प्रस्ताव द्वारा प्राप्त की जाती है। धारा [314(2)]

14. **मूल संचालक के लौट आने पर –** यदि किसी संचालक के राज्य के बाहर जाने के कारण किसी वैकल्पिक संचालक की नियुक्ति की जाती है तो उस मूल संचालक के लौटकर आने पर वैकल्पिक संचालक का कार्यकाल स्वतः समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि मूल संचालक के लौटकर आने से पहले ही मूल संचालक की नियुक्ति की अवधि समाप्त हो जाती है तो वैकल्पिक संचालक की नियुक्ति भी उसी समय समाप्त समझी जाती है। [धारा 313]

15. **वार्षिक सामान्य सभा होने पर अतिरिक्त संचालक पद की रिक्तता–** यदि कम्पनी के संचालक मण्डल ने कोई अतिरिक्त संचालक नियुक्त किया है तो कम्पनी की आगामी सामान्य सभा होने पर अतिरिक्त संचालक पद स्वतः समाप्त हो जाता है। [धारा 260] यदि किन्हीं कारणों से वार्षिक सामान्य सभा देरी से होती है तो भी उनका पद उसी तिथि को रिक्त हो जाता है, जिस तिथि को यह सामान्य सभा हो जानी चाहिए थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16. **अवधि समाप्त होने पर–** यदि किसी संचालक की नियुक्ति की अवधि समाप्त हो जाती है अथवा पारी से निवृत्त होने का समय आ जाता है तो उस संचालक का पद रिक्त हुआ माना जायेगा। संचालकों की नियुक्ति वार्षिक सामान्य सभा में ही होती हैं। अतः पद भी सामान्यतः अगली किसी सामान्य सभा की तिथि को ही समाप्त होता है। किन्तु यदि किसी कारण सभा समय पर नहीं हो पाती है तो भी उस संचालक का पद उसी समय समाप्त हुआ माना जायेगा। जिस तिथि को वार्षिक सामान्य सभा हो जानी चाहिए थी।

17. **अन्य परिस्थितियों द्वारा –** कोई भी **स्वतन्त्र निजी कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में व्यवस्था कर के कुछ ऐसे आधार या** परिस्थितियाँ तय कर सकती हैं, जिनके उत्पन्न होने पर संचालक का पद रिक्त हुआ माना जाता है। [धारा 283 (3)]

उपर्युक्त वर्णित सभी परिस्थितियों में संचालक पद स्वतः रिक्त हुआ माना जाता है। यदि किसी संचालक को यह ज्ञात हो जाता है कि उसका पद रिक्त हो गया है फिर भी वह उस पद पर कार्य करता है तो उसके पद रिक्त होने की तिथि से उस पर पाँच हजार रूपये प्रतिदिन का जुर्माना किया जा सकता है जब तक कि वह उस पद पर कार्य करता रहता है।

[2000 में संशोधित धारा 283 (2A)]

संचालक द्वारा त्यागपत्र
(Resignation by Director)

कोई भी संचालक कम्पनी के अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार ही त्यागपत्र प्रस्तुत करके अपने पद से मुक्त हो सकता है। किन्तु यदि अन्तर्नियमों में कोई व्यवस्था न दे रखी हो तो कम्पनी को उचित सूचना देकर किसी भी समय संचालक अपना त्यागपत्र दे सकता है।

जब कोई व्यक्ति अपने संचालक पद का त्याग करना चाहता है तो उसे कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय पर इस आशय की लिखित सूचना भेजनी चाहिए। किन्तु यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में कोई विपरीत व्यवस्था न हो तो संचालक कम्पनी की साधारण सभा में **मौखिक रूप** से भी अपना पद त्याग सकता है। [Latchford Premier Cinema v. Ennion (1932)]

कम्पनी किसी संचालक द्वारा दिये गये त्यागपत्र को स्वीकार कर सकती है अथवा पुनर्विचार के लिए संचालक से निवेदन भी कर सकती है। किन्तु, कोई भी संचालक अपने **त्यागपत्र को कम्पनी की बिना आज्ञा के वापस नहीं ले सकता है।** [Glossop v. Glossop (1907)]

इनके अतिरिक्त जब तक अन्तर्नियमों में कोई व्यवस्था न हो तो यह भी माना जाता है कि **जिस तिथि को उसने त्यागपत्र दिया था उसी तिथि से उसका कम्पनी से पद त्याग हो गया है। इसके लिए संचालक मण्डल अथवा कम्पनी की साधारण सभा की स्वीकृति की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है।**

प्रश्न बोध

1. कम्पनी के संचालक की परिभाषा दीजिए। एक कम्पनी में संचालकों की संख्या सम्बन्धी प्रावधान बताइये।
2. ''कम्पनी के संचालक केवल एजेन्ट ही नही वरन् वे प्रन्यासियों की स्थिति में है'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. एक कम्पनी संचालकों की स्थिति की विवेचना कीजिए।
4. एक कम्पनी में संचालकों की नियुक्ति किस प्रकार होती है। समझाइयें।
5. संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम के अधीन क्या–क्या प्रतिबन्ध है ?
6. संचालकों के पद रिक्त होने के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय–द्वितीय
ऋण लेने का अधिकार
(Borrowing Powers)

कम्पनी केवल अंश पूंजी से ही अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण भी लेने पड़ते है। सामान्यतः कम्पनी के सीमानियम में ऋण लेने का स्पष्ट अधिकार होता है एवं इस अधिकार के प्रयोग की विधि कम्पनी के अन्तर्नियम में होती है।

ऋण का तात्पर्य ऋण पत्र जारी करके या अन्य किसी तरीके से ब्याज या बिना ब्याज के धन उधार लेने तक ही सीमित नहीं है। कच्चा माल, मशीनरी अन्य सामग्री आदि के मूल्य का भुगतान बाद में करने का समझौता करना भी ऋण लेने के समान है।

ऋण लेने के अधिकार सम्बन्धी प्रावधान
(Provision regarding right of Borrowing)

कम्पनियों को ऋण लेने का अधिकार होता है, किन्तु उनकी भी कुछ सीमाएँ है। उन पर कुछ प्रतिबन्ध है, जो निम्नानुसार है –

1. **व्यापारिक कम्पनियों को गर्भित अधिकार** – प्रत्येक व्यापारिक कम्पनी को ऋण प्राप्त करने का गर्भित अधिकार होता है, चाहे उसके सीमानियम तथा अन्तर्नियमों में स्पष्ट अधिकार न दिया गया हो। ऐसी कम्पनियाँ अपने मूल एवं सहायक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋण प्राप्त करने का गर्भित अधिकार रखती है।

   यदि अन्तर्नियमों या सीमानियम के अन्तर्गत कम्पनी के संचालकों के इस अधिकार पर निषेध लगा दिया गया हो तो संचालक मण्डल ऋण प्राप्त करने के अधिकार का उपयोग नहीं कर सकते हैं।

2. **गैर व्यापारिक कम्पनियों को ऋण लेने का गर्भित अधिकार नहीं – गैर व्यापारिक कम्पनियाँ** वे होती हैं जिनका उद्देश्य धर्म, कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि के लिए कार्य करना तथा प्राप्त लाभों को उन्हीं उद्देश्यों के लिए खर्च करना होता है। ऐसी कम्पनियाँ तब तक धन उधार नहीं ले सकती हैं जब तक कि इनके सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा इन्हें धन उधार लेने का स्पष्ट अधिकार ही न दिया गया हो। इन कम्पनियों को जिस सीमा तक ऋण लेने का अधिकार स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है, उसी सीमा तक ये कम्पनियाँ ऋण प्राप्त कर सकती हैं।

3. **ऋण की वैधानिक सीमा**– किसी भी सार्वजनिक कम्पनी तथा उसकी सहायक निजी कम्पनी का संचालक मण्डल अधिक से अधिक **अपनी प्रदत्त पूँजी एवं अपने स्वतंत्र संचयों के बराबर तक** (कम्पनी के बैंकों से प्राप्त अस्थायी ऋणों के अतिरिक्त) ऋण ले सकता है। इन ऋणों की गणना करते समय कम्पनी पर अब तक के बकाया ऋणों को भी जोड़ा जायेगा। संचालक मण्डल इस सीमा से अधिक ऋण तभी प्राप्त कर सकता है जबकि कम्पनी की साधारण सभा ने इस हेतु आवश्यक प्रस्ताव पारित करके संचालक मण्डल को इस हेतु अधिकृत कर दिया हो। [धारा 293(1)]

   किन्तु, इस सीमा से अधिक दिया गया ऋण तभी वैध होगा जबकि ऋणदाता यह सिद्ध कर दे कि (i) उसने यह ऋण सद्भावना से दिया था, तथा (ii) उसे इस बात की जानकारी नही थी कि कम्पनी ने इस वैधानिक सीमा को पार कर लिया था। [धारा 293(5)]

4. **सीमानियम एवं अन्तर्नियमों द्वारा निर्धारित ऋण सीमा** – प्रत्येक व्यापारिक कम्पनी को ऋण लेने का गर्भित अधिकार होता है चाहे उसके सीमानियम एवं अन्तर्नियम में ऐसी कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं हो। किन्तु, यदि सीमानियम या अन्तर्नियम द्वारा ऋण लेने की सीमा निर्धारित कर दी गई है तो संचालक मण्डल इससे अधिक ऋण नहीं ले सकता है।

5. **अस्थायी ऋणों में सम्मिलित नहीं** –अस्थायी या अल्पकालीन ऋण या मांग पर देय ऋण जो छः माह की अवधि के भीतर देय हों, उन्हें ऋणों में सम्मिलित नहीं किया जाता है। ऐसे ऋण बिलों को भुनाकर, नकद, साख खाता खोलकर प्राप्त किये जा सकते है। ऐसे ऋणों का उपयोग कार्यशील पूँजी के लिए ही किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाना चाहिए न कि पूँजीगत खर्चों की पूर्ति के लिए। ऐसे ऋणों की राशि को ऋण प्राप्त करने की वैधानिक सीमा में नहीं जोड़ा जाता है। [स्पष्टीकरण–II धारा 293(1)]

6. **ऋण प्राप्ति के अधिकार के उपयोग का समय** – कोई भी कम्पनी ऋण प्राप्ति के अधिकार का उपयोग तभी कर सकती है, जबकि उसे व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण पत्र प्राप्त हो गया हो। [धारा 149] किन्तु **एक निजी कम्पनी अपना समामेलन का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद** से ही ऋण प्राप्त करने के अधिकार का उपयोग कर सकती है।

7. **प्रतिभूति या जमानत देने का अधिकार** – कम्पनी ऋण प्राप्त करने के लिए अपनी वर्तमान एवं भावी सम्पत्तियों को गिरवी या बन्धक भी रख सकती है। जमानत पर किन–किन सम्पत्तियों को रखा जा सकता है, यह अन्तर्नियमों द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। किन्तु सामान्यतः कम्पनी अपने स्वत्वाधिकारों, पुस्तकीय ऋण, ख्याति, पेटेन्ट अधिकारो, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, सम्पत्ति आदि की जमानत पर ऋण प्राप्त कर सकती है। कम्पनी अपनी **अयाचित पूँजी** पर भी प्रभार उत्पन्न करके ऋण प्राप्त कर सकती है यदि कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा यह स्पष्ट या गर्भित अधिकार दिया गया हो।

8. **कुछ सम्पत्तियों को जमानत पर नहीं रखना** – निम्न कुछ ऐसी सम्पत्तियाँ हैं जिन्हे जमानत पर रखकर ऋण प्राप्त नहीं किया जा सकता।

   (i) यदि सीमानियम में अयाचित पूँजी को जमानत पर रखने पर प्रतिबन्ध लगाया है अथवा जमानत रखने योग्य सम्पत्तियों की सूची में नहीं रखा गया है।

   (ii) आरक्षित पूँजी पर,

   (iii) गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों की गारण्टी की राशि पर।

9. **ऋण लेने के अधिकारी** – कम्पनी के लिए ऋण प्राप्त करने का गर्भित अधिकार केवल संचालक मण्डल को ही होता हैं। किन्तु यदि सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों द्वारा निषिद्ध नहीं किया गया है तो संचालक मण्डल ऋण लेने के अधिकार का प्रत्यायोजन अपने किसी एजेण्ट को भी कर सकते हैं।

अधिकारों के बाहर ऋण लेना

अधिकारों के बाहर ऋण से तात्पर्य ऐसे ऋण से है जो कम्पनी के अधिकारों की सीमा के बाहर जाकर लिया गया हो। कम्पनी की ऋण प्राप्ति की अधिकार–सीमा कम्पनी अधिनियम में निर्धारित की गई है जिसे कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्ताव पारित करके बढ़ाया जा सकता है। कम्पनी के सीमानियम एवं अन्तर्नियमों में व्यवस्था करके भी कम्पनी की अधिकार–सीमा को निर्धारित किया जा सकता है। इन सीमाओं के बाहर जाकर लिया गया ऋण अधिकारों के बाहर कहलाता है।

कई बार कम्पनी को तो ऋण प्राप्ति का अधिकार होता है किन्तु उस अधिकार को संचालकों को दिया हुआ नहीं होता है। ऐसी दशा में यदि संचालक अपने अधिकारों की सीमा के बाहर जाकर ऋण लेते हैं तो यह संचालकों के अधिकारों के बाहर ऋण कहलाता है। यदि संचालक कम्पनी की अधिकार सीमा के बाहर जाकर ऋण प्राप्त करते है तो उसके **निम्नलिखित परिणाम हो सकते है।**

1. **सीमानियम के बाहर ऋण अनाधिकृत एवं व्यर्थ** – कम्पनी के सीमानियम की सीमा के बाहर लिये गये ऋण अनाधिकृत ऋण कहलाते है तथा ऐसे अनुबन्ध व्यर्थ होते है। परिणामस्वरूप ऐसे ऋण देने वाले व्यक्ति का कम्पनी के विरूद्ध वैधानिक एवं न्यायिक कोई अधिकार नहीं होता है।

2. **कम्पनी के विरूद्ध कोई वाद नही** – कम्पनी के अधिकारों के बाहर के ऋणों के लिए ऋणदाता कम्पनी पर कोई वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

3. **कम्पनी द्वारा दी गई जमानत प्रभावहीन** – यदि कम्पनी के संचालकों ने कम्पनी के सीमानियम एवं अन्तर्नियमों के बाहर ऋण लिया है और उस ऋण के लिये कोई सम्पत्ति जमानत के रूप में रखी है तो ऋणदाता उस सम्पत्ति पर जमानती अधिकार प्राप्त नही करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऋण लेनें की विधियाँ
[Methods of Borrowing]

जिस कम्पनी को ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है वह निम्नलिखित विधियों में से किसी भी विधि के द्वारा ऋण ले सकती है।

1. बैंक अधिविकर्ष द्वारा,
2. सम्पत्तियों को बन्धक रखकर,
3. स्वत्त्व प्रलेखों पर बन्धक रखकर,
4. अयाचित पूँजी पर प्रभार द्वारा,
5. पुस्तकीय ऋणों पर प्रभार द्वारा,
6. ख्याति, पेटेन्ट, व्यापारिक चिन्ह, कापीराईट आदि पर प्रभार द्वारा,
7. विनिमय साध्य विलेखों के आधार पर,
8. ऋण पत्रों के निर्गमन द्वारा,
9. जनता से निक्षेप द्वारा,
10. याचित लेकिन अदत्त भागों के प्रभार पर,
11. बैकों से नकद उधार प्राप्त करके।

ऋण पत्र [Debentures]

आशय– ऋण पत्र कम्पनी द्वारा दिया गया एक प्रलेख होता है, जो इस बात का प्रमाण होता है कि उसके धारक ने उस प्रलेख में उल्लेखित ऋण कम्पनी को दिया है।

परिभाषाएँ –

न्यायाधीश चेट्टी के अनुसार – ''ऋण पत्र का आशय एक ऐसे प्रलेख से होता है जो या तो ऋण का सृजन करता है, अथवा ऋण को स्वीकार करता है।''

पॉमर के अनुसार – ऋण पत्र का आशय (कम्पनी की) सार्वमुद्रा के अधीन निर्गमित ऐसे प्रलेख से है जिसका मूल सार ऋणग्रस्तता की स्वीकृति देना है।

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 2(12) के अनुसार ''ऋण पत्र में ऋण पत्र, स्कन्ध, बॉण्ड तथा कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियाँ सम्मिलित है चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करती हो या नहीं।''

इस प्रकार ऋण पत्र कम्पनी द्वारा लिये गये ऋण के बदले में ऋणदाता को दिया जाने वाला प्रलेख है। इस प्रलेख पर कम्पनी की सार्वमुद्रा अंकित होती है एवं इसमें ऋण की राशि, ब्याज की दर, ऋण भुगतान की शर्ते एवं अन्य शर्तो का उल्लेख होता है।

ऋण पत्र की विशेषताएँ –

1. यह एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी की **सार्वमुद्रा** के अन्तर्गत निर्गमित किया जाता है।
2. इसके द्वारा यह प्रमाणित किया जाता है कि कम्पनी उस पर उल्लेखित राशि के लिये ऋणी है।
3. इस प्रलेख में **ब्याज की दर तथा ब्याज के भुगतान** के समय का भी उल्लेख होता है।
4. यदि ऋण पत्र **विमोचनशील है तो मूलधन के वापिस लौटाने** की विधि का भी उल्लेख होता हैं।
5. ये प्रायः कम्पनी की सम्पत्ति को **प्रभारित** करते है परन्तु ऐसा होना भी अनिवार्य नहीं है। ऋण पत्र बिना प्रभार वाले भी हो सकते है।
6. ये प्रायः **श्रृखला** में निर्गमित किये जाते है किन्तु यह भी अनिवार्य नहीं है।
7. ऋण पत्र कम्पनी तथा ऋणदाता के **बीच एक अनुबन्ध** होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. ऋणपत्रधारियों **को मत देने का अधिकार नही होता है।** अतः वे प्रबन्ध में हिस्सा नही ले सकते है।

9. ऋणपत्र कम्पनियों द्वारा निर्गमित एक प्रमाण–पत्र होता है जो कम्पनी की ऋणग्रस्तता की अभिस्वीकृति होता है।

10. ऋणपत्र पर मुद्रांक शुल्क लगता है।

ऋणपत्रों के प्रकार

ऋण पत्र कई प्रकार के होते है। एक कम्पनी निम्नलिखित में से किसी भी प्रकार के ऋणपत्र निर्गमित कर सकती है:–

1. **रजिस्टर्ड ऋण पत्र**– रजिस्टर्ड ऋण पत्र वे ऋणपत्र हैं जिनके धारक का नाम कम्पनी के ऋणपत्रों के रजिस्टर में लिखा जाता है। ऐसे ऋण पत्र का वैध धारक वही व्यक्ति होता है जिसका नाम ऋण पत्र तथा ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर में लिखा होता है। ऐसे ऋण पत्र का अन्तरण भी अधिनियम द्वारा निर्धारित विधि का पालन करके किया जा सकता है। रजिस्टर्ड ऋण पत्र पर ऋण पत्र की राशि तथा ब्याज के भुगतान का वचन दिया होता हैं। यदि ऋण पत्र के लिये सम्पत्तियों पर प्रभार भी है तो उसका भी उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार रजिस्टर्ड ऋण पत्र में निम्न लिखित बातों का उल्लेख किया जाता हैं:

   (i) मूल ऋण राशि के भुगतान का वचन।
   (ii) ब्याज के भुगतान का वचन
   (iii) यदि ऋण पत्र के लिये किसी सम्पत्ति पर प्रभार है तो उसका उल्लेख।
   (iv) ऋण पत्र की शर्तो का संक्षिप्त लेख तथा अन्य शर्तो का संन्दर्भ

2. **वाहक ऋणपत्र** – वाहक ऋणपत्र से आशय ऐसे ऋणपत्र से है जिन्हें केवल सुपुर्दगी द्वारा ही हस्तान्तरित किया जा सकता है। इनके वैध अन्तरण के लिए कम्पनी के कार्यालय में रजिस्ट्रेशन कराने की कोई आवश्यकता नही है। रजिस्टर्ड ऋणपत्रों में तो ब्याज उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसका नाम कम्पनी के कार्यालय में अंकित है परन्तु वाहक ऋणपत्रों में ब्याज उस व्यक्ति को दिया जाता है, जो उसका धारक है। ब्याज के सुगम भुगतान के लिये वाहक ऋणपत्रों के साथ कूपन लगा दिये जाते है। ब्याज की देय तिथि पर या उसके पश्चात् धारक इन कूपनों को किसी बैंक के जरिये कम्पनी के बैंक में भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है तथा कम्पनी का बैंक ऐसे कूपनों का भुगतान कर देता है। परिपक्वता पर इसके वाहक को ही इसका भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होता है।

3. **बन्धक या सुरक्षित ऋणपत्र** – बन्धक या सुरक्षित ऋणपत्रों से आशय ऐसे ऋणपत्रों से है जिनके धारकों के पास कम्पनी की कोई सम्पत्ति जमानत के रूप में है। ऐसी सम्पत्ति पर इस प्रकार के ऋणपत्रों का प्रभार होता है। कम्पनी द्वारा इन ऋणपत्रों का भुगतान न होने की अवस्था में वे इस सम्पत्ति को बेचकर अपने ऋण का भुगतान प्राप्त कर सकते हैं।

4. **गैर–जमानती या असुरक्षित ऋण–पत्र**– गैर जमानती या असुरक्षित ऋणपत्रों से आशय ऐसे ऋणपत्रों से है, जिनके पास कोई सम्पत्ति जमानत के रूप में नहीं है। ऐसे ऋणपत्रों का मूलधन तथा ब्याज असुरक्षित रहता है।

5. **परिवर्तनीय ऋण पत्र**– ऋणपत्र परिवर्तनीय भी हो सकते है। इन ऋणपत्रों की शर्तो के अनुसार एक निश्चित अवधि के बाद ऋण की राशि को समता अंशो में परिवर्तित कर दिया जाता है। कभी–कभी ऋण पत्र अंशतः परिवर्तनशील भी होते है। ऐसे ऋणपत्रों का एक निर्धारित भाग निर्धारित अवधि के बाद समता अंशो में परिवर्तन कर दिया जाता हैं तथा शेष भाग का बाद में कभी भी (पूर्व निर्धारित अवधि के अनुसार) भुगतान करके शोधन कर दिया जाता है। भारत में ऐसे ऋण पत्र अधिक प्रचलित है।

6. **अपरिवर्तनीय ऋण पत्र**– ऐसे ऋण पत्र जिसको अंशो में परिवर्तन का अधिकार प्रदान नही किया जाता है। अपरिवर्तनशील ऋण पत्र कहलाते है।

7. **शोध्य ऋण पत्र** – ये इस प्रकार के ऋण पत्र है जिनका भुगतान एक निश्चित अवधि के पश्चात् कर दिया जायेगा। कम्पनियों द्वारा अधिकतर इसी प्रकार के ऋण पत्र निर्गमित किये जाते है। इन्हें ही अपरिवर्तनीय शोध्य ऋणपत्र के नाम से भी जाना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **अशोध्य ऋणपत्र या चिरस्थायी ऋणपत्र** – अशोध्य ऋणपत्र से आशय ऐसे ऋणपत्रों से है जिनका भुगतान कम्पनी के जीवन काल में नहीं किया जा सकता या जिनका भुगतान किसी दूर की आकस्मिक घटना के घटित होने पर या किसी लम्बी अवधि के बीतने पर ही किया जावेगा।

9. **प्रथम ऋणपत्र** – जिन ऋणपत्रों का भुगतान अन्य ऋणपत्रों की अपेक्षा प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है उन्हें प्रथम ऋणपत्र कहते है। ऐसे ऋणपत्र शोधित कर देने के बाद पुनः निर्गमित भी किये जा सकते है।

10. **द्वितीय ऋणपत्र** – जिन ऋणपत्रों का भुगतान प्रथम ऋणपत्रों के भुगतान के बाद किया जाता हैं, द्वितीय ऋणपत्र कहलाते है।

ऋणपत्रों के निर्गमन से सम्बन्धित प्रावधान

ऋणपत्रों के निर्गमन के सम्बन्ध में भी कुछ कानूनी प्रावधान हैं। अतः उन प्रावधानों का पालन करते हुए ऋणपत्रों का निर्गमन करना चाहिए।

1. **ऋणपत्र निर्गमन का अधिकार – ऋणपत्रों के** निर्गमन का अधिकार कम्पनी के संचालक मण्डल को होता है। कम्पनी ऋणपत्रो का निर्गमन तभी कर सकती है जबकि कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऋणपत्रों के निर्गमन की व्यवस्था हो। यदि ऐसी व्यवस्था नहीं है तो सर्वप्रथम अन्तर्नियमों में परिवर्तन करके व्यवस्था करनी चाहिए।

2. **बट्टे पर निर्गमन** – यदि अन्तर्नियमों में कोई अन्यथा व्यवस्था न हो तो **ऋणपत्रों को बट्टे पर** भी जारी किया जा सकता है। [धारा 129] किन्तु सममूल्य पर समता अंशों में परिवर्तनीय ऋणपत्रों को बट्टे पर निर्गमित नहीं किया सकता है। ऐसा करना समता अंशो का बट्टे पर निर्गमन ही माना जाता है। अतः ऐसे ऋणपत्रों के निर्गमन के पूर्व धारा 79 के प्रावधानों का पालन अनिवार्य हो जाता है।

   ऋणपत्रों को बट्टे पर निर्गमित करने पर कम्पनी को इसकी सूचना रजिस्ट्रार को देनी पड़ती है। इस सूचना में ब्याज दर, बट्टे की दर, कमीशन आदि का विवरण भी देना पड़ता है। [धारा 129]

3. **संचालक मण्डल की सभा में प्रस्ताव पारित करना–** संचालक मण्डल की सभा में ऋणपत्र जारी करने का प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव में ऋणपत्रों की संख्या, राशि, अंकित मूल्य, परिवर्तनीय भाग, ब्याज की दर, ब्याज भुगतान की अवधि आदि को भी सम्मिलित करना चाहिए।

4. **यदि आवश्यक हो तो, साधारण सभा में प्रस्ताव पारित करना–** संचालक अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर चुकता पूँजी तथा मुक्त संचयों की राशि के बराबर तक ऋण प्राप्त कर सकते है। यदि जारी किये जाने वाले ऋणपत्रों के कारण ऋणपत्रों की राशि इन दोनों के योग से बढ़ सकती हो तो कम्पनी की साधारण सभी में एक विशेष प्रस्ताव पारित करना पड़ता है। इस प्रस्ताव द्वारा बढ़ाई गई सीमा तक ऋण पत्र जारी किये जा सकते है।

5. **ऋणपत्रों का 'रेटिंग करना'** – यदि कम्पनी अठारह महीनों से अधिक अवधि के बाद शोधनीय ऋणपत्रों का निर्गमन कर रही है तो उसे उनका किसी मान्यता प्राप्त संस्था (CRISIL OR CARE आदि) से रेटिंग भी करना होता है। इसी 'रेटिंग' का उल्लेख प्रविवरण में भी करना होता है। [सेबी की मार्गदर्शक बातें]

6. **प्रविवरण का पंजीयन** – यदि कम्पनी जनता को ऋणपत्रों के क्रय के लिए आमन्त्रित कर रही है तो उसे प्रविवरण को कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास पंजीयन करवा लेना चाहिए। [धारा 60] यदि कम्पनी जनता को आमन्त्रित नहीं कर रही है और संचालक अपने मित्रों, सम्बन्धियों को ही ऋणपत्रों का आबंटन करना चाहते है तो ऐसे आबंटन से कम से कम तीन दिन पूर्व तक एक स्थानापन्न प्रविवरण रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत करना चाहिए। [धारा 70] इससे पूर्व उसकी **'सेबी'** से जांच भी करवा लेनी चाहिए।

7. **मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में आवेदन**– यदि कोई कम्पनी प्रविवरण जारी करके जनता को ऋणपत्र जारी करना चाहती है तो प्रविवरण जारी करने से पूर्व किसी एक या अधिक स्कन्ध विनिमय केन्द्रो में ऋणपत्रों के लेन–देन की अनुमति के लिए आवेदन करना चाहिये। बिना इससे प्राप्त अनुमति के इनका आबंटन व्यर्थ माना जायेगा। [धारा 72 (1)]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **ऋण प्रमाण–पत्र को तैयार करना** – ऋणपत्रों के आबंटन के तीन महीनों के भीतर ऋण प्रमाणपत्र सुपुर्द कर देने चाहिये। ऋणपत्र प्रमाणपत्र के सम्बन्ध में वे सभी प्रावधान लागू होते है जो अंश प्रमाणपत्रों पर लागू होते है।

9. **प्रभार का विवरण प्रस्तुत करना** – यदि ऋणपत्र कम्पनी पर प्रभार उत्पन्न करते है तो प्रभार विलेखों के तैयार होने पर उनका पंजीयन 30 दिनों के भीतर कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास करवाना आवश्यक है।

10. **ऋणपत्रधारियों के रजिस्ट्रर में लेखा करना–** प्रत्येक ऋणपत्र के सम्बन्ध में आवश्यक लेखे ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर में ऋणपत्रों के आबन्टन के पश्चात् किये जाने चाहिए। प्रत्येक कम्पनी अपने ऋणपत्रधारियों के लिए एक या अधिक रजिस्टर रखती हैं जिनमें निम्नलिखित सूचनाएँ लिखती है–

    (i) ऋणपत्रधारियों के नाम, पते और पेशा।

    (ii) प्रत्येक धारक के ऋणपत्रों की संख्या।

    (iii) वह तिथि जिस पर प्रत्येक व्यक्ति का नाम ऋणपत्रधारी की तरह रजिस्टर में लिखा गया था।

    (iv) वह तिथि जिस पर व्यक्ति का ऋणपत्रधारी होना समाप्त होता है।

11. **ऋणपत्रधारियों की अनुक्रमणिका** – यदि ऋणपत्रधारियों की संख्या 50 से अधिक है तो ऋणपत्रधारियों की एक अनुक्रमणिका भी तैयार करनी होती है। इस अनुक्रमणिका को ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर के साथ उपलब्ध रखना पड़ता है। [धारा 152 (2)]

12. **मताधिकार नहीं** – कोई भी कम्पनी अब मताधिकार वाले ऋणपत्र जारी नही कर सकती है। [धारा 117] दूसरे शब्दों में, कोई भी ऋणपत्रधारी कम्पनी की किसी भी सभा में होने वाले मतदान में भाग नही ले सकता है।

13. **प्रन्यासियों का दायित्व** – प्रन्यासियों का दायित्व है कि वे अपना कार्य पूर्ण दक्षता एवं ईमानदारी से करें। यदि कर्त्तव्य भंग की दशा में उनके दायित्व से मुक्ति देने का प्रन्यास विलेख में कोई प्रावधान किया जाता है तो वह व्यर्थ एवं प्रभावहीन होगा। [धारा 119]

14. **ऋणपत्र के क्रय के अनुबन्ध का निष्पादन** – यदि किसी व्यक्ति ने कम्पनी के ऋणपत्रों के क्रय तथा भुगतान करने का अनुबन्ध किया है तो उसका विशिष्ट निष्पादन करवाया जा सकेगा। [धारा 122]

प्रश्न बोध –

1. ऋण पत्र किसे कहते है। ऋण पत्र की विशेषताएं बताइयें।
2. क्या ऋण पत्र का बट्टे पर निर्गमित किया जा सकता है। समझाइयें।
3. कम्पनी के ऋण प्राप्त करने के अधिकार के सम्बन्ध में कानूनी प्रावधान बताइयें।
4. ऋण पत्र कितने प्रकार के होते है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. अधिकारों के बाद ऋण लेने के परिणामों की विवेचना कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय–तृतीय
सदस्य [Members]

आशय– सामान्य अर्थ में, किसी कम्पनी के अंशो के धारक या स्वामी को कम्पनी का सदस्य समझा जाता है। किन्तु वैधानिक दृष्टि से सदस्य का यह अर्थ उपयुक्त नहीं है। क्योंकि यदि किसी व्यक्ति के द्वारा कम्पनी के अंशो को ग्रहण करने के बावजूद भी उसका नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्ट्रर में अंकित न हो तो वह सदस्य नहीं माना जायेगा।

अतः कम्पनी के सदस्य वे व्यक्ति होते है जो उसके अंशो के धारक है और जिनका नाम कम्पनी के सदस्य रजिस्टर में दर्ज हैं।

परिभाषा–कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 41 के अन्तर्गत सदस्य को निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः–

धारा 41(1) के अनुसार – ''कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति कम्पनी के सदस्य माने जाते है तथा कम्पनी के रजिस्ट्रेशन के पश्चात् सदस्यों के रजिस्टर में उनका नाम सदस्यों की तरह लिखा जाता है।''

धारा 41(2) के अनुसार, '' वह प्रत्येक व्यक्ति जो कम्पनी का सदस्य बनने की लिखित में सहमति देता है तथा जिसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में लिखा जाता है, कम्पनी का सदस्य होता हैं।''

धारा 41(3) के अनुसार, किसी भी कम्पनी की साधारण अंश पूँजी का प्रत्येक धारक जिसका नाम अंश निक्षेपधारी संस्था के अभिलेखों में हितधारी स्वामी के रूप में लिखा हुआ है– वह कम्पनी का सदस्य माना जायेगा।

धारा 266 के अनुसार, '' यदि किसी व्यक्ति ने कम्पनी में संचालक बनने की लिखित सहमति एवं योग्यता अंश लेने का लिखित में वचन दे दिया है तो ऐसा व्यक्ति भी कम्पनी का सदस्य माना जायेगा।

इस प्रकार कम्पनी के सदस्यों से तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यक्ति से जिसका नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में सदस्य के रूप में अथवा डिपोजिटरी के अभिलेखों में किसी कम्पनी के समता अंशो के हितधारी स्वामी के रूप में लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त जिसने कम्पनी का संचालक बनने तथा योग्यता अंश लेने की लिखित सहमति दे दी है तो वह भी कम्पनी का सदस्य ही माना जाता है।

सदस्य तथा अंशधारी में अन्तर

सामान्यतः कम्पनी का सदस्य' एवं कम्पनी का अंशधारी एक ही माने जाते है और एक–दूसरे के स्थान पर प्रयोग में ला सकते है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी एक वाद में निर्णय देते हुए कहा है कि आयकर अधिनियम एवं अन्य आय सम्बन्धी मामले में कम्पनी सदस्यों एवं अंशधारी में कोई अन्तर नही है। अतः एक शब्द को दूसरे के लिये प्रयोग में लाये जा सकते है। परन्तु कम्पनी अधिनियम के संदर्भ में सदस्य तथा अंशधारी में अग्रलिखित अन्तर किये जा सकते है।

क.स.	अन्तर का आधार	सदस्य	अंशधारी
1.	पंजीकृत अंशधारी सदस्य	कम्पनी के प्रत्येक पंजीकृत सदस्य का अंशधारी होना आवश्यक नही है।	कम्पनी का प्रत्येक पंजीकृत अंशधारी कम्पनी का सदस्य होता हैं
2.	अंशपूँजी पर निर्भरता	सदस्य प्रत्येक कम्पनी में होते हैं चाहे अंश पूँजी हो अथवा नही।	कम्पनी में अंशधारी तभी होते है, जबकि कम्पनी में अंश पूँजी हो।
3	अंश	अंश अधिपत्रधारी कम्पनी के सदस्य नहीं होते है जब तक अन्तर्नियमों में ऐसी	अंश अधिपत्रधारी कम्पनी के अंशधारी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	अधिपत्रधारी	व्यवस्था न हो।	होते है।
4.	अंशो के बिना सदस्यता	एक अंश पूँजी वाली कम्पनी में कोई भी व्यक्ति अंशो के बिना भी सदस्य बन सकता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति ने अपने अंश बेच दिये है किन्तु अन्तरण की कार्यवाही पूरी नहीं हुई है इस प्रकार ऐसा विक्रेता बिना अंशो के भी कम्पनी का सदस्य बना रहता है।	कोई भी व्यक्ति कम्पनी का पंजीकृत अंशधारी तभी बनता है, जबकि अंश उसके नाम में अन्तरित कर दिये गये हों।
5	मृतक या दिवालिया व्यक्ति	किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर अथवा दिवालिया होने पर भी वह कम्पनी का सदस्य तब तक बना रहता है जब तक कि अंशो के पारेषण या अन्तरण की कार्यवाही पूरी नहीं हो जाती है।	कोई मृतक अथवा दिवालिया व्यक्ति कम्पनी का अंशधारी नहीं होता है।
6.	प्रदर्शन का प्रभाव	जब कोई भी व्यक्ति अपने आपको किसी तीसरे पक्षकार के सामने कम्पनी के सदस्य के रूप में प्रदर्शित करता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति को यह प्रदर्शित करने का अवसर देता है तो उस व्यक्ति को कम्पनी के सदस्य के रूप में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।	जबकि ऐसा प्रदर्शन करने से कोई व्यक्ति कम्पनी का अंशधारी नहीं बन जाता है।
7.	सभाओं के सम्बन्ध में अधिकार	कम्पनी के सभी सदस्यों को कम्पनी की सभाओं के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से सूचना प्राप्त करने, सभाओं में उपस्थित होने तथा मतदान करने आदि का अधिकार होता है।	सभी अंशधारियों को व्यक्तिगत रूप से सूचनाएँ प्राप्त करने, सभाओं में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। उदाहरण के लिए अंश अधिपत्रधारी को सभी सूचनाएँ समाचारपत्रों के माध्यम से दी जाती है, व्यक्तिगत रूप से नहीं।
8.	सदस्यों के रजिस्टर में नाम	प्रत्येक सदस्य का नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में लिखा होता है।	प्रत्येक अंशधारी का नाम सदस्यों के रजिस्टर में होना आवश्यक नहीं है।
9.	लाभाशं	प्रत्येक सदस्य को लाभांश प्राप्त हो, यह आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ, गारण्टी द्वारा सीमित बिना अंश पूँजी वाली कम्पनी के सदस्यों को कभी भी लाभांश प्राप्त नहीं होता हैं।	प्रत्येक अंशधारी (अंश अधिपत्रधारी सहित) को लाभांश की घोषणा होने पर लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है।
10.	न्यायालय के आदेश से सदस्यता	न्यायालय किसी भी व्यक्ति को कम्पनी के सदस्य के रूप में उत्तरदायी ठहराने का आदेश दे सकता है।	न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अपने आदेश से अंशधारी नही बना सकता है।

कम्पनी का सदस्य कौन बन सकता है ?

सामान्यतः प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसमें अनुबन्ध करने की क्षमता होती है, वह कम्पनी का सदस्य बन सकता हैं। किन्तु यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा किसी प्रकार के व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह की सदस्यता पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिबन्ध लगा रखा है तो वे व्यक्ति या समूह कम्पनी के सदस्य नहीं बनाये जा सकते है। सामान्यतः निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति कम्पनी के सदस्य बनाये जा सकते है।

1. **अनुबन्ध करने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति** – प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है, कम्पनी का सदस्य बन सकता है। दूसरे शब्दो मे, एक वयस्क, स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसे राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं किया गया है, कम्पनी का सदस्य बन सकता है।

2. **अवयस्क** – अवयस्क के सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते महत्वपूर्ण है –

   (i) अवयस्क अनुबन्ध करने के अयोग्य है, अतः वह कम्पनी का सदस्य नहीं बन सकता है।

   (ii) अवयस्क को पूर्णदत्त अंश देकर सदस्य बनाया जा सकता है, क्योंकि पूर्णदत्त अंशो पर कोई दायित्व शेष नही रहता।

   (iii) कुमारी नन्दिता जैन बनाम बेनेट कोलमेन एण्ड कम्पनी के विवाद में निर्णय देते हुए धारित किया गया कि उत्तराधिकार के परिणामस्वरूप एक अवयस्क भी अपनी पैतृक अंश पूँजी प्राप्त करके कम्पनी की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

3. **विदेशी व्यक्ति**– विदेशी व्यक्ति भी कम्पनी की सदस्यता प्राप्त कर सकते है। यदि देश के राजनियम तथा कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा विदेशियों की सदस्यता पर प्रतिबन्ध नहीं लगा हो। हमारे देश के कानून के अनुसार विदेशी व्यक्ति भारतीय कम्पनियों के अंशधारी बन सकते है। परन्तु उस विदेशी नागरिक का सभाओं की सूचना प्राप्त करने का अधिकार तथा मतदान करने का अधिकार उस समय समाप्त कर दिया जाता है जबकि उस देश के नागरिक को शत्रु घोषित कर दिया जाता है।

4. **अनिवासी व्यक्ति**– यदि भारत का कोई नागरिक भारत का निवासी नही है तो वह भारत में समामेलित किसी भी कम्पनी का तब तक सदस्य नहीं बन सकता है जब तक कि भारतीय रिजर्व बैंक की उसे आज्ञा प्राप्त नहीं हो जाती है। कोई भी कम्पनी ऐसे व्यक्ति को अंशो का आबण्टन या अन्तरण देश के कानून यथा 'फेमा' [Foreign Exchange Management Act] के प्रावधानों के अनुसार ही कर सकती है।

5. **कम्पनी**– कोई भी कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी के अंश खरीद कर सदस्य बन सकती है यदि उस कम्पनी के सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था दे रखी हो। इसी प्रकार कोई भी कम्पनी किसी अन्य कम्पनी से समझौता या व्यवस्था करते समय भी अंश स्वीकार कर सकती है।

6. **सहायक कम्पनी** –किसी भी सहायक कम्पनी को उसका सूत्रधारी कम्पनी के अंश आबंटित नही किये जा सकते है। परिणामस्वरूप, कोई सहायक कम्पनी अपनी सूत्रधारी कम्पनी की सदस्य भी नहीं बन सकती है। किन्तु, निम्नांकित **अपवादजनक** परिस्थितियों में एक सहायक कम्पनी अपनी सूत्रधारी कम्पनी की अंशधारी तथा सदस्य बन सकती है–

   (i) जब सहायक कम्पनी किसी मृतक अंशधारी की वैधानिक प्रतिनिधि हो।

   (ii) जब सहायक कम्पनी सूत्रधारी कम्पनी के अंशो की प्रन्यासी हो। किन्तु, उस सूत्रधारी तथा सहायक कम्पनी का उस प्रन्यास में कोई हित नहीं होना चाहिये।

   (iii) जब सहायक कम्पनी को ऐसे अंशो का आबण्टन या अन्तरण किसी ऐसे सौदे की गारण्टी के लिए किया गया हो जो सामान्य व्यापारिक प्रक्रिया में किया गया है।

   (iv) जब कोई सहायक कम्पनी इस अधिनियम के लागू होने के पहले से ही अपनी सूत्रधारी कम्पनी की सदस्य हो। किन्तु, ऐसी दशा में सहायक कम्पनी को सूत्रधारी कम्पनी की सभा में मतदान का अधिकार नहीं होगा। [धारा 42]

7. **संयुक्त हिन्दु परिवार** – किसी भी संयुक्त हिन्दु परिवार का कर्त्ता अपने नाम से किसी भी कम्पनी के अंश खरीद सकता है। तदनुसार परिवार का कर्ता कम्पनी का सदस्य बन सकता है तथा सदस्यों के रजिस्ट्रर में उसका नाम संयुक्त हिन्दु परिवार के कर्ता के रूप में ही लिखा जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **साझेदारी फर्म** – कोई भी साझेदारी फर्म सामान्यतः किसी भी कम्पनी की सदस्य नहीं बन सकती है। इसका कारण यह है कि साझेदारों को साझेदारी फर्म से पृथक अस्तित्व नहीं होता है। किन्तु, सभी साझेदार मिलकर संयुक्त नाम में कम्पनी के अंश खरीद सकते हैं। ऐसी दशा में सभी साझेदार कम्पनी के संयुक्त अंशधारी माने जाते है। किन्तु, धारा 25 के अधीन स्थापित कम्पनी (कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि के विकास के लिए स्थापित कम्पनी) में साझेदारी फर्म भी सदस्य हो सकती है। इसी आधार पर स्टॉक एक्सचेन्ज में फर्मे सदस्य बन सकती है।

9. **संयुक्त अंशधारी** – संयुक्त अंशधारी के सम्बन्ध में नियम कम्पनी के अन्तर्नियमों में दिये हुए होते है। सार्वजनिक कम्पनी में प्रत्येक अंशधारी एक सदस्य होता है। यदि कम्पनी द्वारा संयुक्त धारको को कोई सूचना अथवा प्रलेख भेजना है तो सदस्यों के रजिस्टर में जिस संयुक्त धारक का नाम पहले लिखा हुआ है उसे सूचना अथवा प्रलेख भेजने से ही यह मान लिया जायेगा कि शेष समस्त संयुक्त धारकों को यह भेज दिया गया है।

10. **विवाहित स्त्री** – कोई भी विवाहित–स्त्री अपने निजी धन से कम्पनी के अंश खरीदती है तो वह कम्पनी की अंशधारी तथा सदस्य बन सकती हैं

11. **प्रन्यासी** – यदि कोई व्यक्ति (प्रन्यासी) किसी अन्य व्यक्ति की ओर से अंश अपने नाम से खरीदता है तो ऐसा व्यक्ति (प्रन्यासी) ही कम्पनी का सदस्य माना जाता है। जिस व्यक्ति की ओर से अंश खरीदे जाते है अथवा धारित किये गये है, कम्पनी उसको सदस्य नहीं मानती है और न उसको सदस्य के रूप में उत्तरदायी ही ठहरा सकती है। सदस्यों के रजिस्टर में केवल अंशधारी (प्रन्यासी) का नाम लिखा जाता है।

12. **सहकारी समिति** – कोई भी सहकारी समिति जो पंजीकृत है तथा जिसका अपने सदस्यों से पृथक् अस्तित्व है, कम्पनी की सदस्य बन सकती है। इस हेतु समिति के नियमों में प्रावधान होना आवश्यक है।

13. **पंजीकृत समिति** – कोई भी पंजीकृत समिति (Societies Registration Act, 1860 के अन्तर्गत) किसी भी कम्पनी के अंश खरीद सकती है तथा सदस्य बन सकती है यदि उसके नियम तथा उपनियम उसे ऐसा करने का अधिकार देते हो।

14. **दिवालिया** – कोई भी दिवालिया व्यक्ति कम्पनी का सदस्य तब तक बना रहता है जब तक कि उसका नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में लिखा हुआ है। परन्तु उसके लाभदायी हित राजकीय प्रापक को हस्तान्तरित हो जाते है।

15. **काल्पनिक व्यक्ति** – यदि कोई व्यक्ति कृत्रिम नाम से अंशो को क्रय करने के लिए आवेदन करता है और अंश उसके नाम पर आबंटित कर दिए जाते है तो वह कम्पनी का सदस्य माना जाएगा तथा उसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में लिख दिया जाता है और वह ही समस्त दायित्वों के लिए उत्तरदायी होगा। यदि कोई व्यक्ति कृत्रिम नाम से अंश खरीदता है तो ऐसा मालूम हो जाने पर ऐसे व्यक्ति को 5 वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया जाता सकता है।

16. **अंशो की बन्धकी** – यदि किसी व्यक्ति ने कम्पनी को उसके अंशो के बन्धक पर ऋण दिया हो तो ऐसी दशा में वह ऋणदाता (बन्धकी) उन अंशो का धारक तथा कम्पनी का सदस्य माना जायेगा।

सदस्य बनने की विधियाँ
[Methods of Becoming a Member]

कम्पनी में सदस्य बनने या सदस्यता प्राप्त करने की अनेक विधियाँ है। इनमें से किसी भी विधि से एक व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बन सकता है। प्रमुख विधियाँ अग्रलिखित है :–

1. **सीमानियम पर हस्ताक्षर करके** – कम्पनी के समामेलन के लिए प्रत्येक कम्पनी को सीमानियम का निर्माण करना पड़ता है। इस सीमानियम पर सार्वजनिक कम्पनी की दशा में कम से कम सात तथा निजी कम्पनी की दशा में कम से कम दो व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने आवश्यक होते है। जो व्यक्ति इस सीमानियम पर हस्ताक्षर करते हैं वे कम्पनी के सदस्य बन जाते है। ऐसे सदस्यों को कम्पनी के प्रारम्भिक या संस्थापक अथवा वैधानिक सदस्य के नाम से भी जाना जाता है।

   पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति कम्पनी के समामेलन की तिथि से ही कम्पनी के सदस्य माने जाते है। कम्पनी का समामेलन होते ही इनका नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में लिख दिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाता हैं। यदि किसी कारणवश ऐसे व्यक्ति का नाम सदस्यों के रजिस्टर में नही लिखा जाता है अथवा लिखने से रह जाता है तो भी वह कम्पनी का सदस्य माना जाता है।

2. **अंशो के आवेदन तथा आंबटन द्वारा** – प्रत्येक व्यक्ति जो कम्पनी के अंश खरीदने के लिए लिखित में आवेदन करता है वह कम्पनी का सदस्य बनने के लिए सहमत होता है। उसे अंश आबंटित होने के बाद उसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में अथवा डिपोजिटरी के अभिलेखो में लिखा जाता है। तब वह कम्पनी का सदस्य बन जाता है। यदि कम्पनी किसी व्यक्ति को अंश आबंटित नहीं करती है तो वह कम्पनी का सदस्य नहीं बन सकता है।

3. **अंशो के हस्तान्तरण द्वारा** – यदि कम्पनी का कोई अंशधारी अपने अंशो का किसी अन्य व्यक्ति को विक्रय कर देता है तो ऐसा क्रेता कम्पनी का सदस्य बन सकता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि क्रेता तभी सदस्य बनेगा जबकि अंशो के अन्तरण का पंजीयन उसके नाम हो जायेगा। अंशों के अन्तरण की कार्यवाही पूरी होने पर ही पहले वाले सदस्य (विक्रेता) के नाम को हटाकर नये सदस्य (क्रेता) का नाम सदस्यों के रजिस्टर में लिखा जाता है। क्रेता उसी तिथि से कम्पनी का सदस्य माना जाता है।

4. **अंशो के पारेषण अथवा हस्ताकंन द्वारा** – जब अंशो का अन्तरण परिस्थितियों तथा कानूनी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत होता है, उसे अंशो का पारेषण कहते हैं। जब अंशो के धारक की मृत्यु हो जाती है अथवा अंशो का धारक पागल हो जाता है तो अंशधारी के अंश उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को हस्तान्तरित किये जाते है। इसे ही कानूनी भाषा में अंशो का पारेषण कहते हैं। अंशो के पारेषण से भी उत्तराधिकारी कम्पनी का सदस्य बन जाता है और अंशो के मूल सदस्य के नाम के स्थान पर उत्तराधिकारी का नाम सदस्यों के रजिस्टर में लिख दिया जाता है और मूल सदस्य का नाम हटा दिया जाता है।

5. **गत्यावरोध अथवा प्रदर्शन द्वारा सदस्यता** – यदि कोई व्यक्ति कम्पनी का सदस्य नहीं है किन्तु किसी अन्य व्यक्तियों के सामने ऐसा आचरण करता है जिससे उन अन्य व्यक्तियों को ऐसा विश्वास करने का अवसर मिलता है कि वह व्यक्ति कम्पनी का सदस्य है तो वे अन्य व्यक्ति उस व्यक्ति को कम्पनी के सदस्य के रूप में उत्तरदायी ठहरा सकते है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित प्रकार के आचरण की दशा में कोई भी व्यक्ति कम्पनी का सदस्य माना जाता है:

   (i) यदि वह व्यक्ति सदस्य बने बिना ही अपना नाम सदस्यों के रजिस्टर या डिपोजिटरी के अभिलेखों में लिखा रहने देता है; अथवा

   (ii) यदि वह व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के समक्ष कम्पनी का सदस्य होने का प्रदर्शन करता है; अथवा

   (iii) यदि वह व्यक्ति अपने आपको कम्पनी का सदस्य प्रदर्शित करने का दूसरे को अवसर देता है।

6. **कम्पनी के संचालक बनने की सहमति द्वारा** – यदि कोई व्यक्ति कम्पनी का संचालक बनने की सहमति देता है तथा योग्यता अंश लेने तथा उनका भुगतान करने का वचन देता है तो वह व्यक्ति कम्पनी का सदस्य माना जाता है। इस व्यक्ति को भी कम्पनी के सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों की श्रेणी में माना जाता है। [धारा 266] स्पष्ट है कि ऐसा व्यक्ति भी संचालक बनने की सहमति देने तथा **योग्यता अंश लेने का वचन देने के बाद** से ही कम्पनी का सदस्य माना जाने लगता है।

7. **अंश अधिपत्र का समर्पण करके** – कोई भी अंश अधिपत्रधारी कम्पनी का सदस्य नहीं होता है। इसका कारण यह है कि ज्योंही अंश प्रमाण पत्र के बदले अंश अधिपत्र जारी किया जाता है त्योंही उस अंश प्रमाणपत्रधारी का नाम सदस्यों के रजिस्टर में से हटा दिया जाता है।

   परन्तु यदि कोई अंश अधिपत्रधारी कम्पनी का सदस्य बनना चाहता है तो वह अपने अंश अधिपत्र का कम्पनी को समर्पण करके कम्पनी का सदस्य बन सकता है। जब अंश अधिपत्रधारी अंश अधिपत्र का समर्पण कर देता है तो उसे नया अंश प्रमाणपत्र जारी कर दिया जाता है और संदस्यों के रजिस्टर में उसका नाम लिख दिया जाता है।

8. **नकद के अतिरिक्त प्रतिफल में अंश प्राप्त करके** – यदि कोई कम्पनी किसी दूसरे व्यक्ति के चालू व्यवसाय को खरीदती है और उसके प्रतिफल में अंश जारी कर देती है तो उस व्यवसाय को बेचने वाला व्यक्ति भी अंशो का धारक बन जाता है। परिणामस्वरूप ऐसा व्यक्ति भी कम्पनी का सदस्य बन जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. **ऋणपत्रों का अंशो में परिवर्तन** – कभी कभी कम्पनियाँ परिवर्तनीय ऋणपत्र जारी करती हैं। फलतः एक निर्धारित अवधि के बाद ऋणपत्रों के बदले अंश जारी कर दिये जाते हैं। तब ऐसे ऋणपत्रधारी भी कम्पनी के अंशधारी बन जाते हैं।

सदस्यता की समाप्ति
[Termination of Membership]

किसी भी व्यक्ति की कम्पनी में सदस्यता समाप्त होने के कारणों को दो वर्गो में बाँट कर अध्ययन किया जा सकता है :

I. पक्षकारों के कार्यो से;

II. कानून के प्रभावकारी होने से।

I. **पक्षकार के कार्यों से** – पक्षकारों के निम्नांकित कार्यो से किसी भी व्यक्ति की कम्पनी में सदस्यता समाप्त हो जाती है–

1. **अंश अन्तरण द्वारा–** जब कोई सदस्य अपने सम्पूर्ण अंश किसी अन्य व्यक्ति के नाम अन्तरित कर देता है तो उस अन्तरण करने वाले सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाती है। सदस्यता ठीक उसी समय समाप्त होती है, जबकि अंश अन्तरण की कार्यवाही पूरी हो जाती है। ऐसी दशा में अन्तरिती कम्पनी का सदस्य बन जाता है।

2. **अंशो के हरण द्वारा** – जब कोई सदस्य अपने अंशो पर बकाया याचनाओं का भुगतान नहीं करता है तो कम्पनी अंशो का हरण कर सकती है। जब कम्पनी अपने अधिकार का उपयोग करके अंशो का हरण कर लेती है तो अंशधारी का नाम सदस्यों के रजिस्टर में से हटा दिया जाता है और उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।

3. **अंशो के समर्पण द्वारा** – जब कोई अंशधारी अपने आपको अंशो की बकाया याचनाओं का भुगतान करने में असमर्थ पाता है तो वह कम्पनी को अंशो का समर्पण कर सकता है। अंशो का समर्पण करने पर भी अंशधारी की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

4. **ग्रहणाधिकार के उपयोग द्वारा** – यदि कोई कम्पनी अंशो पर अपने ग्रहणाधिकार का उपयोग करते हुए किसी सदस्य के अंशो का विक्रय कर देती है तो ऐसी दशा में उस सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

5. **अंशो के क्रय के अनुबन्ध का परित्याग करने पर** – यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के प्रविवरण में किये गये मिथ्या वर्णन अथवा असत्य कथन के आधार पर कम्पनी के अंश खरीद लेता है तो उसे अंशो के क्रय अनुबन्ध का परित्याग करने का अधिकार होता है। ऐसी दशा में अनुबन्ध का परित्याग करने वाले अंशधारी की कम्पनी में सदस्यता समाप्त हो जाती है।

6. **आबंटन में अनियमितता होने पर** – यदि कोई कम्पनी अंशो के आबंटन में अनियमितता बरतती है तो प्रत्येक सदस्य को अंश खरीदने के अनुबन्ध को व्यर्थनीय समझने का अधिकार होता है। सदस्य द्वारा इस अधिकार का उपयोग करने के बाद उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती हैं।

7. **अंश अधिपत्र प्राप्त करने पर** – जब कोई अंशधारी अपने अंश प्रमाण पत्र के बदले अंश अधिपत्र प्राप्त कर लेता है तो अंशधारी की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

8. **अंशो के शोधन द्वारा** – किसी सदस्य के पास शोध्य पूर्वाधिकार अंश है और कम्पनी इन अंशों का अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार शोधन कर देती है तो शोधन के बाद ऐसे सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

9. **अंशों की वापस खरीद पर** – यदि कोई कम्पनी अपने ही अंशो की वापस खरीद कर लेती हैं [धारा 77A] और कम्पनी का सदस्य अपने सभी अंश कम्पनी को बेच देता है तो वह कम्पनी का सदस्य नहीं रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. **कानून के प्रभावी होने से** – कानून के प्रभावी होने से किसी भी व्यक्ति की कम्पनी में सदस्यता निम्नांकित तरीकों से समाप्त हो सकती है :

1. **अंशो के पारेषण द्वारा–** जब कम्पनी के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो उसके अंश उसके उत्तराधिकारी को हस्तान्तरित किये जाते है, इसे ही तकनीकी भाषा में 'अंशो का पारेषण' कहते हैं। जब इस प्रकार अंशो का पारेषण हो जाता है तो मृतक व्यक्ति की कम्पनी में सदस्यता समाप्त हो जाती है।

2. **सदस्य के दिवालिया होने पर –** दिवालिया व्यक्ति कम्पनी का सदस्य तब तक बना रहता है जब तक कि वे अंश राजकीय प्रापक के नाम में अथवा विक्रय के कारण किसी अन्य व्यक्ति के नाम से हस्तान्तरित नहीं हो जाते हैं। दिवालिया व्यक्ति कम्पनी की सभाओं में उपस्थित होने, कम्पनी में अन्याय एवं कुप्रबन्ध के लिए न्यायालय को प्रार्थना करने का अधिकार रखता है।

3. **न्यायालय के आदेश से अंश वापस लेने पर –**कोई भी कम्पनी न्यायालय के आदेशानुसार किसी भी व्यक्ति के अंशो को वापस लेने का अधिकार रखती है। ऐसी दशा में उस व्यक्ति की कम्पनी में सदस्यता समाप्त हो जाती है।

4. **कम्पनी की समाप्ति द्वारा–**जब कम्पनी को समाप्त किया जाता है तो कम्पनी की समाप्ति के साथ ही सदस्यता की भी समाप्ति हो जाती है। कम्पनी समापन के दौरान वह सदस्य बना रहता है।

सदस्यों के अधिकार
[Rigths of Members]

कम्पनी के सदस्यों के अधिकारों को हम निम्नलिखित तीन मुख्य भागों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं:

I. वैधानिक अथवा कम्पनी अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार;
II. प्रलेखीय अथवा सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा प्रदत्त अधिकार; तथा
III. सामान्य कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार।

I. **वैधानिक अधिकार** –कम्पनी के सदस्यों को जो अधिकार कम्पनी विधान द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान किये गये है, उन्हें वैधानिक अधिकार कहा जाता है। सदस्यों के इन अधिकारों को न सीमानियम तथा न अन्तर्नियम द्वारा समाप्त किया जा सकता है और न इसमें संशोधन या परिवर्तन ही किया जा सकता है। ऐसे अधिकारों को अग्रलिखित दो भागों में विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है–

A. वैयक्तिक अधिकार,
B. सामूहिक अधिकार।

A. **वैयक्तिक अधिकार** – कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को कम्पनी अधिनियम की विभिन्न व्यवस्थाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :

1. निर्धारित शुल्क का भुगतान करके, अन्तर्नियमों एवं सीमानियम की प्रति प्राप्त कर सकते हैं। [धारा 39]
2. और अंश जारी करने (Further issue of shares) की दशा में प्राथमिकता के आधार पर अंश आबंटित करवाने का अधिकार होता है। [धारा 81]
3. अन्तर्नियमों की व्यवस्था के अनुसार अंशो का हस्तान्तरण का अधिकार होता हैं। [धारा 82]
4. कम्पनी की सभाओं में मतदान का अधिकार। [धारा 87]
5. अंशधारी के रूप में अपने अधिकारों में हेर–फेर के विरूद्ध अधिकरण में वाद प्रस्तुत करने एवं उसे निरस्त करने का अधिकार [धारा 107]
6. अंश प्रमाण–पत्र प्राप्त करने का अधिकार [धारा 113]
7. सदस्यों, ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर तथा वार्षिक प्रतिवेदन का निरीक्षण करने का अधिकार [धारा 163]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. वैधानिक रिपोर्ट की प्रति प्राप्त करने का अधिकार। [धारा 165]
9. संचालको द्वारा वार्षिक साधारण सभा न बुलाने की दशा में अधिकरण से सभा बुलाने का आवेदन करने का अधिकार। [धारा 167]
10. सभाओं की सूचना पाने तथा उसमें उपस्थित होने तथा मतदान करने का अधिकार।[धारा 172]
11. प्रतिपुरूष नियुक्त करने तथा प्रतिपुरूष रजिस्टर देखने का अधिकार।[धारा 176]
12. यदि स्वयं के पास ही आवश्यक मताधिकार है तो मतदान की माँग करने का अधिकार [धारा 179]
13. आवश्यक मताधिकार स्वयं के पास होने पर कम्पनी की असामान्य साधारण सभा बुलाने के लिए अधिकरण को आवेदन करने का अधिकार। [धारा 186]
14. यदि सदस्य एक समामेलित संस्था है तो अपनी ओर से सभा में उपस्थित होने तथा मतदान करने के लिए प्रतिनिधि नियुक्त करना। [धारा 187]
15. कम्पनी को प्रस्तावों के प्रसारण के लिए कहने का अधिकार। [धारा 188]
16. साधारण सभा की कार्यवाही के सूक्ष्म माँगने का अधिकार। [धारा 196]
17. घोषित लाभांश प्राप्त करने का अधिकार। [धारा 206]
18. सामान्य सभा की सूचना के साथ संचालक की रिपोर्ट, अंकेक्षकों की रिपोर्ट तथा वार्षिक खातों की प्रतिलिपि प्राप्त करने का अधिकार। [धारा 210 व 219]
19. घोषित बोनस अंश प्राप्त करने का अधिकार।
20. प्रत्येक सदस्य को अग्रलिखित पुस्तकों अथवा रजिस्टरों के निरीक्षण का अधिकार होता है :
    (i) प्रभारों का रजिस्टर [धारा 144(2)]
    (ii) कम्पनी के उन विनियोगो का रजिस्टर जो कम्पनी के अपने नाम में नहीं है। [धारा 49(8)]
    (iii) सामान्य सभा की कार्य वृतान्त पुस्तक (Minutes Book) [धारा 196]
    (iv) कम्पनी के संचालकों तथा प्रबन्धकों का रजिस्टर।
    (v) संचालकों के हित वाले अनुबन्धों का रजिस्टर।
21. प्रत्येक सदस्य को नियमानुसार अंशो को स्कन्ध में तथा स्कन्ध को अंशो में परिवर्तित करवाने का अधिकार होता है।
22. प्रत्येक सदस्य 'सदस्यो के रजिस्टर' में सुधार करने के लिए अधिकरण से प्रार्थना कर सकता है।
23. कम्पनी का कोई भी सदस्य कम्पनी के समापन के लिए अधिकरण को प्रार्थना पत्र दे सकता है। [धारा 439]
24. कम्पनी के समापन के समय ऋणदाताओं को भुगतान करने के बाद बची शेष सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार होता है। [धारा 475 व 511]

B. **सामूहिक अधिकार** – अंशधारियों के सामूहिक अधिकार भी होते है जिनका वे मिलकर सामूहिक रूप से ही उपयोग कर सकते है :

1. कोई भी 10 प्रतिशत अंश पूँजी का धारक अथवा 10 प्रतिशत मताधिकार रखने वाले व्यक्ति संचालको से असामान्य साधारण सभा बुलाने की माँग कर सकते है। [धारा 169]
2. कोई भी 10 प्रतिशत पूँजी के धारक अथवा 10 प्रतिशत मत शक्ति रखने वाले व्यक्ति मतांकन द्वारा मतदान एवं मतगणना की माँग कर सकते हैं। [धारा 179]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. कोई भी 10 प्रतिशत अंश पूँजी के धारक अथवा 10 प्रतिशत मत शक्ति रखने वाले व्यक्ति प्रबन्ध एवं कार्यकलापों से असन्तुष्ट होने पर जाँच करवाने के लिए केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना कर सकते है। [धारा 235]

4. अन्याय तथा कुप्रबन्ध की दशा में अधिकरण को प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का अधिकार [धारा 397 तथा 398]

5. किसी कम्पनी के कम से कम 10 प्रतिशत निर्गमित अंश पूँजी के धारक अंशारियों के अधिकारों में किये गये परिवर्तन को रद्द करवाने के लिए अधिकरण में प्रार्थना पत्र दे सकते है। [धारा 107]

6. कम्पनी के सदस्य अपनी सभा में साधारण प्रस्ताव पारित करके निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार रखते है :–

   (i) अन्तर्नियमों की व्यवस्था के अनुसार पूँजी में वृद्धि करना।
   (ii) अंशों का स्कन्ध में तथा स्कन्ध का अंशो में परिवर्तन करना।
   (iii) वैधानिक सभा में वैधानिक रिपोर्ट के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पारित करना।
   (iv) संचालकों की नियुक्ति करना।
   (v) कम्पनी के चिट्टे तथा लाभ–हानि को स्वीकृत करना।
   (vi) लाभांश की घोषणा करना।
   (vii) अंकेक्षकों की नियुक्ति तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करना।

7. कम्पनी के सदस्य विशेष प्रस्ताव पारित करके निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार रखते है :–

   (i) पार्षद सीमानियम के परिवर्तन करना।
   (ii) पार्षद अन्तर्नियम में परिवर्तन करना।
   (iii) न्यायालय की अनुमति से अंश पूँजी में कमी करना।[धारा 100]
   (iv) पूँजी में से ब्याज देना। [धारा 208 (2)]

II. प्रलेखीय अधिकार – जो अधिकार कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनी के सदस्यों को प्रदान किये जाते हैं। वे प्रलेखीय अधिकारों के नाम से जाने जाते हैं। कम्पनी अधिनियम में कई धाराओं में यह व्यवस्था है कि कम्पनी चाहे तो अपने अंशधारियों को कुछ विशेष प्रकार के अधिकार प्रदान कर सकती है। उदाहरणार्थ, अंश अधिपत्र प्राप्त करने का अधिकार, अंश अधिपत्रधारियों को सदस्यों के समान अधिकार आदि। अंशधारियों को ये अधिकार तभी प्राप्त होते है जबकि अन्तर्नियमों में ये अधिकार प्रदान किये गये हो।

III. **सामान्य कानूनी अधिकार** – सदस्यों को देश के सामान्य राजनियम या कानून के अन्तर्गत भी कुछ अधिकार प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ, प्रविवरण में कपट की दशा में अंश क्रय करने के अनुबन्ध को व्यर्थनीय समझने का अधिकार, अंश क्रय करने पर अंशो पर स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार प्रत्येक अंशधारी को प्राप्त होते हैं।

सदस्यों के दायित्व
[Liabilities of Members]

कम्पनी की प्रकृति के अनुसार ही सदस्यों के दायित्व का निर्धारण होता है। विभिन्न प्रकार की कम्पनी के सदस्यों के दायित्वों इस प्रकार है :

1. **असीमित दायित्व वाली कम्पनी के सदस्यों का दायित्व**–असीमित दायित्व वाली कम्पनी के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। कम्पनी के समस्त बकाया ऋणो के भुगतान के लिए सभी सदस्य मिलकर व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते है। कम्पनी के समापन के समय जब ऋणों के पूर्ण भुगतान में कम्पनी की सम्पत्तियाँ कम रहती हैं तो सदस्यों द्वारा अपने हित के अनुपात में ही इस कमी की पूर्ति की जाती है। इसके बाद यदि कोई अंशधारी अपने हित के बराबर की कमी का भुगतान नहीं करता है तो शेष सभी सदस्य उसके अंश को अपने हित के अनुपात में पुनः बाँट लेते है और भुगतान करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि असीमित दायित्व वाली कम्पनी के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है और उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। किन्तु इन सभी सदस्यों को संयुक्त रूप से उत्तरदायी ठहराया जा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सकता है। तृतीय पक्षकार किसी सदस्य विशेष पर वाद प्रस्तुत करके अपने ऋणों की वसूली नहीं कर सकता है।

2. **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व –** गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होता है। जब कभी भी कम्पनी का समापन होता है, कम्पनी अपने सदस्यों से अधिकतम रूप से उनके द्वारा दी गई गारण्टी राशि के बराबर की राशि ही वसूल कर सकती है।

3. **अंश पूँजी वाली सीमित दायित्व वाली कम्पनी की सदस्यों का दायित्व–** प्रत्येक ऐसी कम्पनी जिसमें अंश पूँजी है और जिसके सदस्यों का दायित्व सीमित है, उसके सदस्यों के दायित्व निम्न प्रकार के हो सकते है :

   (i) अंशो का उचित रूप से आबंटन होने पर अंश लेना।

   (ii) आबंटन राशि का भुगतान करना।

   (iii) याचना राशि का भुगतान करना। यदि समुचित याचना राशि की माँग की जाती है तो भी सदस्य इसके भुगतान से इन्कार नहीं कर सकता हैं।

   (iv) अंश हस्तान्तरण से सम्बन्धित नियमों का पालना करना।

   (v) अंशधारियों के अधिकारों में परिवर्तन करने पर आपत्ति न करने की दशा में उनसे बाध्य होना।

   (vi) कम्पनी के समापन की दशा में अपनी बकाया राशि का भुगतान करना।

   (vii) कम्पनी के अंशदाता के रूप में उत्तरदायी रहना। सीमित दायित्व वाली अंश पूँजी वाली कम्पनी के सदस्य या अंशदाता के रूप में दायित्व सीमित ही होता है। यह अंशदाता के रूप में केवल उतनी ही राशि के भुगतान के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जितनी राशि उसने अपने अंशो में अंकित मूल्य से कम चुकायी है। यदि उसके अंशो का पूर्ण मूल्य चुका दिया जाता है तो वह अंशदाता के रूप में उत्तरदायी नहीं होता हैं।

   (viii) अंशो का हस्तान्तरणकर्त्ता कम्पनी के सदस्य के रूप में तब तक उत्तरदायी होता है जब तक कि उसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में बना रहता है।

   (ix) अंशो का हस्तान्तरणकर्ता उस दशा में भी कम्पनी के प्रति उत्तरदायी बना रहता है, जबकि उसके अंशो द्वारा अंश हस्तान्तरित करने के बारह महीनों में ही कम्पनी का समापन प्रारम्भ हो जाता है।

   (x) कम्पनी के सदस्यों की संख्या न्यूनतम सदस्य संख्या से कम हो जाती है तो सीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व भी असीमित हो जाता है। यदि सीमित कम्पनी के सदस्यों की संख्या 2 से कम हो जाती है तो कम्पनी के शेष सदस्यों का दायित्व असीमित हो जाता है।

   (xi) यदि किसी व्यक्ति का नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में लिखा है जबकि वह व्यक्ति कम्पनी का अंशधारी नहीं है और उसे इस बात की जानकारी होते ही तत्काल अपने नाम को इस रजिस्टर में से हटवाने के लिए प्रयास नहीं करता है तो ऐसा व्यक्ति भी सदस्य के रूप में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति कम्पनी का अंशदाता माना जाता है।

प्रश्न बोध –

1. कम्पनी के सदस्य से आप क्या समझते हैं? क्या एक विदेशी व्यक्ति कम्पनी का सदस्य हो सकता है ?
2. सदस्य एवं अंशधारी में अन्तर बताइयें।
3. एक कम्पनी में सदस्यता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती हैं।
4. भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रदत्त सदस्यों के अधिकार बताइयें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय चतुर्थ

सभाएँ [Meetings]

कम्पनी के प्रबन्ध व संचालन के कार्य में बहुत से व्यक्ति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते है। बहुत से ऐसे मामले तथा विषय होते है जिनमें कम्पनी के वास्तविक स्वामी अर्थात उसके अंशधारियों को मिलजुल कर निर्णय लेने होते है। इसी प्रकार कम्पनी के संचालकगण को भी विभिन्न मुद्दो पर विचार विमर्श करके निर्णय लेने होते है। ऐसे निर्णय लेने के लिए सभाओं का आयोजन आवश्यक होता है। अतः समय समय पर कम्पनी को विभिन्न सभाएँ आयोजित करनी पड़ती है।

सभा का आशय –

सामान्य शब्दों में सभा से आशय दो अथवा अधिक व्यक्तियों का किसी पूर्व निर्धारित समय व स्थान पर किसी निश्चित विषय पर विचार–विमर्श करने हेतु एकत्र होने एवं विचार विमर्श कर निर्णय लेने से है।

इस प्रकार जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी पूर्व सूचना के आधार पर किसी निश्चित कार्य को करने के लिए एकत्रित होकर आपसी विचार विमर्श द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचते है तो उसे सभा कहते हैं।

एक वैध सभा के आवश्यक तत्व –

कम्पनी में आयोजित की जाने वाली सभाएँ वैध होनी चाहिये अन्यथा इनमें लिये गये निर्णय तथा पारित प्रस्ताव वैधनिक स्वरूप नहीं ले सकेंगे। ऐसी दशा में उनका कोई वैधानिक प्रभाव भी नहीं रहेगा। कम्पनी की सभा की वैधता कुछ निश्चित बातों के पालन पर निर्भर करती है। ये बातें एक वैध सभा की पूर्ण आवश्यकताएँ भी है, ये बाते निम्नांकित है :

1. सभा में उपस्थित होने का अधिकार रखने वाले सभी व्यक्तियों को **सभा की सूचना उचित तरीके** से दी जानी चाहियें।
2. सभा बुलाने के **अधिकृत व्यक्ति द्वारा** ही सभा बुलायी जानी चाहियें।
3. सभा के **अध्यक्ष** की उचित रूप में नियुक्ति होनी चाहिए।
4. सभा की निश्चित **कार्यसूची या कार्यावली** (Agenda) होनी चाहिए।
5. सभा में आवश्यक कार्यवाहक संख्या (Quorum) उपस्थित होनी चाहिए।
6. सभाएं **उचित ढंग से आयोजित** की जानी चाहिए।
7. सभा का **स्थगन नियमानुसार** होना चाहिए तथा स्थगित सभा को पुनः उचित ढंग से आयोजित किया जाना चाहिए।
8. सभा में **प्रतिपुरूष** (Proxy) की नियुक्ति नियमानुसार होनी चाहिए।
9. सभा में **सुझाव एवं प्रस्ताव उचित तरीके** से स्वीकार किये जाने चाहिए।
10. सभा में आवश्यकतानुसार उचित तरीके से **मतदान** होना चाहिए।
11. सभा के **सुक्ष्म** (Minutes) उचित तरीके से लिखे एवं रखे जाने चाहिए।

कम्पनी सभाओं के प्रकार

कम्पनी के अंशधारी, ऋणदाता तथा संचालकगण समय–समय पर विभिन्न रूपों में सभाओं का आयोजन करके विचार–विमर्श करते हैं। विभिन्न वर्गो द्वारा आयोजित की जाने वाली सभाओं को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

(I) **अंशधारियों या सदस्यों की सभाएँ** – कम्पनी के अंशधारियों या सदस्यों द्वारा समय समय पर विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार की सभाओं का आयोजन किया जाता है। ऐसी प्रमुख सभाएँ इस प्रकार है–

(1) वैधानिक सभा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) वार्षिक साधारण सभा
(3) असाधारण सभा
(4) वर्ग सभाएँ

(II) **संचालकों की सभाएँ :** कम्पनी के संचालक कम्पनी के प्रबन्ध व संचालन हेतु समय–समय पर सभाएँ आयोजित करते हैं, ऐसी सभाएँ निम्नलिखित है :

(1) संचालक मण्डल की सभा।

(2) संचालक समिति की सभा।

(III) **ऋणपत्रधारियों या ऋणदाताओं की सभाएँ :** कभी–कभी कम्पनी के ऋणदाता भी अपनी सभाएँ आयोजित करते हैं, ऐसी सभाएँ निम्नांकित हैं –

(1) ऋणपत्रधारियों की सभा

(2) ऋणदाताओं या समापन की दशा में अंशदाताओं की सभा।

सभा की सूचना

सभा की सूचना का आशय कम्पनी के अधिकृत व्यक्ति द्वारा प्रसारित की जाने वाली सभा की ऐसी सूचना से होता है। जिसमें कम्पनी की सभा में उपस्थित होने के अधिकृत व्यक्ति को सभा के दिन, स्थान, समय, सभा के स्वरूप विचारणीय विषयों आदि की सूचना दी जाती है। सभा की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि सूचना उचित रूप से सभी सम्बन्ध व्यक्तियों तक भेजी जायें।

सूचना पाने के अधिकृत व्यक्ति – कम्पनी की प्रत्येक सभा की सूचना प्राप्त करने के लिए निम्नांकित व्यक्ति अधिकृत माने जाते है। इसलिए इन व्यक्तियों को सभा की सूचना अवश्य ही दी जानी चाहिये :

(1) कम्पनी का प्रत्येक सदस्य।

(2) कम्पनी के मृत सदस्य का उत्तराधिकारी।

(3) दिवालिया सदस्य के राजकीय प्रापक या निस्तारक।

(4) कम्पनी का अंकेक्षक। [धारा 172(2)]

सूचना की विषय सामग्री

कम्पनी की प्रत्येक सभा की सूचना में निम्नांकित बातों का समावेश अवश्य ही होना चाहिए :

1. सभा की प्रकृति यथा–साधारण सभा, वैधानिक सभा अथवा असाधारण सभा आदि।
2. सभा की तिथि, समय व स्थान।
3. सभा बुलाने का अधिकार प्रदान करने वाली कम्पनी अधिनियम की धारा।
4. सभा के उद्देश्य बताने हेतु सामान्यतः कार्यावली (Agenda) अलग से भेजी जाती है।
5. सभा में पारित किये जाने वाले प्रस्ताव यदि विशेष प्रस्ताव हो तो उसकी विशेष सूचना तथा आवश्यक तथ्यों का उल्लेख किया जाना चाहिये।
6. सभा में स्वीकार किये जाने वाले महत्वपूर्ण अनुबन्धों का विवरण।
7. प्रतिपुरूष (Proxy) नियुक्त करने के अधिकार का उल्लेख। सामान्यतः सूचना के साथ प्रतिपुरूष फार्म भी संलग्न किया जाता है।

सूचना की अवधि

वैध सभा के आयोजन हेतु अवधि पूर्व सूचना दी जानी चाहिये। कम्पनी की सभा बुलाने के लिये कम से कम 21 दिन की सूचना देना आवश्यक है। इस अवधि में डाक में डालने की अवधि सूचना प्राप्ति का दिन, सभा का दिन को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अतः सभा की सूचना कम से कम 25 दिन पूर्व डाक में डाल दी जानी चाहिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) सूचना की स्पष्ट अवधि = 21 दिन
(ii) डाक से सूचना पहुँचने का समय = 2 दिन
(iii) सूचना प्राप्ति का दिन = 1 दिन
(iv) सभा का दिन = 1 दिन

सभा की कार्यवाहक संख्या / गणपूर्ति

कार्यवाहक संख्या या गणपूर्ति सभा के सदस्यों की वह न्यूनतम संख्या है जो किसी सभा के वैधानिक रूप से संचालन के लिए उपस्थित होनी आवश्यक होती है। यदि यह न्यूनतम सदस्य संख्या सभा के समय उपस्थित नहीं होती है तो सभा की कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती है। यदि इस न्यूनतम संख्या की उपस्थिति के बिना सभा का संचालन कर लिया जाता है तो वह सभा अनियमित मानी जाती है तथा उसकी कार्यवाही अवैधानिक हो जाती है।

कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही सभा में कार्यवाहक संख्या होनी चाहिए। अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार एक सार्वजनिक कम्पनी की सभा में कार्यवाहक संख्या 5 सदस्य है जबकि निजी कम्पनी में 2 सदस्य हैं। कोई भी कम्पनी अन्तर्नियमों द्वारा इस कार्यवाहक संख्या को कम नहीं कर सकती है। वह इसमें वृद्धि अवश्य कर सकती है। अतः कोई कम्पनी जब अपने अन्तर्नियमों में कार्यवाहक संख्या हेतु अधिक संख्या का उल्लेख करती है तो उस कम्पनी की सभा तभी वैध होगी जबकि गणपूर्ति के लिए उतने ही सदय उपस्थित होगें।

सभा की कार्यसूची या कार्यावली

किसी भी सभा में किये जाने वाले कार्यो की जानकारी सभा की सूचना प्राप्त करने के अधिकृत प्रत्येक व्यक्ति को दी जानी आवश्यक है। सभा में किये जाने वाले कार्यो का विवरण देने के लिए कार्यावली या कार्यसूची तैयार की जाती है। इस प्रकार कार्यावली एक ऐसा विवरण पत्र है जिसमें सभा में किये जाने वाले कार्यो का विवरण होता है।

कार्यावली सभा को व्यवस्थित रूप से चलाने की दृष्टि से जरूरी होती है। इसके द्वारा सदस्यों को सभा में किये जाने वाले कार्यो की जानकारी मिलती है तथा यह जानकारी भी मिलती है कि किये जाने वाले कार्य किस क्रम में सम्पन्न किये जायेगें।

सभा में किये जाने वाले कार्यो को दो वर्गो में बांटा जाता है।

(I) साधारण कार्य

(II) **विशेष कार्य**

(I) साधारण कार्य –

(i) कम्पनी के खातों, चिट्ठे, संचालकों तथा अंकेक्षकों की रिपोर्ट पर विचार करना एवं अपनाना।

(ii) लाभांश की घोषणा करना।

(iii) पारी से रिटायर होने वाले संचालकों के स्थान पर संचालक नियुक्त करना।

(iv) अंकेक्षकों को नियुक्त करना तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करना।

(II) विशेष कार्य –

(i) कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा में उपरोक्त वर्णित साधारण कार्यो के अतिरिक्त कोई कार्य।

(ii) अन्य किसी सभा में कोई भी कार्य (चारों में से कोई भी) करना विशेष कार्य में सम्मिलित होगा।

प्रश्न बोध –

1. एक वैध सभा के आवश्यक तत्त्वों को उल्लेख कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. कम्पनी की सभा की सूचना की अवधि एवं विषय सामग्री का उल्लेख कीजिए।
3. कम्पनी की सभा की कार्यवाहक संख्या की विवेचना कीजिए।
4. सभा की कार्यावली पर एक टिप्पणी लिखिए।

कम्पनी की सभाएँ

कम्पनी की सभाएँ अनेक प्रकार की होती है, जिनका निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकरण करके अध्ययन किया जा सकता है :

(I) अंशधारियों की सभाएँ –

1. वैधानिक सभा
2. वार्षिक साधारण सभा
3. असामान्य साधारण सभा
4. वर्ग सभाएँ

(II) संचालकों की सभाएँ –

5. संचालक मण्डल के सदस्यों की सभा
6. संचालक समिति की सभा।

(III) अन्य सभाएँ –

1. ऋणपत्रधारियों की सभाएँ।
2. ऋणदाताओं की सभाएँ।

वैधानिक सभा

[Statutory Meeting]

कम्पनी को व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण पत्र प्राप्त होने के बाद अंशधारियों की जो सर्वप्रथम सभा बुलाई जाती है, वह कम्पनी की वैधानिक सभा होती है। यह प्रत्येक कम्पनी के जीवनकाल में एक बार ही आयोजित की जाती है। इस सभा का उद्देश्य सदस्यों को कम्पनी के निर्माण के बाद की स्थिति से अवगत करवाना है। इस सभा में उन्हें यह भी बताया जाता है कि कम्पनी के अंशो का आबंटन किस प्रकार किया गया है, कम्पनी द्वारा कौन–कौन से अनुबन्ध किये गये है तथा इन अनुबन्धों का कम्पनी के जीवन में क्या महत्त्व हो सकता है। इस सभा में कम्पनी के संचालक सदस्यों के समक्ष कम्पनी की वैधानिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत कर सकते है।

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 165(1) में वैधानिक सभा को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, ''प्रत्येक अंशों द्वारा सीमित कम्पनी को तथा प्रत्येक गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी जिसमें की अंशपूँजी है, व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त होने की तिथि के एक महीने के पश्चात् किन्तु छः महीनों के भीतर कम्पनी के सदस्यों की एक साधारण सभा अनिवार्य रूप से बुलानी पड़ती है, जिसे वैधानिक सभा कहा जाता है।

वैधानिक सभा से सम्बन्धित कानूनी प्रावधान

कम्पनी अधिनियम की **धारा 165** की विभिन्न उपधाराओं तथा **धारा 433 (b)** में वैधानिक सभा से सम्बन्धित कानूनी व्यवस्थाएं दी गई है, जिनका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है :

1. **वैधानिक सभा बुलाने का दायित्व** – प्रत्येक अंशो द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी एवं गारण्टी द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी जिसमें अंश पूँजी है, को अपनी वैधानिक सभा बुलानी पड़ती है। [(धारा 165(1)]
2. **वैधानिक सभा बुलाने का समय** – उपर्युक्त प्रकार की प्रत्येक कम्पनी को व्यवसाय प्रारम्भ करने का अधिकार प्राप्त करने के एक महीने बाद किन्तु छः महीनों के भीतर वैधानिक सभा बुलानी पड़ती है। [(धारा 165(1)]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **वैधानिक सभा बुलाने के दायित्व से मुक्त कम्पनियाँ–** वैधानिक सभा बुलाने का दायित्व सभी कम्पनियों पर नहीं है। जिन कम्पनियों को वैधानिक सभा नही बुलानी पड़ती है, वे निम्नानुसार है–

   (i) स्वतन्त्र निजी कम्पनियाँ

   (ii) असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ

   (iii) गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ, जिनमें अंश पूँजी नहीं है।

   (iv) एक ऐसी कम्पनी, जिसे निजी कम्पनी से सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तित कर दिया गया है।

   (v) एक ऐसी कम्पनी, जो निजी कम्पनी के रूप में थी किन्तु अब धारा 43-A के अन्तर्गत सार्वजनिक कम्पनी मान लिया गया है। किन्तु यदि किसी निजी कम्पनी को उसके समामेलन के छः महीनों के भीतर ही धारा 43–A के अन्तर्गत सार्वजनिक कम्पनी मान लिया जाता है तो उसे वैधानिक सभा बुलानी पड़ेगी।

   (vi) किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक निजी कम्पनी।

4. **सभा की सूचना –** वैधानिक सभा के लिए कम से कम 21 दिनों की स्पष्ट सूचना दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दो में सूचना प्राप्त होने के दिन तथा सभा के दिन को छोड़कर 21 दिन के पहले सदस्यों के पास सूचना पहुँच जानी चाहिए। इससे कम अवधि की सूचना से सभा तभी बुलायी जा सकती है जबकि चुकता पूँजी के 95 प्रतिशत भाग पर अधिकार रखने वाले सदस्य इस हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान कर दें। इस सूचना में इस बात का अवश्य उल्लेख कर देना चाहिए कि यह वैधानिक सभा है। यह सूचना प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप में भेजी जानी चाहिए। [(धारा 165(2)]

5. **वैधानिक रिपोर्ट तैयार करना तथा संचालकों द्वारा प्रमाणित करना** – वैधानिक सभा में प्रस्तुत करने के लिए एक वैधानिक रिपोर्ट भी तैयार की जानी चाहिए। यह रिपोर्ट निर्धारित प्रारूप (फार्म नं. 22) में तैयार की जानी चाहिए। तत्पश्चात् कम्पनी के दो संचालकों, जिसमें एक प्रबन्ध संचालक यदि हो तो, उसके द्वारा इस रिपोर्ट को प्रमाणित किया जायेगा। [(धारा 165(4)]

6. **अंकेक्षक द्वारा प्रमाणित करना**– तत्पश्चात् कम्पनी के अंकेक्षक भी उस रिपोर्ट के निम्नांकित विवरणों को प्रमाणित करते है :

   (i) अंशो के आबंटन का विवरण।

   (ii) इन अंशो के सम्बन्ध में प्राप्त धन।

   (iii) कम्पनी की प्राप्तियों एवं भुगतानों का विवरण [(धारा 165(4)]

7. **सदस्यों को सूचना के साथ वैधानिक रिपोर्ट भेजना**– संचालक मण्डल को वैधानिक सभा की सूचना के साथ ही वैधानिक रिपोर्ट की प्रतिलिपि भी प्रत्येक सदस्य के पास भेज देनी चाहिए। यह रिपोर्ट भी सदस्यों को सभा के कम से कम 21 दिन पूर्व भेज दी जानी चाहिए। यदि इस रिपोर्ट के भेजने में देरी की जाती है तो भी उस रिपोर्ट को उपयुक्त समय पर भेजी हुई मान ली जायेगी, यदि सभा में उपस्थित होने तथा मतदान करने का अधिकार रखने वाले सभी सदस्य सहमत हो। [धारा 165(2)]

8. **वैधानिक रिपोर्ट की प्रति रजिस्ट्रार को सौंपना** – कम्पनी के सदस्यों को वैधानिक रिपोर्ट की प्रतिलिपि भेजने के तत्काल बाद कम्पनी के संचालक मण्डल को वैधानिक रिपोर्ट की एक प्रति कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास भेजनी पड़ती है। इस रिपोर्ट की प्रतिलिपि को संचालक, प्रबन्ध संचालक तथा अंकेक्षकों द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए। [(धारा 165(5)]

9. **कार्यसूची या कार्यावली भेजना –** सभा की सूचना के साथ ही सभा में पूरे किये जाने वाले कार्यक्रमों का विवरण भी भेजा जाता है, जिसे सभा की कार्यसूची या कार्यावली के नाम से जाना जाता है। कई बार इसे अलग से तैयार किया जाता है तो कई बार इसे सभा के सूचना पत्र में ही सम्मिलित कर लिया जाता है। इस कार्यसूची में वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के अतिरिक्त अन्य कार्य भी सम्मिलित किये जा सकते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. **निर्धारित तिथि एवं समय पर सभा का आयोजन** – पूर्व निर्धारित तिथि एवं समय पर सभा का आयोजन किया जाता है। इस सभा में वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। इसके बाद सभा में वे सभी कार्य किये जा सकते है जिनको करने के लिए पहले से ही सूचना दे दी गई है।

11. **कम्पनी के सदस्यों की सूची प्रस्तुत करना तथा अवलोकन हेतु उपलब्ध रखना** – वैधानिक सभा के समय तक कम्पनी के संचालक मण्डल को कम्पनी के सदस्यों की सूची तैयार करनी पड़ती है। इस सूची में सदस्यों के नाम, पते तथा व्यवसाय, उनके द्वारा धारित अंश आदि बातों का उल्लेख होता है। संचालक मण्डल को ऐसी सूची को सभा के प्रारम्भ होते ही प्रस्तुत करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन्हें इस सूची को ऐसे स्थान पर भी खुला रखना होता है, जहां पर सभी सदस्य सभा के दौरान सुविधापूर्वक देख सकें। [(धारा 165 (6)]

12. **कम्पनी के निर्माण तथा वैधानिक रिपोर्ट से सम्बन्धित मामलों पर विचार की छूट**– इस सभा में उपस्थित सदस्यों को कम्पनी के निर्माण तथा वैधानिक रिपोर्ट से उत्पन्न होने वाले मामलों पर विचार करने की पूरी छूट होगी चाहे उसके लिए पूर्व सूचना दी गई हो अथवा नहीं। परन्तु कोई भी अन्य संकल्प तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक कि इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उसकी सूचना न दे दी गई हो। [(धारा 165 (7)]

13. **सभा का स्थगन** – वैधानिक सभा को स्थगित किया जा सकता है। इस स्थगित सभा में वे सभी संकल्प पारित किये जा सकते है, जिनके लिए अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार आवश्यक सूचना दे दी गई हो। ऐसी सूचना पहली पूर्ववर्ती सभा के पूर्व या बाद में कभी भी दी जा सकती है। ऐसी स्थगित सभा के भी वे सभी अधिकार होंगे जो मूल सभा के होते है। [(धारा 165 (8)]

14. **अर्थदण्ड** – यदि इस धारा [(धारा 165] के पालन में त्रुटि की जाती है तो कम्पनी के प्रत्येक दोषी संचालक अथवा अन्य अधिकारी पर पांच हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

15. **समापन के लिए अधिकरण को आवेदन देने का अधिकार** –यदि अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि में कोई कम्पनी अपनी वैधानिक सभा नहीं बुलाती है अथवा रजिस्ट्रार को वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में त्रुटि करती है तो कम्पनी का कोई भी अंशदाता अथवा रजिस्ट्रार उस अवधि के व्यतीत होने के 14 दिन के बाद कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए अधिकरण में प्रार्थना पत्र दे सकता है। यदि अधिकरण उचित समझता है तो इस आवेदन के आधार पर कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है। यदि अधिकरण चाहे तो कम्पनी को अपनी वैधानिक सभा बुलाने तथा वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश भी दे सकता है। [धारा 433 (b)]

प्रश्न बोध –

1. वैधानिक सभा से आप क्या समझते है।
2. उन कम्पनियों का उल्लेख कीजिए, जिन्हें वैधानिक सभा नही बुलानी पड़ती है।
3. वैधानिक सभा से सम्बन्धित कानूनी प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

वार्षिक साधारण सभा

[Annual General Meeting]

कम्पनी के अंशधारियों के हितों की सुरक्षा के लिए वार्षिक साधारण सभा एक महत्वपूर्ण साधन है। कम्पनी का प्रबन्ध एवं संचालन कम्पनी के संचालकों द्वारा किया जाता है, जबकि संचालकों तथा कम्पनी के कार्यो का नियन्त्रण अंशधारियों द्वारा किया जाता है। अंशधारी वार्षिक साधारण सभा के अवसर पर पिछले वर्ष भर में किए गए कार्यो और उनके परिणामों के बारे में संचालकों से पूछते हैं तथा उन्हें आवश्यक दिशा–निर्देश देते है। इसके अतिरिक्त वार्षिक साधारण सभा के अवसर पर ही लाभांश की घोषणा, संचालकों की नियुक्ति की जाती है तथा अन्तिम खातों की भी स्वीकृति दी जाती है।

वार्षिक साधारण सभा से आशय–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सामान्य शब्दों में कम्पनी के सदस्यों की प्रतिवर्ष बुलायी जाने वाली सभा को ही वार्षिक साधारण सभा कहते है।

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 166(1) के अनुसार– ''प्रत्येक कम्पनी को प्रतिवर्ष अन्य सभाओं के अतिरिक्त अंशधारियों की एक सभा 'वार्षिक साधारण सभा' के रूप में बुलानी चाहिए।''

इस प्रकार वह सभा जो कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार वर्ष में एक बार बुलायी जाती है वह वार्षिक साधारण सभा कहलाती है। यह कम्पनी की अन्य सभाओं के अतिरिक्त होती है।

वार्षिक साधारण सभा सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान

वार्षिक साधारण सभा के सम्बन्ध में प्रमुख वैधानिक प्रावधान निम्नानुसार है :

1. **प्रतिवर्ष सभा बुलाना** – प्रत्येक कम्पनी के लिए प्रतिवर्ष साधारण सभा बुलाना आवश्यक है। वार्षिक साधारण सभा निजी तथा सार्वजनिक सभी कम्पनियों को बुलानी पड़ती है। जब भी कोई कम्पनी वार्षिक साधारण सभा बुलाती है तो उसकी सूचना में इस बात का स्पष्ट उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि यह सभा वार्षिक साधाारण सभा के रूप में बुलाई जा रही हैं [(धारा 166(1)]
2. **प्रथम साधारण सामान्य सभा का समय** – प्रत्येक कम्पनी को अपनी प्रथम वार्षिक साधारण सभा अपने समामेलन के 18 महीनों के भीतर अवश्य बुला लेनी चाहिए। यदि इस 18 महीनों की अवधि में प्रथम वार्षिक साधारण सभा बुला ली जाती है तो फिर उस कम्पनी को अपने समामेलन के वर्ष तथा इसके अगले कलेण्डर वर्ष में कोई भी वार्षिक साधारण सभा बुलाने की आवश्यकता नहीं रहती है।
3. **दो सभाओं के बीच की अवधि –** कम्पनी की दो वार्षिक साधारण सभाओं के बीच 15 महीनों से अधिक की अवधि का अन्तराल नहीं होना चाहिए। [(धारा 166(1)]
4. **सभाओं की अवधि बढ़ाना –** यद्यपि दो वार्षिक साधारण सभाओं के बीच की अवधि 15 महीनों से अधिक नही होनी चाहिए किन्तु, यदि रजिस्ट्रार चाहे तो विशेष कारणो के आधार पर इस अवधि को तीन महीनों के लिए बढ़ा सकता है। परन्तु रजिस्ट्रार प्रथम वार्षिक साधारण सभा की अवधि को नहीं बढ़ा सकता है। [(धारा 166(1)]
5. **साधारण सभा का समय तथा वित्तीय वर्ष –** साधारण सभा का समय तथा वित्तीय वर्ष दोनों का भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। कम्पनी अधिनियम की धारा 210 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को अपनी वार्षिक साधारण सभा के समक्ष वित्तीय खातें प्रस्तुत करने पड़ते है जो सभा की तिथि से छः महीनों से अधिक पुराने नहीं होंगे। किन्तु यदि रजिस्ट्रार ने वार्षिक सभा की अवधि तीन महीनों के लिए बढ़ा दी है तो ये खाते 9 महीनों से अधिक पुराने नहीं हो सकते है। इस प्रकार प्रथम वार्षिक साधारण सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले खाते भी 9 महीनों से अधिक पुराने नहीं होंगे।
6. **सभा का समय –** सभा किसी भी कार्य दिवस पर कामकाज के समय में बुलाई जा सकती हैं। यह ध्यान रहे कि सभा व्यावसायिक कामकाज के समय में प्रारम्भ होनी आवश्यक है। किन्तु सभा कामकाज के समय के समाप्त होने के बाद भी जारी रह सकती है। सार्वजनिक कम्पनी अथवा उसकी सहायक कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में भी आगामी वार्षिक साधारण सभा का समय निर्धारित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, ये कम्पनियाँ अपनी किसी वार्षिक साधारण सभा में प्रस्ताव पारित करके भी आगामी सभाओं के समय को भी निर्धारित कर सकती है।
7. **सभा का दिन –** कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा किसी भी ऐसे दिन बुलाई जा सकती है जो सार्वजनिक छुट्टी का दिन न हो। [(धारा 166(2)] सार्वजनिक छुट्टी के दिन से तात्पर्य छुट्टी के ऐसे दिनों से है जिन्हें विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 के अन्तर्गत छुट्टी के दिन घोषित कर रखे है। अतः किसी रविवार तथा अन्य सार्वजनिक छुट्टी के दिनों को कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा नही बुलाई जा सकती है।
8. **सभा का स्थान –** प्रत्येक कम्पनी को अपनी वार्षिक साधारण सभा अपने पंजीकृत कार्यालय पर अथवा उस शहर, गाँव या कस्बे में करनी चाहिए जहाँ पर कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय स्थित है। किन्तु, एक स्वतन्त्र निजी कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में व्यवस्था करके अथवा सभी सदस्यों की सर्वसम्मति से कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा के स्थान को निर्धारित कर सकती हैं।[(धारा 166(2]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. **केन्द्रीय सरकार द्वारा छूट –** केन्द्रीय सरकार किसी भी वर्ग की कम्पनियों (जैसें बैंकिंग कम्पनियों) को वार्षिक साधारण सभा के समय, स्थान तथा तिथि के नियमों में छूट भी दे सकती है। [धारा 166(2)]

10. **केन्द्रीय सरकार द्वारा वार्षिक साधारण सभा बुलाना –** यदि कोई कम्पनी अपनी वार्षिक साधारण सभा यथासमय नहीं बुलाती है तो कम्पनी का कोई भी सदस्य केन्द्रीय सरकार को कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा बुलाने का आवेदन (500 रूपये शुल्क सहित) दे सकता है। केन्द्रीय सरकार ऐसे आवेदन के प्राप्त करने पर कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा बुला सकता है। अथवा सभा बुलाने का कम्पनी को निर्देश दे सकता है। ऐसे निर्देश में केन्द्रीय सरकार यह भी लिख सकती है कि एक भी सदस्य अथवा उसके प्रतिपुरूष की उपस्थिति में भी वार्षिक साधारण सभा का गठन हुआ मान लिया जाय। [2002 में संशोधित धारा 167(1)]

11. **जुर्माना–**यदि कोई कम्पनी वार्षिक साधारण सभा [धारा 166 के अनुसार] नहीं बुलाती है अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा वार्षिक साधारण सभा के लिए जारी किये गये निर्देशों [(धारा 167 के अन्तर्गत] का पालन नहीं करती है तो ऐसी कम्पनी के प्रत्येक दोषी अधिकारी पर पचास हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है तथा ऐसा दोष जारी रहने पर प्रथम दिन को छोड़कर आगे के प्रत्येक दिन के लिए 2500 रूपये तक का जुर्माना भी तब तक किया जा सकता है, जब तक कि ऐसा दोष आगे जारी रहता है। [2002 में संशोधित धारा 168]

12. **सभा की सूचना भेजना –**वार्षिक साधारण सभा की सूचना सभा से कम से कम 21 दिन पूर्व दी जानी आवश्यक है। [(धारा 171(1)] किन्तु, यदि सभा में मतदान का अधिकर रखने वाले सभी सदस्य कम अवधि की सूचना पर सहमति दे देते है तो कम अवधि की सूचना देकर भी सभा बुलाई जा सकती है। कम अवधि की सूचना पर सहमति उसी वार्षिक साधारण सभा में अथवा इसके पूर्व की किसी भी साधारण सभा में दी जा सकती है। किन्तु सामान्यतः सभा की सूचना के साथ ही एक सहमति–पत्र का प्रारूप भेज दिया जाता है जिस पर सदस्य अपने हस्ताक्षर करके भेज देते हैं। अतः सहमति पत्रों के माध्यम से ही कम अवधि की सूचना की सहमति प्राप्त कर ली जाती है।

13. **सभा की सूचना की विषयवस्तु–** वार्षिक साधारण सभा की सूचना में सामान्यतः अग्रलिखित बातों का समावेश होना आवश्यक है –

- **(i)** इस आशय का उल्लेख कि वार्षिक साधारण सभा का आयोजन किया जा रहा हे।
- **(ii)** सभा का समय, स्थान तथा तिथि
- **(iii)** सभा में किये जाने वाले कार्यो का विवरण।
- **(iv)** वित्तीय खातों तथा चिट्ठे की प्रतिलिपि ।
- **(v)** संचालकों का प्रतिवेदन।
- **(vi)** अंकेक्षकों का प्रतिवेदन (धारा 172)
- **(vii)** सभा में किये जाने वाले विशिष्ट कार्यो (यदि हो तो) का व्याख्यात्मक विवरण।

14. **सभा की सूचना प्राप्त करने के अधिकारी –** वार्षिक साधारण सभा की सूचना सामान्यतः निम्नलिखित को दी जानी चाहिएः

- **(i)** कम्पनी के प्रत्येक सदस्य।
- **(ii)** किसी मृतक सदस्य के उत्तराधिकारी।
- **(iii)** दिवालिया सदस्य के राजकीय प्रापक या निस्तारक।
- **(iv)** कम्पनी के अंकेक्षक। (धारा 172)

15. **गणपूर्ति संख्याः–** प्रत्येक कम्पनी के अन्तर्नियम में गणपूर्ति संख्या का उल्लेख होता है। अतः अन्तर्नियमों की व्यवस्था के अनुसार ही वार्षिक साधारण सभा में गणपूर्ति हेतु आवश्यक सदस्य व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने चाहिए।

किन्तु यदि अन्तर्नियमों में गणपूर्ति संख्या के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है तो एक सार्वजनिक कम्पनी की दशा में 5 तथा एक निजी कम्पनी की दशा में 2 सदस्य वार्षिक साधारण सभा में व्यक्तिगत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रूप से उपस्थित होने आवश्यक है। (धारा 174) यह उल्लेखनीय है कि अन्तर्नियमों में गणपूर्ति संख्या इतनी ही या इससे अधिक दी हुई हो सकती है किन्तु किसी भी दशा में इस संख्या से कम नहीं हो सकती है।

वार्षिक साधारण सभा के कार्य

वार्षिक साधारण सभा में किये जाने वाले कार्यो को दो भागो में बाँटा जा सकता है:

1. साधारण कार्य।
2. विशेष कार्य।

1. **साधारण कार्य** – 'साधारण कार्य' नैत्यिक प्रकृति के होते हैं। ये कार्य प्रति वर्ष ही साधारण सभा में किये जाते हैं। इन कार्यो में प्रमुख कार्य इस प्रकार है–

   (i) कम्पनी के वार्षिक खातों, चिट्ठे संचालकों तथा अंकेक्षकों की रिपोर्ट पर विचार विमर्श करना तथा उन्हें स्वीकार करना।

   (ii) वार्षिक लाभांश की घोषणा करना।

   (iii) पारी से रिटायर होने वाले संचालको के स्थान पर संचालक नियुक्त करना।

   (iv) आगामी वित्तीय वर्ष के लिए अंकेक्षकों की नियुक्ति करना तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करना।

2. **विशेष कार्य** – वार्षिक साधारण सभा में साधारण कार्यों के अतिरिक्त किये जाने वाले सभी कार्य विशेष कार्य कहलाते हैं। इन कार्यो के कुछेक उदाहरण इस प्रकार है:

   (i) कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना।
   (ii) कम्पनी की अधिकृत पूँजी को बढ़ाना।
   (iii) प्रबन्धक अथवा प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति करना।
   (iv) कम्पनी के सीमानियम में परिवर्तन करना।
   (v) नये संचालकों की नियुक्ति करना।

प्रश्न बोध –

1. वार्षिक साधारण सभा से आप क्या समझते है ?
2. वार्षिक साधारण सभा की सूचना में किन बातों को सम्मिलित किया जाता है ?
3. वार्षिक साधारण सभा में किये जाने वाले कार्यो का उल्लेख कीजिए।
4. वार्षिक साधारण सभा सम्बन्धी वैधानिक प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

असाधारण सामान्य सभा
[Extraordinary General Meeting]

कम्पनी अधिनियम 1956 की अनुसूची प्रथम की तालिका 'अ' के नियम 47 के अनुसार – ''वैधानिक सभा तथा वार्षिक साधारण सभा के अतिरिक्त यदि कम्पनी सदस्यों की कोई सभा आयोजित करती है तो वह असाधारण सामान्य सभा कहलाती है।''

असाधारण सभा कौन बुला सकता है ?

कम्पनी की असाधारण सभा निम्नलिखित पक्षकारों में से किसी के भी द्वारा बुलायी जा सकती है :

I. संचालक मण्डल द्वारा :
   (i) स्वयं अपनी राय से; अथवा
   (ii) सदस्यों द्वारा मांग किये जाने पर।
II. सभा बुलाने की मांग करने वाले सदस्यों द्वारा;
III. कम्पनी विधान मण्डल द्वारा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

असाधारण सभा के कार्य

कम्पनी की असाधारण सभा कुछ महत्वपूर्ण कार्यो को करने के लिए बुलायी जाती है। यद्यपि यह सभा वर्ष में चाहे जितनी बार बुलायी जा सकती है लेकिन ऐसी सभा में केवल वे ही कार्य किये जायेंगे जिनके लिए यह सभा बुलायी जा रही है।

असाधारण सामान्य सभा में किये जाने वाले कार्य विशेष कार्य ही माने जाते हैं। कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 173 के अनुसार निम्नलिखित कार्यो को छोड़कर सभी कार्य विशेष कार्य माने जाते है।

1. लेखों, स्थिति विवरण, अंकेक्षकों व संचालको के प्रतिवेदन पर विचार करना;
2. लाभांश घोषित करना;
3. सेवानिवृत्त होने वाले संचालक के स्थान पर नया संचालक नियुक्त करना; एवं
4. अंकेक्षक की नियुक्ति व पारिश्रमिक का निर्धारण करना।

असाधारण सामान्य सभा में सभी विशेष कार्य किये जा सकते है। इस प्रकार असाधारण सामान्य सभा में किये जा सकने वाले विशेष कार्य सामान्यतः निम्नांकित है :

1. पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना।
2. अधिकृत अंश पूँजी में कमी या वृद्धि करना।
3. अंश पूँजी का पुनर्गठन करना।
4. अंशो का बट्टे पर निर्गमन।
5. ऋण पत्र निर्गमित करना।
6. पंजीकृत कार्यालय एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना।
7. संचालकों के पारिश्रमिक में वृद्धि करना।
8. संचालकों को ऋण प्रदान करना।
9. अन्य किसी मामले पर प्रस्ताव पारित करने हेतु जिसके लिए अधिनियम में अनिवार्य व्यवस्था हों

प्रश्न बोध

1. असाधारण सामान्य सभा किसे कहते है ?
2. असाधारण सामान्य सभा कौन बुला सकता है ?
3. असाधारण सभा में किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख कीजिए ?

संचालक मण्डल की सभा
[Board Meeting]

कम्पनी के अधिकांश कार्यों का प्रबन्ध, संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। ये कम्पनी के सदस्यों के चुने हुए प्रतिनिधि है, इसलिए कम्पनी के सदस्यों के हितों की सुरक्षा के लिए तथा विभिन्न मामलों पर विचार विमर्श करने के लिए संचालकों का निरन्तर मिलना तथा विचार विमर्श करना जरूरी होता है। इसके लिए संचालक मण्डल की सभा बुलाई जाती है। अतः संचालकों की सभाओं का तात्पर्य संचालक मण्डल की सभाओं से ही लगाया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वैधानिक प्रावधान

कम्पनी के अन्तर्नियमों तथा कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार संचालक मण्डल की सभा से सम्बन्धित प्रमुख वैधानिक प्रावधान इस प्रकार है –

1. **सभाओं की अवधि एवं संख्या** – कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को अपने संचालक मण्डल की तीन महीनों में कम से कम एक बार तथा एक वर्ष में कम से कम चार बार सभाएँ बुलानी पड़ती है। [धारा 285]

2. **सभा बुलाने का अधिकार** – सामान्यतः संचालक मण्डल का अध्यक्ष ही कम्पनी की सभा बुला सकता है। किन्तु कोई भी संचालक कम्पनी के संचालक मण्डल की सभा बुलवा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी संचालक द्वारा मांग की जाती है तो कम्पनी का प्रबन्धक अथवा सचिव भी कम्पनी की सभा बुला सकता है। [प्रथम अनुसूची की सारिणी ''अ'' नियम 72(2)]

3. **सभा की सूचना** – संचालक मण्डल की प्रत्येक सभा की सूचना भारत में उपस्थित प्रत्येक संचालक को दी जानी चाहिए। ऐसी सूचना लिखित में दी जानी चाहिये। यदि कोई संचालक भारत से बाहर है तो भारत में उसके सामान्य पते पर सभा की सूचना दी जानी चाहिये। ऐसी सूचना देने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति सभा की सूचना देने में त्रुटि करता है तो उस पर एक हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है। [2000 में संशोधित धारा 286]

4. **सूचना की अवधि** – कम्पनी अधिनियम में संचालक मण्डल की सभा की सूचना की अवधि निर्धारित नहीं की गई है। अतः अन्तर्नियमों में दी गई अवधि की सूचना देकर संचालक मण्डल की सभा बुलाई जा सकती है। यदि अन्तर्नियमों में भी सभा की सूचना की कोई अवधि निर्धारित नही की गई है तो एक उचित सूचना देकर सभा बुलाई जा सकती है। उचित सूचना क्या होगी, यह प्रत्येक सभा की प्रकृति एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

5. **सूचना की विषयवस्तु या कार्यावली** – संचालक मण्डल की सभा की सूचना में सभा के कार्यो या उद्देश्यों को प्रकट करना अनिवार्य नही है। किन्तु असाधारण या विशेष रूप से बुलाई गयी सभा की सूचना में उसके उद्देश्यों का उल्लेख कर देना चाहिए। वैसे कानूनी दृष्टि से संचालक मण्डल की सभा की कार्यावली सभा की सूचना के साथ संलग्न की जानी आवश्यक नही है। किन्तु व्यवहार में ऐसी कार्यावली अवश्य बनायी एवं सूचना के साथ संलग्न की जानी चाहिए।

6. **सभा का समय एवं दिन** – संचालक मण्डल की सभा कार्यों के घण्टों या कारोबार के समय किसी भी कार्य दिवस में की जा सकती हैं।

7. **सभा का स्थान**– सभा सामान्यतः उसी स्थान पर होनी चाहिए जिसका सभा की सूचना में उल्लेख कर दिया गया है। किन्तु सभा किसी भी स्थान पर की जा सकती है तथा यहाँ तक की यह अनौपचारिक वातावरण में भी की जा सकती है। बशर्ते सभी संचालकों को इसकी सूचना दे दी गई हो तथा सभी उपस्थित संचालक औपचारिकताओं को छोड़ने के लिए तैयार हो।

8. **कार्यवाहक संख्या या गणपूर्ति** – संचालक मण्डल की सभा के लिए भी सभा में कार्यवाहक संख्या के बराबर संचालकों का उपस्थित होना आवश्यक है। अन्यथा संचालक मण्डल की सभा नही की जा सकती है। कम्पनी अधिनियम की धारा 284 के अनुसार संचालक मण्डल की सभा के लिए संचालकों की कुल संख्या का एक तिहाई भाग अथवा दो संचालक, दोनों में से जो भी संख्या अधिक हो, वही कार्यवाहक संख्या मानी जाएगी।

9. **सभा का स्थगन** – संचालक मण्डल की सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही तक कार्यवाहक संख्या की उपस्थिति आवश्यक है। यदि अन्तर्नियमों में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं है तो कार्यवाहक संख्या के बराबर संचालक सभा में उपस्थित न होने पर सभा स्थगित हो जाती है। वह स्थगित सभा पुनः अगले सप्ताह, उसी समय, उसी दिन तथा उसी स्थान पर होती है।

10. **सभा में निर्णय तथा मतदान** – यदि अधिनियम में कोई प्रावधान न हो तो संचालक मण्डल की सभा में निर्णय कम्पनी के अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार लिया जाता है। यदि किसी सीमित दायित्व वाली सार्वजनिक कम्पनी ने अन्तर्नियम न बनाया हो तो वह सारणी ''अ'' के नियम 74 को अपना सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसमें लिखा है कि संचालक मण्डल की सभा में बहुमत से लिये जायेगें तथा किसी विषय पर पक्ष एवं विपक्ष में बराबर मत आने पर अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

11. **प्रतिपुरूष–** संचालक मण्डल की सभा में सामान्यतः प्रतिपुरूष नियुक्त करने की प्रथा नही है। कम्पनी अधिनियम में भी इस प्रकार का कोई प्रावधान नही है। किन्तु लम्बे समय के लिए अनुपस्थित या विदेश गये संचालकों के स्थान पर वैकल्पिक संचालक नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे संचालक को भी मत देने तथा अन्य सभा सम्बन्धी अधिकार होते है।

12. **सभा का सभापति –** संचालक मण्डल की सभा के सभापति की नियुक्ति के सम्बन्ध में भी नियम कम्पनी के अन्तर्नियमों में दिये रहते है। यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में व्यवस्था नहीं है तो कम्पनी प्रथम अनुसूची की सारणी ''अ'' के नियमों का पालन कर सकती है।

13. **संचालकों का उपस्थिति रजिस्टर –** संचालकों की उपस्थिति का भी लेखा रखा जाता है। इस हेतु कम्पनी द्वारा एक संचालकों की उपस्थिति का रजिस्टर बनाया जाता है। उस रजिस्टर में संचालकों के नाम तथा उनकी सभा में उपस्थिति की तिथि अंकित की जाती है तथा उपस्थिति के हस्ताक्षर कराये जाते है।

संचालक मण्डल की सभा में किये जाने वाले

कम्पनी अधिनियम की **धारा 291** में संचालक मण्डल को कम्पनी के प्रबन्ध एवं संचालन के सम्बन्ध में व्यापक अधिकार दिये गये है। अधिनियम की **धारा 292** में यह व्यवस्था है कि निम्नांकित अधिकारों का प्रयोग केवल संचालक मण्डल की सभा में पारित प्रस्ताव के माध्यम से ही किया जा सकता है।

1. अंशधारियों से अंशों पर बकाया राशि की याचना करना।
2. ऋणपत्र जारी करना।
3. ऋणपत्र के अतिरिक्त अन्य तरीकों से उधार लेना।
4. कम्पनी की निधियों का विनियोग करना।
5. कम्पनी की ओर से ऋण देना।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी संचालक मण्डल की सभा में पारित प्रस्ताव से ही होते है, ऐसे अन्य कार्य इस प्रकार है–

1. अंशों का आबंटन करना।
2. अंश हस्तान्तरण स्वीकार करना।
3. कम्पनी की सार्वमुद्रा के प्रयोग का अधिकार देना।
4. लाभांश भुगतान की सिफारिश करना।
5. अन्तरिम लाभांश देना।
6. प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति करना।
7. महत्वपूर्ण अनुबन्धों को स्वीकार करना।
8. कम्पनी के व्यापार का प्रबन्ध करना।
9. विभिन्न कोषों का निर्माण करना।
10. अन्य उपयुक्त कार्य जिनके लिए संचालक अधिकृत है।

प्रश्न बोध –

1. संचालक मण्डल की सभा से आपका क्या अभिप्राय है ?
2. संचालक मण्डल की सभा की अवधि व संख्या, सूचना तथा स्थान सम्बन्धी वैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए ?
3. संचालक मण्डल की सभा में कार्यवाहक संख्या, सभा का स्थगन, प्रतिपुरूष सम्बन्धी वैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिए।
4. संचालक मण्डल की सभा में किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय पंचम

बहुमत की शक्तियाँ और अल्पमत के अधिकार

सिद्धान्तः यह सत्य है कि संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों का प्रबन्ध उसके अंशधारियों के हाथ में होता है। संचालकों की नियुक्ति अंशधारी करते है तथा अंशधारियों के निर्देशों पर संचालक मण्डल कम्पनी का प्रबन्ध करते है। व्यवहार में स्थिति यह है कि कम्पनियों का प्रबन्ध प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर ही किया जाता है। प्रायः निर्णय बहुमत पर आधारित होते है।

अंशों द्वारा सीमित प्रत्येक कम्पनी के सदस्य को कम्पनी की सभा में प्रत्येक प्रस्ताव पर अपना मत देने का अधिकार होता है। वह उतने ही मत देने का अधिकारी होता है जितने उसके पास कम्पनी के समता अंश होते है। दूसरों शब्दों में एक सदस्य उसी अनुपात में मत शक्ति रखता हैं, जिस अनुपात में वह कम्पनी की प्रदत्त समता अंश पूँजी धारित करता है। प्रत्येक सदस्य अपने मतों का इच्छानुसार पक्ष या विपक्ष में उपयोग करने या मतों का बिल्कुल उपयोग नही करने के लिए स्वतंत्र होता है। कोई भी प्रस्ताव तब स्वीकृत या पारित हुआ माना जाता है जबकि उस प्रस्ताव को कम से कम आवश्यक मात्रा में बहुमत हेतु मत प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार कम्पनी के कार्यकलापों के प्रबन्ध में **बहुमत का नियम** ही लागू होता है।

बहुमत के निर्णय के हितों को अनदेखी एवं उपेक्षा कर सकते है तथा संचालकों की मनमर्जी कुप्रबन्ध को भी जन्म दे सकती है। इस प्रकार अल्पमत के अंशधारियों के हितों के साथ अन्याय हो सकता है तथा कुप्रबन्ध पनपकर कम्पनी को अलाभ की स्थिति में ढकेला जा सकता है।

बहुमत का नियम/प्रबन्ध

कम्पनियों के आन्तरिक प्रबन्ध के बहुमत का प्रभुत्व होता है। बहुमत का निर्णय कम्पनियों के आन्तरिक प्रबन्ध में बहुमत का प्रभुत्व होता है। बहुमत का निर्णय ही सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ट माना जाता है। अतः कम्पनियों में किया जाने वाला प्रत्येक निर्णय बहुमत से ही किया जाता है। कम्पनी के सम्बन्ध में बहुमत के नियम या बहुमत के प्रभुत्व के नियम में निम्नलिखित बाते निहित है:–

1. यह सामान्य धारणा है कि जो व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बनता है, वह यह जानता है कि कम्पनी में बहुमत की इच्छा का ही प्रभुत्व होता है। अतः प्रत्येक सदस्य के सम्बन्ध में यह धारणा होती है कि वह **बहुमत के सामने नतमस्तक है।**
2. कम्पनी से सम्बन्धित सभी बातों का निर्णय करने का अधिकार बहुमत को ही प्राप्त होता है।
3. विधिवत् रूप से बुलायी एवं संचालित की गई सभा में अपेक्षित **बहुमत से लिया** गया निर्णय सभी सदस्यों (यहाँ तक कि अल्पमत वाले तथा मतदान में भाग नही लेने वाले सदस्यों) **तथा सम्पूर्ण कम्पनी पर लागू होता है।**
4. यदि बहुमत वाले अंशधारियों द्वारा कम्पनी में कुछ गलत भी किया जाता है तो भी अल्पमत वाले सामान्यतः कोई शिकायत नहीं कर सकते है। ऐसे **गलत कार्य के विरूद्ध कम्पनी को ही अपने नाम से वाद प्रस्तुत करना पड़ता है** तथा कोई भी सदस्य अपनी ओर से तथा अपने नाम से गलत कार्य करने वालों के विरूद्ध सामान्यतः वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।
5. सामान्यतः न्यायालय कम्पनी के संचालको द्वारा किये जा रहे **आन्तरिक प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप तब तक नहीं करता है जब तक कि वे कम्पनी के अन्तर्नियमों के अधीन** प्राप्त अपने अधिकारों के भीतर रहकर कार्य करते है।
6. बहुमत द्वारा पारित प्रस्तावों के परिणामों से अल्पमत वाले अंशधारियों को सुरक्षा प्राप्त करने के लिए भी न्यायालय सामान्यतः किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करता है।
7. कोई भी सदस्य अथवा अल्पमत वाले अंशधारियों का कोई भी समूह **कम्पनी के संचालकों के विरूद्ध सामान्यतः वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।** किन्तु, जब संचालको का किसी भी सदस्य के प्रति व्यक्तिगत कर्त्तव्य होता है तथा वे उस **कर्त्तव्य को भंग करते हैं तो कोई भी सदस्य उनके विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।** उदाहरण के लिए यदि संचालक किसी भी अंशधारी को मतदान के अधिकार से वंचित करते है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अथवा घोषित लाभांश चुकाने से इन्कार करते है तो वह अंशधारी उन संचालको के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

बहुमत के प्रभुत्व के नियम के अपवाद

1. **अधिकारातीत** – यदि कम्पनी या संचालकों द्वारा किया गया कार्य सीमानियम के द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बाहर है तो बहुमत का नियम (अर्थात् फॉस बनाम हरबॉटल द्वारा प्रतिपादित नियम) लागू नहीं होता है।
2. **अवैधानिक कार्य –** जब बहुमत वाले अंशधारियों द्वारा कोई अवैधानिक या विधि विरूद्ध कार्य किया जाता है तो भी बहुमत का नियम लागू नहीं होता है।
3. **विशेष बहुमत की आवश्यकता वाले कार्यो की दशा में –** कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कुछ कार्यो को करने से पूर्व साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करना आवश्यक होता है। यदि ऐसा कोई कार्य विशेष प्रस्ताव पारित किये बिना (अर्थात तीन–चौथाई से कम बहुमत से प्रस्ताव पारित कर) किया जाता है तो कम्पनी का कोई भी सदस्य उस प्रस्ताव को न्यायालय में चुनौती दे सकता है।
4. **गलत कार्य करने वालों के हाथ में नियंत्रण होने पर–** प्रत्येक अंशधारी/सदस्य को कम्पनी के विरूद्ध कुछ अधिकार होते है। उदाहरणार्थ, प्रत्येक सदस्य को कम्पनी की सभा की सूचना प्राप्त करने, सभा में उपस्थित होने एवं मतदान करने, संचालक पद पर चुनाव लड़ने, घोषित लाभांश प्राप्त करने आदि के अधिकार होते हैं। ये सभी अधिकार कम्पनी अधिनियम द्वारा प्रत्येक सदस्य को प्रदान किये गये है। इसी प्रकार कुछ अधिकार कम्पनी के अन्तर्नियमों के अधीन भी प्रदान किये जा सकते है। ऐसी परिस्थितियों में भी बहुमत का नियम लागू नहीं होता है। किसी भी सदस्य के इन अधिकारों को कितने ही बहुमत से पारित प्रस्ताव से छीना नही जा सकता है। यदि छीना जाता है तो कोई भी सदस्य कम्पनी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करके अपने अधिकार सुनिश्चित कर सकता है।
5. **अल्पमत वालों के साथ कपट की दशा में–** बहुमत का नियम तब भी लागू नही होता है जबकि बहुमत वाले सदस्य अपनी शक्ति का उपयोग अल्पमत वाले सदस्यों के साथ कपट करने के लिए करते हैं। यदि बहुमत वाले सदस्य कोई ऐसा प्रस्ताव पारित करते है जिससे अल्पमत वाले सदस्यों के साथ अन्याय होता है तो न्यायालय किसी भी सदस्य या अल्पमत वाले सदस्यों के किसी भी समूह को उनके विरूद्ध कार्यवाही की अनुमति दे सकता है।
6. **अन्याय एवं कुप्रबन्ध की दशा में –** बहुमत का नियम तब भी लागू नहीं होता है जबकि बहुमत वाले सदस्य अपनी शक्ति का इस प्रकार उपभोग करते है, जिससे कम्पनी में कुप्रबन्ध को बढ़ावा मिलने लगता है। **कम्पनियों में अन्याय एवं कुप्रबन्ध की रोकथाम** सम्बन्धी प्रावधानों का नीचे वर्णन किया जा रहा है।

अन्याय एवं कुप्रबन्ध की रोकथाम
[Prevention of Oppression and Mismanagement]

कम्पनियों का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक प्रणाली से किया जाता है। इस व्यवस्था में बहुमत वाले अंशधारियों का प्रभुत्व बना रहता है। कम्पनी की सभाओं में सामान्यतः बहुमत वाले अंशधारी वही कुछ करवाने में सफल हो जाते हैं जो अपने हितों में समझते है। इससे कई बार कम्पनी में अल्पमत वाले अंशधारियों के हितों के विरूद्ध कार्य होने लगता है अथवा उनके साथ अन्याय होने लगता हैं। कभी–कभी धीरे–धीरे सम्पूर्ण कम्पनी में कुप्रबन्ध भी फैल सकता है जो अल्पमत वाले अंशधारियों, सम्पूर्ण कम्पनी तथा सार्वजनिक हितों में नहीं होता।

कम्पनी अधिनियम 1956 में अन्याय व कुप्रबन्ध की रोकथाम की समुचित व्यवस्था करने के लिए वैधानिक प्रावधान किये गये है। कम्पनी अधिनियम की धाराएँ 397 से 409 तक अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों द्वारा किये जाने वाले अन्याय एवं कुप्रबन्ध से संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रवर्तित की गयी। इसके लिए केन्द्रीय सरकार एवं कम्पनी विधान मण्डल को व्यापक अधिकार दिये गये है।

सुविधा की दृष्टि से अन्याय एवं कुप्रबन्ध की रोकथाम के लिए इनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

I. अन्याय की रोकथाम
II. कुप्रबन्ध की रोकथाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

I. अन्याय की रोकथाम – अन्याय के अन्तर्गत ऐसे सब कार्य आते है जो प्रमुख रूप से सदस्यों के हितों के साथ कुठाराघात करने वाले हों तथा उनको कष्ट पहुँचाने वाले एवं अन्यायपूर्ण हो। भारत के उच्चतम न्यायालय ने एक विवाद में इन्हीं विचारो का समर्थन किया है।

लार्ड कूपर के अनुसार– ''यदि किसी सदस्य पर ऐसा भार या दायित्व सौंप दिया गया है जो निर्दयतापूर्ण, अन्यायपूर्ण एवं कठोर है तो यह कहा जा सकेगा कि कम्पनी ने उस सदस्य के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार किया है।''

अन्यायपूर्ण कार्य : न्यायिक निर्णयों के अनुसार अन्याय में निम्नलिखित प्रकार के कार्यो को सम्मिलित किया गया है :

1. अल्पमत वाले सदस्यों एवं अंशधारियों पर अधिक दायित्व एवं जोखिम डालने वाले कार्य।
2. किसी सदस्य को उसके मूल अधिकारों से वंचित करने सम्बन्धी कार्य।
3. संचालक–मण्डल द्वारा कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों की घोर अनदेखी एवं उपेक्षा सम्बन्धी कार्य।
4. संचालन के मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा करने वाले कार्य।
5. सदस्यों के हितों पर कुठाराघात करने वाले कार्य।
6. लोकनीति एवं सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा करने वाले कार्य।
7. ऐसे ही अन्य कार्य जिसे न्यायालय एवं केन्द्रीय सरकार अनुचित माने।

II. कुप्रबन्ध की रोकथाम (Prevention of Mismanagement)

जहाँ सुप्रबन्ध कम्पनी की प्रगति एवं विकास में चार चाँद लगा सकता है, वहीं कुप्रबन्ध कम्पनी को निरन्तर हानि तथा सम्बन्धित सदस्यों के हितों को गम्भीर नुकसान पहुँचा सकता है। कुप्रबन्ध संचालकों एवं प्रबन्धकों की उपेक्षा, उदासीनता व लापरवाही, स्वार्थपूर्ण संचालन एवं प्रबन्ध का ही परिणाम होता है।

वैधानिक प्रावधान :

1. **कुप्रबन्ध की अवस्थाएँ** – कुप्रबन्ध को प्रदर्शित करने वाली प्रमुख रूप से निम्नलिखित अवस्थाएँ है :
   (i) कम्पनी का प्रबन्ध सामान्य हित तथा जनहित के विरूद्ध किया जा रहा हो, अथवा
   (ii) कम्पनी के प्रबन्ध में ऐसा परिवर्तन कर दिया गया है जिससे कम्पनी का संचालन जनहित एवं कम्पनी के हितों के विरूद्ध हो जाने की पूरी सम्भावना हो। [धारा 398]
2. **आवेदन–पत्र के लिए अधिकृत व्यक्ति :** धारा 399 की उपर्युक्त वर्णित व्यवस्थाओं के अनुसार वे व्यक्ति कुप्रबन्ध की अवस्था में भी आवेदन–पत्र प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत माने गये है। जिस प्रकार वे अन्याय की दशा में अधिकृत है।
3. **स्वयं केन्द्रीय सरकार :** केन्द्रीय सरकार या उसके अधिकृत अन्य कोई व्यक्ति कुप्रबन्ध को रोकने के लिए कम्पनी विधान मण्डल को आवेदन कर सकता है।
4. **कम्पनी विधान मण्डल द्वारा आदेश** : उपरोक्त आवेदन के आधार पर कम्पनी विधान मण्डल को यह विश्वास हो जाता है कि कम्पनी का प्रबन्ध ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है और इससे कम्पनी के सामान्य हितों को नुकसान पहुँच रहा है, तो वह उसे रोकने के लिए ऐसा आदेश दे सकता है जिसे वह उचित समझें।
5. **केन्द्रीय सरकार को सूचना :** कुप्रबन्ध की दशा में आवेदन–पत्र प्राप्त होने पर कम्पनी विधान मण्डल प्रायः ऐसे आवेदन–पत्र की सूचना केन्द्रीय सरकार को प्रेषित करता है और केन्द्रीय सरकार से इस सम्बन्ध में यदि कोई पत्र प्राप्त करता है तो उस पर विचार करने के बाद ही कोई आदेश निर्गमित करता है।

प्रश्न बोध –

1. बहुमत के नियम से आप क्या समझते है ?
2. किसी कम्पनी में कुप्रबन्ध की अवस्थाएँ बताइयें।
3. कम्पनी अधिनियम 1956 में अल्पसंख्यकों के साथ बहुसंख्यक सदस्यों द्वारा किये जाने वाले अन्याय एवं कुप्रबन्ध की रोकथान सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय–षष्टम
कम्पनी का समापन
[Winding up of Company]

आशय– कम्पनी विधान मण्डल द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति है। अतः इसका समापन भी विधान के अन्तर्गत दी हुई विधियों द्वारा ही हो सकता है। इस संदर्भ में कम्पनी के समापन से आशय उस वैधानिक रीति से है जिसके द्वारा कम्पनी का अन्त हो जाता है।

कम्पनी के समापन का आशय उसके कारोबार को बन्द करने की प्रक्रिया से लगाया जाता है जिसके द्वारा कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व को समाप्त किया जाता है। इस प्रक्रिया से कम्पनी की सम्पत्तियों का मूल्य प्राप्त करके ऋणदाताओं को उनके ऋणों का भुगतान किया जाता है तथा शेष धन यदि हो तो अंशधारियों में बाँट दिया जाता है और इसके बाद कम्पनी का कार्य संचालन बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया से कम्पनी का पूर्ण विघटन हो जाता है।

प्रो. गोवर ने कम्पनी के समापन के सम्बन्ध में कहा है कि ''कम्पनी के समापन से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा इसका जीवन समाप्त किया जाता है।''

परिभाषाएँ –

एम.सी. कुच्छल के अनुसार – ''कम्पनी के समापन का आशय उस प्रक्रिया से है जो एक कम्पनी के जीवन का अन्त करती है।''

पेरिस एण्ड जाफरी के अनुसार – ''समापन का आशय किसी कम्पनी की सम्पत्तियों का उपयोग उसके दायित्वों का भुगतान करने के लिए किया जाता है और यदि कोई आधिक्य धन हो तो अधिकृत पक्षकारों को लौटा दिया जाता है। इस कार्य के लिए जो वैधानिक प्रक्रिया अपनायी जाती हैं। उसे समापन कहते है।

कम्पनी का समापन तथा समाप्ति (विघटन) में अन्तर

समापन वैधानिक अस्तित्व की समाप्ति है जबकि समाप्ति का आशय कम्पनी के अस्तित्व का पूर्णरूपेण अन्त हो जाना है। इन दोनों में अन्तर निम्न आधारों पर किया जा सकता है–

क्र.स.	अन्तर का आधार	कम्पनी का समापन	कम्पनी की समाप्ति या विघटन
1.	आशय	समापन कम्पनी को समाप्त करने की प्रक्रिया का नाम है।	समाप्ति समापन प्रक्रिया का परिणाम है।
2.	उद्देश्य	समापन का उद्देश्य समाप्ति तक पहुचनाँ है।	समाप्ति उद्देश्य नही स्वयं एक परिणाम है।
3.	अस्तित्व	समापन के समय कम्पनी अस्तित्व में बनी रहती है।	समाप्ति होते ही कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व का अंत हो जाता है।
4.	सम्पत्ति वसूली एवं भुगतान	समापन के समय सम्पत्तियों को बेचकर धन वसूल किया जाता है तथा उसे ऋणदाताओं में बाँट दिया जाता है।	समाप्ति में सब कुछ हो जाने का नाम है। समाप्ति के बाद कोई कार्य शेष नही रहता है।
5.	निस्तारक	समापन का कार्य निस्तारक द्वारा किया जाता है।	समाप्ति पर जब कम्पनी का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है तो निस्तारक का कोई पद नही रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.	ऋणों का भुगतान	समापन के समय ऋणदाता अपने द्वारा दिये गये ऋणों को प्रमाणित करते है।	समाप्ति पर ऋणों के प्रमाणन का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है। क्योंकि कम्पनी का अस्तित्व नही रहता है।
7.	रीति	समापन कम्पनी का विघटन या समाप्त करने की एक रीति है।	विघटन समापन हुए बिना भी हो सकता है।
8.	व्यापार का संचालन	यदि समापन की कार्यवाही के दौरान कम्पनी के व्यापार का संचालन करना कम्पनी के हित में है तो ऐसा किया जा सकता है।	लेकिन कम्पनी की समाप्ति की दशा में व्यापार के संचालन होने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता हे।
9	सदस्यों में सम्पत्तियों का वितरण	समापन की दशा में निस्तारक द्वारा कम्पनी की सम्पत्तियों की वसूली की जाती है और दायित्वों का भुगतान करने के पश्चात् यदि सम्पत्तियां अधिक्य हो तो सदस्यों में वितरित कर दी जाती है।	सभी कार्य पूर्ण होने के पश्चात् कम्पनी की समाप्ति होती है। इसलिए सम्पत्तियों के बाँटने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है।

समापन की विधियाँ

कम्पनी के समापन की दो प्रमुख विधियाँ है, जो निम्नानुसार है :–

I. अधिकरण द्वारा समापन,

II. ऐच्छिक समापन।

A. सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन,

B. ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन।

I. **अधिकरण द्वारा समापन या अनिवार्य समापन** – जब कम्पनी के सदस्य एक विशेष प्रस्ताव पारित करके अधिकरण के आदेश से कम्पनी का समापन करवाने की प्रार्थना करे अथवा अधिकरण कम्पनी की विभिन्न परिस्थितियों को देखते हुए उसका समापन उचित समझे तो अधिकरण कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। इसे ही अधिकरण द्वारा समापन कहते है। इसे अधिकरण द्वारा अनिवार्य समापन के नाम से भी जाना जाता है।

परिस्थितियाँ – कम्पनी अधिनियम की **धारा 433** के अनुसार ऐसा समापन निम्नलिखित में से किसी भी परिस्थिति में हो सकता है।

1. विशेष प्रस्ताव पारित होने पर
2. वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में त्रुटि करने पर
3. वैधानिक सभा बुलाने में त्रुटि करने पर।
4. व्यवसाय प्रारम्भ न करने पर।
5. न्यूनतम सदस्य संख्या में कमी होने पर।
6. ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ रहने पर।
7. उचित एवं न्याय संगत होने पर।
8. पांच वर्षों तक निरन्तर चिट्ढा, लाभ–हानि खाता या वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने में त्रुटि करने पर।
9. भारत की सम्प्रभुता, एकता, सुरक्षा आदि के विरूद्ध कार्य करने पर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समापन के लिए आवेदन पत्र कौन दे सकता है

कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए अधिकरण को निम्नलिखित में से कोई भी व्यक्ति आवेदन पत्र दे सकता है–

1. स्वयं कम्पनी द्वारा
2. ऋणदाताओं द्वारा
3. अंशदाताओं द्वारा
4. रजिस्ट्रार द्वारा
5. केन्द्रीय सरकार द्वारा
6. निस्तारक द्वारा

अधिकरण द्वारा अनिवार्य समापन की विधि – कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए निम्नलिखित विधि अपनायी जाती है –

1. **आवेदन करना** – सर्वप्रथम सम्बन्धित पक्षकारों को अधिकरण के समक्ष कम्पनी के समापन के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। यह आवेदन पत्र स्वयं कम्पनी, ऋणदाताओं, रजिस्ट्रार, केन्द्रीय सरकार, निस्तारक द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. **कम्पनी द्वारा स्थिति विवरण प्रस्तुत करना** – चाहे कम्पनी समापन हेतु आवेदन करती है अथवा किसी अन्य द्वारा किये गये ऐसे आवेदन का विरोध करती है (दोनों ही दशाओं मे) कम्पनी को एक स्थिति विवरण अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। इस विवरण में निम्नांकित बातों का उल्लेख होगा –

   1. कम्पनी के सभी संचालकों तथा कम्पनी सचिव का अन्तिम ज्ञात पते।
   2. कम्पनी की सम्पत्तियों के स्थानों का विस्तृत विवरण तथा उनका मूल्य।
   3. सभी लेनदारों तथा देनदारों के पूर्ण पतो सहित विस्तृत जानकारी।
   4. सभी श्रमिको तथा अन्य कर्मचारियों का विस्तृत विवरण तथा उन्हें देय राशि।
   5. अन्य कोई विवरण जिसके लिए अधिकरण द्वारा निर्देश दिया जाये।

3. **अधिकरण द्वारा आवेदन पत्र का अध्ययन करना** – जब अधिकरण किसी कम्पनी के समापन हेतु प्रार्थना पत्र प्राप्त करना है तो वह इसका अध्ययन करता है। प्रारम्भिक रूप से संतुष्ट होने पर आगे की कार्यवाही की जाती है।

4. **राजपत्र में सुनवाई का विज्ञापन –** तत्पश्चात् अधिकरण इस आवेदन पत्र या याचिका को राजपत्र में प्रकाशित करवाता है। इसमें याचिका की सुनवाई की तिथि भी दी जाती है।

5. **याचिका की सुनवाई का विज्ञापन–** जिस दिन याचिका की सुनवाई की जाती है उससे कम से कम 14 दिन पूर्व एक विज्ञापन द्वारा याचिका की सुनवाई की तिथि की घोषणा करनी पड़ती है।

6. **अधिकरण का आदेश–** अधिकरण जब याचिका से सम्बन्धित सभी पक्षकारों की सुनवाई कर लेता है तो निम्नलिखित में से किसी भी प्रकार का आदेश दे सकता है–

   i. वह याचिका को बिना खर्च तथा खर्च सहित अस्वीकार कर सकता है।
   ii. वह सुनवाई को सशर्त या बिना किसी शर्त के स्थगित कर सकता है।
   iii. वह उचित समझे तो अन्तरिम आदेश दे सकता है।
   iv. वह उचित समझे तो खर्च सहित अथवा खर्च रहित अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है।

7. **समापन का आदेश नही देना**– जब कम्पनी के समापन की याचिका उचित एवं न्यायसंगत कारण के आधार पर नहीं की जाती है तो भी अधिकरण उस कारण के आधार पर समापन का आदेश देने से इन्कार कर सकता है। इसी प्रकार यदि अधिकरण यह समझता है कि किसी अन्य प्रकार से उस कारण का निवारण किया जा सकता है तो समापन का आदेश नहीं देता है।

8. **वैधानिक सभा बुलाने के लिए आदेश देना–** यदि कम्पनी के समापन की याचिका इस आधार पर दी गई है कि कम्पनी ने यथा समय अपनी वैधानिक सभा नही बुलवाई है अथवा वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत नही की है तो अधिकरण कम्पनी की वैधानिक सभा बुलाने अथवा रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. **समापन की दशा में निस्तारक की नियुक्ति करना** – यदि अधिकरण कम्पनी के समापन का आदेश दे देता है तो वह कम्पनी के लिए निस्तारक नियुक्त कर देता है। वह इसकी सूचना निस्तारक के रूप में नियुक्त व्यक्ति को तथा रजिस्ट्रार को भेज देता है।

10. **समापन आदेश की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना–** कम्पनी के समापन की तिथि के 30 दिनों के भीतर कम्पनी को तथा समापन के लिये आवेदन करने वाले व्यक्ति को समापन आदेश की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत कर देनी चाहिए।

11. **स्थिति विवरण प्रस्तुत करना** – जब कम्पनी के समापन का आदेश जारी कर दिया जाता है और निस्तारक की नियुक्ति हो जाती है, तो कम्पनी के संचालक तथा सचिव कम्पनी का स्थिति विवरण तैयार करते है। यह स्थिति विवरण निस्तारक को दे दिया जाता है। इस स्थिति विवरण में कम्पनी के पास नकद राशि, बिल, चैक, कम्पनी के ऋणों तथा दायित्वों, ऋणदाताओं तथा देनदारों का सम्पूर्ण विवरण होता है।

12. **निस्तारक द्वारा प्रारम्भिक रिपोर्ट** – समापन के आदेश के छः माह के भीतर निस्तारक को एक प्रारम्भिक रिपोर्ट अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करनी होती है। इस रिपोर्ट में कम्पनी की पूँजी, सम्पत्तियाँ ऋणों का विवरण होता है। इस रिपोर्ट में उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है। जिनके परिणाम स्वरूप कम्पनी असफल हो गयी है।

13. **कम्पनी के विघटन की घोषणा** – जब निस्तारक सभी सम्पत्तियों का दायित्व के भुगतान में उपयोग कर लेता है और जब अधिकरण यह उचित समझता है कि निस्तारण सम्पत्तियों अथवा कोषों के अभाव में समापन की कार्यवाही आगे जारी नही रख सकता है तो वह (अधिकरण) एक आदेश जारी करके कम्पनी के विघटन की घोषणा कर देता है।

14. **विघटन की सूचना रजिस्ट्रार को भेजना** – कम्पनी के निस्तारक को कम्पनी के विघटन के आदेश की प्रतिलिपि 30 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत कर देनी चाहिए। यदि वह इसमें त्रुटि करता है तो उस पर पांच सौ रूपये प्रतिदिन तक का जुर्माना तब तक किया जा सकता है जबकि तब कि ऐसी त्रुटि जारी रहती है।

समापन आदेश के परिणाम/प्रभाव

अधिकरण द्वारा समापन का आदेश देने के निम्न लिखित परिणाम होते है :

1. सरकारी निस्तारक तथा रजिस्ट्रार को सूचना देना।
2. आदेश प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के सम्मुख प्रस्तुत करना।
3. रजिस्ट्रार द्वारा समापन विवरण दर्ज करना तथा गजट में प्रकाशित करवाना।
4. समापन आदेश कर्मचारियों तथा अधिकारियों द्वारा नोटिस के रूप में मानना।
5. वैधानिक कार्यवाही पर रोक।
6. संचालकों का अंकेक्षित लेखा पुस्तकें सौपनें का दायित्व।
7. समापन का आदेश सभी पर लागू होना।
8. सरकारी निस्तारक कम्पनी का निस्तारक होना।
9. समापन आदेश के बाद सम्पत्तियों का विक्रय तथा हस्तान्तरण व्यर्थ।
10. समापन आदेश के पूर्व की छः माह की अवधि में सम्पत्ति का हस्तान्तरण व्यर्थ।

प्रश्न बोध –

1. कम्पनी के समापन से आप क्या समझते है ?
2. कम्पनी के समापन तथा विघटन में अन्तर बताइयें।
3. कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए अधिकरण को कौन आवेदन कर सकता है ?
4. किन–किन परिस्थितियों में अधिकरण कम्पनी का समापन कर सकता है ?
5. अधिकरण द्वारा अनिवार्य समापन की विधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. अधिकरण द्वारा अनिवार्य समापन आदेश के परिणामों/प्रभावों को बताइयें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. ऐच्छिक समापन

सामान्य शब्दों में ऐच्छिक समापन का आशय उस समापन से है जो कम्पनी के सदस्यों अथवा लेनदारो द्वारा बिना न्यायालय के हस्तक्षेप के किया जाता है।

धारा 518 के अनुसार ''कम्पनी के ऐच्छिक समापन का आशय यह होता है कि सदस्यों अथवा लेनदारों को न्यायालय की शरण में गये बिना ही अपने आपसी मामले समझौते द्वारा हल करने का अवसर मिलता है। तथापि यदि वे चाहे तो ऐच्छिक समापन के समय भी न्यायालय से निर्देश प्राप्त कर सकते है।

कम्पनी का ऐच्छिक समापन दो प्रकार से हो सकता है :

A. सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन।

B. ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन।

A. **सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन** – जब कम्पनी के सदस्य स्वैच्छा से कम्पनी का समापन करना चाहते है तो उसे सदस्यों द्वारा कम्पनी का ऐच्छिक समापन कहते है। सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख वैधानिक व्यवस्थाएं है :

1. **शोधन क्षमता की घोषणा करना** – यदि कम्पनी के सदस्य कम्पनी का स्वैच्छिक समापन करना चाहते हैं तो कम्पनी के दों संचालकों अथवा संचालको के बहुमत को एक घोषणा करनी पड़ती है। जिस शोधन क्षमता की घोषणा के नाम से पुकारा जाता है। इस घोषणा से सचांलक यह शपथपूर्वक घोषित करते है कि उन्होनें कम्पनी के सम्पूर्ण कार्यो के सम्बन्ध में जांच कर ली है तथा वे इस निषकर्ष पर पहुँचे है कि कम्पनी पर कोई ऋण बकाया नहीं है अथवा कम्पनी अपने समापन के प्रारम्भ होने के तीन वर्षो के भीतर अपने समस्त ऋणों को चुकाने में समर्थ है।

[धारा 488 (1)]

2. **घोषणा रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना** – जब संचालक कम्पनी की शोधन क्षमता की घोषणा करते है तो उन्हें इस घोषणा को रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। यह घोषणा कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित करने से पूर्व के पाँच सप्ताहों के भीतर ही रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि संचालकों ने कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित होने के पाँच सप्ताह पहले की अवधि में ऐसी घोषणा रजिस्ट्रार को प्रस्तुत कर रखी है तो उसे वैध नहीं माना जाता है।

[धारा 488]

3. **स्वैच्छिक समापन प्रस्ताव पारित करना–** कोई भी कम्पनी निम्नलिखित दशाओं में अपनी साधारण सभा में एक साधारण प्रस्ताव पारित करके अपना स्वैच्छिक समापन कर सकती है:

(i) जब कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट अवधि समाप्त हो गई हो, तथा

(ii) कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट घटना घटित हो गई हो। [धारा 48]

कोई भी कम्पनी एक **विशेष प्रस्ताव** पारित करके किसी भी समय अपना स्वैच्छिक समापन कर सकती है। [धारा 484]

4. **प्रस्ताव का प्रकाशन** – कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित होने के बाद इसकी सूचना देने के लिए इसका राजकीय गजट में प्रकाशन भी करवाना पड़ता है। इसके साथ ही, कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय के जिले में प्रसारित किसी समाचार–पत्र में भी इस प्रस्ताव की सूचना प्रकाशित करवानी पड़ती है। ऐसी सूचना समापन का प्रस्ताव पारित होने की तिथि के 14 दिन के भीतर प्रकाशित हो जानी चाहिए।

5. **निस्तारक की नियुक्ति** – सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में कम्पनी अपनी सामान्य सभा में निस्तारक की नियुक्ति कर सकती है। उनकी नियुक्ति के साथ ही कम्पनी उनका पारिश्रमिक भी निर्धारित कर देती है। [धारा 490]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **संचालक मण्डल के अधिकारों की समाप्ति** – कम्पनी द्वारा साधारण सभा में निस्तारक की नियुक्ति कर देने से बाद संचालक मण्डल, पूर्णकालिक संचालक, प्रबन्ध संचालक अथवा प्रबन्धक का पद समाप्त हो जाता है। किन्तु, कम्पनी अपनी साधारण सभा में अथवा निस्तारक इनके कार्यकाल को जारी रख सकता है। [धारा 491]

7. **निस्तारक के रिक्त पद को भरना** – यदि कम्पनी द्वारा नियुक्त निस्तारक की मृत्यु हो जाती है, अथवा वह पद त्याग कर देता है अथवा अन्य किसी कारण से उसका स्थान रिक्त हो जाता है तो उस रिक्त पद को कम्पनी की साधारण सभा में पुनः भरा जा सकता है। किन्तु साधारण सभा को निस्तारक का रिक्त पद भरते समय ऋणदाताओं के साथ इस सम्बन्ध में हुए समझौते को भी ध्यान में रखना चाहिए।

8. **निस्तारक की नियुक्ति की रजिस्ट्रार को सूचना देना** – कम्पनी को निस्तारक की नियुक्ति करने अथवा रिक्त पद भरने की सूचना कम्पनी के रजिस्ट्रार को भेजनी चाहिए। यह सूचना नियुक्ति करने या पद भरने के दस दिनों में रजिस्ट्रार के पास पहुँच जानी चाहिए। यदि इस सम्बन्ध में त्रुटि की जाती है तो कम्पनी तथा कम्पनी के प्रत्येक निस्तारक पर एक हजार रूपये प्रतिदिन तक का जुर्माना तब तक किया जा सकता है जब तक इस प्रकार की त्रुटि जारी रहती है। [धारा 493]

9. **प्रतिफल में अंश स्वीकार करना** – निस्तारक कम्पनी के समापन के दौरान सम्पत्तियों के बेचने के प्रतिफल के रूप में अंश स्वीकार करने का अधिकार रखता है। [धारा 494]

10. **दिवालिया होने की दशा में ऋणदाताओं की सभा बुलाना** – यदि शोधन क्षमता की घोषणा में निर्धारित अवधि के भीतर कम्पनी के ऋणों का भुगतान नहीं किया जाता है अथवा निस्तारक यह अनुभव करता है कि कम्पनी अपने समस्त ऋणों के भुगतान करने में असमर्थ है तो उसे (निस्तारक को) तत्काल ऋणदाताओं की एक सभा बुलानी चाहिए। उसे इस सभा में कम्पनी की सम्पत्तियों एवं दायित्वों का विवरण प्रस्तुत करना चाहिए। यदि वह ऐसा करने में त्रुटि करता है तो उस पर पाँच हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 495]

11. **प्रत्येक वर्ष के अन्त में साधारण सभा बुलाना** – यदि कम्पनी के समापन की कार्यवाही एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए चलती है तो निस्तारक को समापन कार्यवाही प्रारम्भ होने की तिथि से एक वर्ष समाप्त होने पर तथा उसके बाद प्रत्येक वर्ष के समाप्त होने पर कम्पनी की साधारण सभा बुलानी चाहिए। साधारण सभा वर्ष समाप्त होने के तीन महीनों के भीतर बुलवाई जा सकती है। निस्तारक इस सभा में कम्पनी के समापन के कार्यों एवं व्यवहारों की प्रगति का विवरण सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत करता है। यदि निस्तारक ऐसा करने में त्रुटि करता है तो उस पर एक हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 496]

12. **अन्तिम सभा बुलाना** – कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निस्तारक को समापन की कार्यवाही का पूर्ण विवरण तैयार करना चाहिए। इस विवरण में यह स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिए कि समापन की कार्यवाही किस प्रकार की गई है तथा कम्पनी की सम्पत्ति का किस प्रकार उपयोग या वितरण किया गया है।

13. **रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को समापन का विवरण प्रस्तुत करना** :– अन्तिम सामान्य सभा के होने के एक सप्ताह के भीतर कम्पनी का निस्तारक रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। यदि कम्पनी का निस्तारक इस सम्बन्ध में त्रुटि करता है तो उस पर पांच सौ रूपये प्रतिदिन तक का जुर्माना किया जा सकता है जब तक ऐसी त्रुटि जारी रहती है।

14. **रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्री करना** – जब रजिस्ट्रार को समापन कार्यवाही की रिपोर्ट तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट प्राप्त हो जाती है तो वह उनकी रजिस्ट्री कर लेता है। [धारा 497 (5)]

15. **सरकारी निस्तारक द्वारा जाँच–पड़ताल करना** – कम्पनी का निस्तारक सरकारी निस्तारक को भी समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। इस विवरण तथा रिपोर्ट के प्राप्त होने के बाद सरकारी निस्तार कम्पनी की जांच पड़ताल करता है कि कहीं कम्पनी के व्यवसाय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का संचालन कम्पनी के सदस्यों के हितों अथवा जन–हित के विरूद्ध तो नहीं किया गया था। इस जाँच में सभी सम्बन्धित भूतपूर्व एवं वर्तमान अधिकारियों को सहयोग देना चाहिए। सरकारी निस्तारक जाँच–पड़ताल करने के बाद कम्पनी की रिपोर्ट अधिकरण को प्रस्तुत कर देता है। यदि इस रिपोर्ट में कम्पनी के संचालन के सम्बन्ध में कोई आपत्ति **प्रकट नहीं की गई तो इस रिपोर्ट के प्रस्तुत करने के साथ ही कम्पनी का विघटन हो जाता है।**

16. **विघटन का आदेश देना–** सरकारी निस्तारक की रिपोर्ट पर अधिकरण कम्पनी विघटन का आदेश दे सकता है। यदि अधिकरण उचित समझे तो विघटन के आदेश के बजाय परिस्थितियों के अनुसार कोई अन्य आदेश भी दे सकता है। [धारा 497 (6-B)]

B. ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन

जब कम्पनी के ऐच्छिक समापन की दशा में कम्पनी के संचालक कम्पनी की शोधन क्षमता की घोषणा करने में असमर्थ रहते हैं अथवा शोधन क्षमता की घोषणा करने के बाद भी ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ रहते है तो उसे ऋणदाताओं अथवा लेनदारों द्वारा ऐच्छिक समापन माना जाता है। ऋणदातओं द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में अधिनियम को 500 से 509 तक की धाराएँ लागू होती है। [धारा 499] दूसरे शब्दों में ऋणदातओं द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैः

1. **कम्पनी की सभा में समापन का प्रस्ताव पारित करना** – ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन की दशा में भी सर्वप्रथम कम्पनी की एक साधारण सभा बुलाई जाती है। इस सभा में कम्पनी के सदस्य कम्पनी के समापन का साधारण अथवा विशेष प्रस्ताव (जैसा भी आवश्यक हो) पारित करते हैं। [धारा 499]

2. **ऋणदाताओं की सभा बुलाना** – साधारण सभा में कम्पनी के ऐच्छिक समापन का प्रस्ताव पारित करने के बाद कम्पनी के ऋणदाताओं की साधारण सभा बुलाने के दिन अथवा उसके अगले दिन बुलाई जा सकती है। इस सभा की सूचना सभी ऋणदाताओं को डाक से दी जानी चाहिए। यह सूचना भी उसी दिन भेजी जानी चाहिए जिस दिन कम्पनी की सभा की सूचना भेजी जाती है। [धारा 500(4)]

3. **सूचना का विज्ञापन –** कम्पनी सभा की सूचना का विज्ञापन देगी। यह विज्ञापन कम से कम एक बार राजकीय गजट में प्रकाशिक करवाना आवश्यक है। इसी प्रकार कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय के जिले में प्रसारित किन्हीं दो समाचार–पत्रों में भी कम से कम एक बार इस सूचना का विज्ञापन दिया जाना चाहिए।

4. **सभा की स्थिति विवरण प्रस्तुत करना –** ऋणदाताओं की इस सभा में कम्पनी का संचालक मण्डल कम्पनी की सम्पूर्ण स्थिति का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही ऋणदाताओं की सूची तथा उनके दावों की अनुमानित राशि का विवरण भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए। [धारा 500(3)]

5. **कम्पनी की सभा स्थगित होने का प्रभाव –** यदि कम्पनी समापन का प्रस्ताव पारित करने के लिए अपने सदस्यों की सभा बुलाती है और वह समापन प्रस्ताव पारित किये बिना ही स्थगित हो जाती है और वह प्रस्ताव स्थगित सभा में पारित किया जाता है तो भी ऋणदाताओं की सभा में पारित प्रस्ताव का वही प्रभाव होता है जैसे कि वह प्रस्ताव कम्पनी की सभा में समापन का प्रस्ताव पारित होने के तुरन्त बाद पारित किया गया हो। [धारा 500(5)]

6. **सभा के प्रस्तावों की सूचना रजिस्ट्रार को देना –** ऋणदाताओं की सभा में पारित किये गये प्रस्तावों की सूचना रजिस्ट्रार को दी जानी आवश्यक है। यह सूचना प्रस्ताव पारित होने के दस दिनों के भीतर दी जानी आवश्यक है। यदि यह सूचना देने में त्रुटि की जाती है तो कम्पनी तथा कम्पनी के प्रत्येक अधिकारी (जिसमें निस्तारक भी सम्मिलित है) पर पांच सौ रूपये प्रतिदिन तक का जुर्माना तब तक किया जा सकता है जब तक ऐसी .त्रुटि जारी रहती है। [धारा 50]

7. **निस्तारक की नियुक्ति –** कम्पनी तथा ऋणदाता अपनी अपनी सभा में निस्तारक मनोनीत कर सकते। किन्तु यदि ऋणदाता तथा कम्पनी द्वारा मनोनीत व्यक्ति भिन्न भिन्न हो तो ऋणदातओं द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही कम्पनी का निस्तारक माना जाता है। किन्तु, कम्पनी का कोई सदस्य, संचालक अथवा ऋणदाता ऐसे मनोनयन के सात दिनों के भीतर अधिकरण को प्रार्थना पत्र देकर यह निवेदन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कर सकता है कि कम्पनी द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही कम्पनी का निस्तारक होना चाहिए, अथवा अधिकरण को सरकारी निस्तारक या अन्य किसी व्यक्ति को कम्पनी का निस्तारक नियुक्त करना चाहिए।

8. **निरीक्षण समिति की नियुक्ति :–** ऋणदाता चाहें तो समापन की कार्यवाही की देखरेख के लिए एक निरीक्षण समिति नियुक्त कर सकते है। इस समिति में वे अधिक से अधिक पांच सदस्य रख सकते है। [धारा 503(1)]

9. **निस्तारक का पारिश्रमिक –** निस्तारक का पारिश्रमिक निरीक्षण समिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। यदि ऐसी समिति की नियुक्ति नहीं की जाती है तो ऋणदाता स्वयं निस्तारक के पारिश्रमिक को निर्धारित करते हैं। यदि ऋणदाता निस्तारक का पारिश्रमिक निर्धारित नहीं करते हैं तो यह अधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाता है। एक बार निर्धारित पारिश्रमिक को किसी भी दशा में बढ़ाया नहीं जा सकता है चाहे अधिकरण ही आदेश क्यों न दे।

10. **संचालक मण्डल के अधिकारों की समाप्ति–** निस्तारक की नियुक्ति के बाद संचालक मण्डल के अधिकार समाप्त हो जाते है। किन्तु, निरीक्षक समिति (यदि हो तो) अथवा ऋणदाता चाहें तो संचालक मण्डल के अधिकारों की चालू रख सकते है। [धारा 505]

11. **निस्तारक का रिक्त पद भरना –** यदि निस्तारक की मृत्यु, पद त्याग अथवा अन्य किसी कारण से उसकी पद रिक्त हो जाता है तो ऋणदाता अपनी साधारण सभा में इस रिक्त पद को भर सकते है। किन्तु यदि निस्तारक न्यायालय के निर्देश से अथवा न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया था तो अब भी न्यायालय को ही रिक्त स्थान भरने का अधिकार होगा। [धारा 506]

12. **कम्पनी तथा ऋणदाताओं की प्रतिवर्ष सभा बुलाना –** जब समापन की कार्यवाही एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए चालू रहती है तो निस्तारक को समापन प्रारम्भ होने की तिथि के एक वर्ष बाद तथा इसके बाद प्रत्येक वर्ष की समाप्ति पर कम्पनी के सदस्यों तथा ऋणदाताओं की सभा बुलानी पड़ती है। यह सभा वर्ष की समाप्ति के तीन महीनों के भीतर कभी भी बुलाई जा सकती हैं। निस्तारक इस सभा में समापन की कार्यवाही का विवरण प्रस्तुत करता है। यदि निस्तारक इस सम्बन्ध में कोई त्रुटि करता है तो उस पर एक हजार रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

13. **अन्तिम सभा बुलाना –** कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निस्तारक कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तैयार करता है। वह इस विवरण में कम्पनी की सम्पत्तियो का उपयोग अथवा वितरण के सम्बन्ध में भी आवश्यक बातों का उल्लेख करता है।

14. **रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को समापन का विवरण प्रस्तुत करना –** अन्तिम सामान्य सभा के होने के एक सप्ताह के भीतर कम्पनी का निस्तारक रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। यदि कम्पनी का निस्तारक इस सम्बन्ध में त्रुटि करता है तो उस पर पांच सौ रूपये प्रतिदिन तक का तब तक जुर्माना किया जा सकता है जब तक कि ऐसी त्रुटि जारी रहती है। [धारा 509(3)]

15. **रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्री करना –** जब रजिस्ट्रार को समापन कार्यवाही की रिपोर्ट तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट प्राप्त हो जाती है तो वह उनकी रजिस्ट्री कर लेता है। [धारा 509(5)]

16. **सरकारी निस्तारक द्वारा जाँच पड़ताल करना –** कम्पनी का निस्तारक सरकारी निस्तारक को भी समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। विवरण तथा रिपोर्ट के प्राप्त होने के बाद सरकारी निस्तारक कम्पनी की जाँच पड़ताल करता है। वह यह जाँच करता है कि कम्पनी के व्यवसाय का संचालन कम्पनी के सदस्यों के हितों अथवा जनहित के विरूद्ध तो नहीं किया गया था। सरकारी निस्तारक जाँच पड़ताल करने के बाद कम्पनी के सम्बन्ध में रिपोर्ट अधिकरण को प्रस्तुत कर देता है। यदि इस रिपोर्ट में कम्पनी के संचालन के सम्बन्ध में कोई आपत्ति प्रकट नहीं की गई है तो इस रिपोर्ट के प्रस्तुत करने के साथ ही कम्पनी का विघटन हो जाता है।

17. **विघटन का आदेश देना –** सरकारी निस्तारक की रिपोर्ट पर अधिकरण कम्पनी के विघटन का आदेश दे सकता है। अधिकरण इसी आदेश में विघटन की तिथी का उल्लेख भी कर सकता है। यदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिकरण उचित समझे तो विघटन के आदेश की बजाय परिस्थितियों के अनुसार कोई अन्य आदेश भी दे सकता है।

प्रश्न बोध –

1. शोधन क्षमता की घोषणा पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन से आप क्या समझतें हो।
3. सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
5. कम्पनी के समापन की विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

खण्ड–स
अंकेक्षण (Auditing)

अंकेक्षण की परिभाषा एवं उद्देश्य (Defiintion and objectives of Auditing)

परिचयः–''अंकेक्षण का अंग्रेजी पर्याय ''ऑडिटिंग'' (Auditing) लेटिन भाषा ''आडिरे'' (Audire) शब्द से लिया गया है। इस शब्द का अर्थ है ''सुनना'' (To hear) । प्राचीन समय में यूनान, रोम तथा मिश्र आदि राज्यों में राजकीय कोषों का हिसाब –किताब चतुर लेखापालों को लेखा कार्यो का भार सौंपा जाता था। ये लेखापाल हिसाब–किताब रखने के पश्चात इस हिसाब–किताब को एक न्याय सम्बन्धी अधिकारी के सामने पढते थे। यह अधिकारी सब सुनने के पश्चात अपना निर्णय देता था। सुनने की इस किया को ही अंकेक्षण का उद्गम माना जाता है।

अर्थ एवं परिभाषाः–किसी भी संस्था की लेखा पुस्तकों की जांच पड़ताल करके उनकी सत्यता एवं विश्वसनीयता को प्रमाणित करने का कार्य अंकेक्षण कहलाता है तथा जो व्यक्ति अंकेक्षण करता है वह व्यक्ति अंकेक्षक (Auditor) कहलाता है।

एक मान्यता प्राप्त अंकेक्षक द्वारा प्रमाणित लेखा पुस्तकों के बारे में यही कहा जाता है कि वे लेखा पुस्तकें सही है और इस संस्था की वितीय स्थिति को सही–सही प्रकट करती है। अंकेक्षण को विभिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न रूप में परिभाषित किया है जो इस प्रकार है–

लॉरेन्स डिक्सी– ''अंकेक्षण लेखों की एक जांच है जो यह पता लगाने के लिए की जाती है कि लेखे उन सौदों को ठीक–ठीक एवं पूर्णतया प्रदर्शित करते है या नही, जिनसे की वे सम्बन्धित है। कभी–कभी यह भी ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है कि सौदे स्वंय ही उचित अधिकारियों द्वारा समर्थित है या नही।'

जे. आर. बाटलीबॉय–''अंकेक्षण का आशय एक व्यवसाय की लेखा पुस्तकों की बुद्विमतापूर्ण एवं समीक्षात्मक जांच से है, जो उन प्रलेखों एवं प्रमाणकों से की जाती है, जिनके आधार पर वे लेखा पुस्तकें लिखी गई है। इस जांच का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि एक निर्धारित अवधि के लिए बनाये गये लाभ–हानि खाते द्वारा दर्शाया गया व्यापारिक परिणाम तथा चिटठे द्वारा प्रदर्शित इस व्यवसाय की वितीय स्थिति सही–सही है अथवा नही और ये उन व्यक्तियों के द्वारा ठीक ढंग से प्रस्तुत किये गये है या नही जो उन्हे तैयार करने के लिए जिम्मेदार है।''

मोनटागूमरी–''अंकेक्षण एक व्यवसाय की या अन्य किसी संस्था की पुस्तकों तथा अभिलेखों की एक ऐसी क्रमबद्व जांच है, जिससे अंकेक्षण उस संस्था के वितीय कियाकलापों एवं परिणामों से सम्बन्धित तथ्यों का सत्यापन कर सके तथा उन पर अपना प्रतिवेदन दे सके।''

विभिन्न विचारकों एवं लेखकों की परिभाषा के अध्ययन के पश्चात कहा जा सकता है कि अंकेक्षण किसी संस्था की लेखा पुस्तकों की एक स्वतन्त्र एवं विवेचनात्मक जांच है जो एक ऐसे बुद्विमान व्यक्ति द्वारा की जाती है जिसका उन लेखा पुस्तकों को बनाने में कोई हाथ नही होता है। इस जांच का उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि एक निश्चित समय के लिए बनाया गया लाभ–हानि खाता एवं चिटठा उस निश्चित समय में उस संस्था की सही आर्थिक स्थिति को प्रकट करता है या नही। ''

अंकेक्षण की विशेषताऐं या लक्षणः–

अंकेक्षण की मुख्य एवं आधारभूत विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1) अंकेक्षण एक स्वतन्त्र एवं विवेचनात्मक जांच है।

2) अंकेक्षण किसी भी संस्था का हो सकता है चाहे उसका आकार एवं स्वरूप कैसा भी क्यों न हो।

3) अंकेक्षण में लेखा पुस्तकों की जांच की जाती है।

4) अंकेक्षण केवल गणितीय शुद्वता को ही प्रकट नही करता बल्कि पूर्ण शुद्वता को प्रकट करता है।

5) अंकेक्षण किसी भी संस्था की वितीय सूचनाओं की जांच है।

6) अंकेक्षण का उद्देश्य लाभ–हानि खाते तथा चिटठें की सत्यता का पता लगाना है।

7) अंकेक्षण अपना प्रतिवेदन तैयार करके नियोक्ता को सौंपता है।

8) अंकेक्षण की अवधि निश्चित होती है। यह सामान्यतः एक वर्ष की अवधि के लिए होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंकेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Auditing)

किसी भी कार्य का प्रारम्भ बिना उद्देश्य के नही हो सकता है। यह बात अंकेक्षण पर भी लागू होती है। अंकेक्षण भी एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया मानी जाती है। अंकेक्षण का मुख्य उद्देश्य किसी भी संस्था की सही–सही वितीय स्थिति का पता लगाना होता है। अध्ययन की दृष्टि से अंकेक्षण के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

- **प्रमुख उद्देश्य–** अंकेक्षण के प्रमुख उद्देश्यों में लेखा पुस्तकों की जांच करके उनकी सत्यता ,पूर्णता, नियमानुकूलता तथा विश्वसनीयता का पता लगाना है। संक्षेप्त में अंकेक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है–

  1.लाभ–हानि खाते का सत्यापन करना–अंकेक्षण का पहला प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि संस्था का लाभ–हानि खाता उस संस्था के लाभों तथा हानियों का सही–सही एवं उचित चित्र प्रस्तुत करता है या नही।

  2.चिटठें का सत्यापन करना– अंकेक्षण का प्रमुख उद्देश्य यह भी पता लगाना है कि संस्था का चिटठा उस संस्था की सम्पतियों एवं दायित्वों का सही एवं उचित चित्र प्रस्तुत करता है या नहीं।

- **सहायक उद्देश्य–** सहायक उद्देश्य ऐसे होते है जो स्वंय में तो मुख्य उद्देश्य नही है किन्तु मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते है। ऐसे उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है–
  1. **अशुद्वियों का पता लगाना–** अंकेक्षण का उद्देश्य लेखा पुस्तकों में लेखापालों से हुई अशुद्वियों एवं त्रुटियों का पता लगाना है।जैसे ही ऐसी अशुद्वियां अंकेक्षण को पता लगती है वह इनका संशोधन करवा देता है।
  2. **छल–कपट एवं गबन का पता लगाना**– अशुद्वियों की भांति लेखा पुस्तकों में छल–कपट एवं गबन की सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता है। एक कुशल अंकेक्षण अपनी बुद्विमानी एवं सतर्कता से छल–कपट एवं गबन का पता आसानी से लगा सकता है।
  3. छल–कपट एवं गबन की रोकथाम– यदि किसी संस्था में नियमित रूप से अंकेक्षण कार्य होता हो तो वह अशुद्वियों एवं छल–कपट तथा गबन आदि की रोकथाम करने में सहायक होता है। अंकेक्षण को इनके विरूद्व गारन्टी तो नही माना जा सकता किन्तु इसका प्रभाव निश्चित ही रोकथाम करने वाला होता है।

- **अन्य उद्देश्य–**उपरोक्त मुख्य एवं सहायक उद्देश्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्देश्य ऐसे भी है जिनकी प्राप्ति के लिए अंकेक्षण किया जाता है जो इस प्रकार है–
  1. **प्रबन्धकों को परामर्श देना**–कभी–कभी नियोक्ता के समक्ष अपनी संस्था के प्रबन्ध के सम्बन्ध में ऐसी समस्याएं आ जाती है, जिनके समाधान में अंकेक्षण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।
  2. **छल–कपट तथा गबन आदि का अनुसंधान करना**– यदि नियोक्ता को यह संदेह हो कि उसकी संस्था में या संस्था के किसी भी विभाग में किसी प्रकार का छल–कपट या गबन हुआ है या हो रहा है तो वह अंकेक्षण को विशेष तौर पर ऐसे गबन का पता लगाने के लिए नियुक्त कर सकता है।
  3. **अधिनियम की अनुपालना हेतु अंकेक्षण–** कुछ संस्थाएं ऐसी होती है जिनकी स्थापना किसी अधिनियम के तहत होती है और उन्हे ऐसे अधिनियम की अनुपालना करने हेतु अंकेक्षण कराना अनिवार्य होता है।
  4. **कर निर्धारण के लिए विवरण तैयार करना–**प्रबन्धकों को तथा व्यावसायिक संस्थाओं के स्वामियों को आयकर तथा बिक्रीकर आदि के कर निर्धारण के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण तैयार करने पड़ते है। ये विवरण वही व्यक्ति तैयार कर सकता है जो उन करों से सम्बन्धित अधिनियमों की पूरी जानकारी रखता है। अतः बहुत से व्यक्ति अंकेक्षण को इस काम के लिए नियुक्त करते है।

प्रश्न :–

1. **अंकेक्षण से आप क्या समझते है ?**
2. **अंकेक्षण की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।**
3. **अंकेक्षण किन उद्देश्यों को लेकर किया जाता है ?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुस्तपालन, लेखाकर्म और अंकेक्षण
(Book-keeping, Accounting and Auditing)

पुस्तपालन

व्यापारिक व्यवहारों को हिसाब–किताब की बहियों में लिखने की कला को पुस्तपालन कहते है। पुस्तपालन में निम्नलिखित कार्य सम्मलित किये जाते है–

1.क्रय बही, विक्रय बही, क्रय वापसी बही, विक्रय वापसी बही, प्राप्य बिल बही, देय बिल बही, मुख्य जर्नल आदि प्रारम्भिक लेखा बहियों में व्यापारिक व्यवहारों का लेखा करना तथा

2. प्रारम्भिक लेखा बहियों से खाता–बही में करना और उनका शेष निकालना।

लेखाकर्म

जहां पुस्तपालन का कार्य समाप्त होता है वहां लेखाकर्म का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। लेखाकर्म में पुस्तपालन से प्राप्त हुए लेखों का तलपट तैयार करना, समायोजन एवं भूल सुधार सम्बन्धी लेखे तैयार करना, अन्तिम खाता बनाना, आलोचन करना तथा पुस्तपालकों का मार्गदर्शन आदि कार्य को शामिल किया जाता है।

अंकेक्षण

अंकेक्षण किसी संस्था की लेखा पुस्तकों की एक ऐसी स्वतन्त्र एवं विवेचनात्मक जांच है जिसका उद्देश्य लाभ–हानि खाते और चिटठें से संस्था की सही–सही वितीय स्थिति का पता लगाना होता है।

पुस्तपालन और लेखाकर्म में अन्तर

अन्तर का आधार	पुस्तपालन	लेखाकर्म
1. अर्थ	प्रारम्भिक पुस्तकों में व्यवहारों को लिखना और उनकी खतौनी करना।	प्रारम्भिक लेखा पुस्तकों से लाभ–हानि खाता एवं चिटठा बनाना, आवश्यक समायोजन करना और उनका विश्लेषण करना।
2. उद्देश्य	इसका उद्देश्य हिसाब–किताब रखना है।	इसका उद्देश्य अन्तिम खाते तैयार करके भावी योजनाओं के लिए सूचनाएं तैयार करना है।
3. कार्य	जर्नल में लेखा करना, खतौनी तैयार करना, जोड़ लगाना व शेष निकालना है।	पुस्तपालन के कार्य की जांच, तलपट बनाना, अन्तिम खाते बनाना आदि।
4. उतरदायित्व	पुस्तपालन लेखाकर्म के लिए उतरदायी नही है।	लेखापाल पुस्तपालक के लिए भी उतरदायी है।
5. प्रारम्भ	पुस्तपालन व्यापारिक व्यवहार होते ही प्रारम्भ हो जाता है।	लेखाकर्म पुस्तपालन का कार्य पूर्ण होने पर ही प्रारम्भ होता है।
6. वैधानिक नियमन	वैधानिक नियमन नाममात्र का होता है।	वैधानिक नियमन अत्यधिक होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुस्तपालन और अंकेक्षण में अन्तर

अन्तर का आधार	पुस्तपालन	अंकेक्षण
1. अर्थ	प्रारम्भिक पुस्तकों में व्यवहारों को लिखना और खतौनी करना।	पुस्तपालकों द्वारा किये गये कार्यो की जांच करना।
2. योग्यता	पुस्तपालन सामान्य योग्यता वाला व्यक्ति भी कर सकता है।	अंकेक्षण के लिए विशिष्ट ज्ञान एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
3. उद्देश्य	इसका उद्देश्य व्यापारिक व्यवहारों का लेखा करना है।	इसका उद्देश्य लेखों की शुद्वता की जांच करना है।
4. कार्य की प्रकृति	यह व्यवहारिक क्रिया है।	यह आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक क्रिया है।
5. प्रारम्भ	व्यापारिक व्यवस्थाओं के होते ही पुस्तपालन शुरू हो जाता है।	पुस्तपालन व लेखाकर्म पूर्ण होने पर अंकेक्षण शुरू होता है।
6. वैधानिक नियमन	पुस्तपालन के सम्बन्ध में कोई वैधानिक नियम है।	अंकेक्षणों की नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य, दायित्व, कार्यप्रणाली आदि विधान द्वारा शासित है।
7. रिपोर्ट	पुस्तपालन द्वारा कोई रिपोर्ट नही दी जाती है।	अंकेक्षण द्वारा कार्य पूर्ण होने पर रिपोर्ट दी जाती है।
8.कर्मचारी या बाह्यय व्यक्ति	पुस्तपालन का कार्य बाहय कर्मचारी करते है।	अंकेक्षण का कार्य प्रायः संस्था के बाहर के व्यक्ति अनुबन्ध के आधार पर करते है।

प्रश्न :–

1. **पुस्तपालन किसे कहते है ?**
2. **पुस्तपालन और लेखाकर्म में क्या अन्तर है ?**
3. **पुस्तपालन और अंकेक्षण में क्या अन्तर है ?**

अंकेक्षण का वर्गीकरण (Classification of Auditing)

किसी भी संस्था का अंकेक्षण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व अंकेक्षण के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने कार्य का सर्वे निर्धारित कर दे। एक अंकेक्षण को उतना ही कार्य करना चाहिए जितने कार्य की आवश्यकता है। यदि वह अपेक्षित सीमाओं से अधिक कार्य करेगा तो वह अपना समय और शक्ति व्यर्थ में खर्च करेगा। इसके विपरीत कम कार्य करने पर वह लापरवाही और कर्तव्य भंग का दोषी माना जाता है। अतः एक अंकेक्षण को अपना कार्यक्षेत्र सही–सही निर्धारित करना चाहिए।

अंकेक्षण के कार्य के क्षेत्र की सीमाएं इस बात पर निर्भर करती है कि वह अंकेक्षण किस प्रकार का है। अतः कार्यक्षेत्र का अध्ययन करने के लिए अंकेक्षण के वर्गीकरण का अध्ययन आवश्यक है जो इस प्रकार है–

अंकेक्षण का वर्गीकरण

1. एच्छिक अंकेक्षण
2. वैधानिक अंकेक्षण
3. सरकारी अंकेक्षण
4. वितीय अंकेक्षण
5. लागत अंकेक्षण
10. पूर्ण अंकेक्षण
11. आंशिक अंकेक्षण
12. चालू अंकेक्षण
13. सामयिक अंकेक्षण
14. विस्तृत अंकेक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. प्रबन्ध अंकेक्षण
7. निपुणता अंकेक्षण
8. आन्तरिक अंकेक्षण
9. बाहय अंकेक्षण
15. रोकड़ अंकेक्षण
16. अन्तरिम अंकेक्षण
17. अन्तिम अंकेक्षण

उपरोक्त प्रकारों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

1. **एच्छिक अंकेक्षण–(Voluntary Audit)** जब कोई व्यक्ति या संस्था स्वेच्छा से अपनी लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण करवाता है तो इसे स्वैच्छिक या एच्छिक अंकेक्षण कहते है। जैसे एकाकी व्यापार एवं साझेदारी फर्म अपनी इच्छा से ही अंकेक्षण करवाते है, उन पर अंकेक्षण की कोई वैधानिक बाध्यता नही है।

2. **वैधानिक अंकेक्षण–(Statatory Audit)** यदि किसी अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार किसी अंकेक्षण की नियुक्ति की गई है तो उसके द्वारा उस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार किया गया अंकेक्षण वैधानिक अंकेक्षण कहलाता है। किसी कम्पनी, बैंक, सहकारी संस्था आदि का अंकेक्षण सम्बन्धित अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार करवाया जाता है इसलिए यह वैधानिक अंकेक्षण कहलाता है।

3. **सरकारी अंकेक्षण–(Goverment Audit)** सरकारी आय और व्यय का अंकेक्षण सरकारी कहलाता है। इसके अन्तर्गत केन्दीय तथा राज्य सरकार के समस्त विभागों स्थानीय सत्ताओं तथा अनुदान प्राप्त संस्थाओं का अंकेक्षण शामिल है। सरकारी अंकेक्षण का कार्य भारतीय चार्टर्ड एकान्टेन्टस संस्थान के सदस्य नही करते है।इसके लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन एक अलग विभाग बनाया गया है जिसके पदाधिकारी अंकेक्षण का कार्य करते है इस विभाग का सर्वोच्य अधिकारी नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक कहलाता है।

4. **वित्तीय अंकेक्षण– (Financial Audit)** किसी व्यवसायिक संस्था के वित्तीय लेखों का अंकेक्षण वित्तीय अंकेक्षण कहलाता है। इसमें प्रारम्भिक पुस्तकों तथा खाताबही की जांच की जाती है।यह लाभ हानि खाते या चिटठे का अंकेक्षण है।

5. **लागत अंकेक्षण– (Cost Audit)** किसी निर्माणी या उत्पादन करने वाली संस्था के लागत लेखों के अंकेक्षण को लागत अंकेक्षण कहते है। इसके अन्तर्गत उत्पादन लागत में शामिल की जाने वाले प्रत्येक व्यय की विस्तृत और गहन जांच पड़ताल की जाती है और पता लगाया जाता है कि लागत लागत लेखों में प्रदर्शित की गई है वह सही है अथवा नही इसे औचित्य अंकेक्षण या कुशलता अंकेक्षण का मिलाजुला रूप माना जा सकता है।

6. **प्रबन्ध अंकेक्षण– (ManagementAudit)** प्रबन्धकों की जांच पड़ताल के लिए यह अंकेक्षण किया जाता है। प्रबन्ध की नीतियां तथा कार्य पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहां तक सफल रहे है इस बात की जांच पड़ताल के लिए जो अंकेक्षण किया जाता है वह प्रबन्ध अंकेक्षण कहलाता है।

7. **निपुणता अंकेक्षण– (Efficiency Audit)** निपुणता अंकेक्षण या कुशलता अंकेक्षण एक प्रकार से प्रबन्ध अंकेक्षण का सुधरा हुआ रूप है। किसी व्यक्ति या किसी विभाग की कार्यकुशलता की जांच करने के लिए जो अंकेक्षण किया जाता है वह निपुणता अंकेक्षण कहलाता है। जहां प्रबन्ध अंकेक्षण सम्पूर्ण संस्था के सर्वोच्य प्रबन्ध की सफलता या असफलता का मूल्याकंन करता है वहां निपूणता अंकेक्षण के अन्तर्गत अंकेक्षण किसी एक विभाग विशेष के या अधिकारी विशेष के कार्यों का मूल्याकंन करता है।

8. **आंतरिक अंकेक्षण– (Internal Audit)** बड़ी–बड़ी व्यवसायिक संस्थाओं में विभिन्न विभागों की निरन्तर जांच पड़ताल करते रहने के लिए तथा प्रबन्धकों को रिपोर्ट देते रहने के लिए कुछ कर्मचारियों की स्थायी रूप से नियुक्ति कर दी जाती है। ये कर्मचारी उस संस्था के स्टाफ के सदस्य होते है किन्तु उनका कार्य उस संस्था के अन्य सभी विभागों के व्यवहारों की जांच करना तथा प्रबन्धकों अपनी रिपोर्ट देना होता है। इस प्रकार की जांच कार्य को आन्तरिक अंकेक्षण कहते है।

9. **बाह्यय अंकेक्षण– (External Audit)** यदि किसी संस्था की लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण किसी स्वतन्त्र पेशेवर व्यक्ति द्वारा किया गया हो तो ऐसा अंकेक्षण बाह्यय अंकेक्षण कहलाता है। कम्पनी तथा अन्य वैधानिक संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य है कि वे ऐसे ही किसी व्यक्ति से अंकेक्षण का कार्य करवायें। ये व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वतन्त्र पेशेवर व्यक्ति होते है तथा अपने कार्य के लिए फीस के रूप में पारिश्रमिक वसूल करते है। बाह्यय अंकेक्षण आन्तरिक अंकेक्षण के अतिरिक्त करवाया जाता है।

10. **पूर्ण अंकेक्षण– (Complete Audit)** सामान्यतः कोई भी संस्था एक निश्चित अवधि से सम्बन्धित लेखा पुस्तकों की सम्पूर्ण जांच करवाती है। यह निश्चित अवधि प्रायः एक लेखा वर्ष की होती है। ऐसी जांच को पूर्ण अंकेक्षण कहा जाता है। अतः एक लेखा वर्ष से सम्बन्धित सम्पूर्ण वितीय व्यवहारों की जांच को पूर्ण अंकेक्षण कहा जाता है।

11. **आंशिक अंकेक्षण– (Partial Audit)** यदि कोई संस्था सम्पूर्ण व्यवहारों की जांच करवाने की बजाय कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यवहारों की जांच करवाने के लिए अंकेक्षण करवाये तो इसे आंशिक अंकेक्षण कहते है। यदि ऐसा अंकेक्षण किसी समय विशेष से सम्बन्धित हो तो इसे समय के आधार पर आंशिक अंकेक्षण कहा जायेगा। इसके विपरीत ऐसा अंकेक्षण किसी विशिष्ट व्यवहार से सम्बन्धित है तो उसे कार्य के आघार के पर आंशिक अंकेक्षण माना जाएगा।

12. **चालू अंकेक्षण– (Continuous Audit)** यदि अंकेक्षण पूरे लेखा वर्ष की समाप्ति पर न किया जाकर लेखा वर्ष में एक से अधिक बार किया जाता है तो इसे चालू अंकेक्षण कहते है। इस अंकेक्षण में अंकेक्षण वर्ष के दौरान निश्चित या अनिश्चित समय के अन्तराल पर समय–समय पर संस्था का अंकेक्षण कार्य करता रहता है। इस प्रकार इस पद्वति में लेखा पुस्तकों को लिखने का तथा अंकेक्षण का कार्य दोनों ही साथ–साथ चलता रहता है इस प्रकार इस अंकेक्षण के अन्तर्गत अंकेक्षण निरन्तर चालू रहता है,इस कारण इसे चालू अंकेक्षण कहते है।

13. **सामयिक अंकेक्षण– (Periodical Audit)** यदि अंकेक्षण लेखा वर्ष के समाप्त होने के पश्चात अंकेक्षण कार्य प्रारम्भ करे तथा लगातार एक ही बार में अंकेक्षण का समस्त कार्य पूरा कर ले तो इसे सामयिक अंकेक्षण कहते है।

14. **विस्तृत अंकेक्षण– (Detailed Audit)** विस्तृत अंकेक्षण के अन्तर्गत किसी विशेष अवधि से सम्बन्धित या किसी खास क्षेत्र से सम्बन्धित व्यवहारों की विस्तृत एवं गहन जांच की जाती है। इस प्रकार यह एक आंशिक अंकेक्षण है।

15. **रोकड़ अंकेक्षण– (Cash Audit)** यदि कोई संस्था किसी अंकेक्षण से सिर्फ रोकड़ व्यवहारों का अंकेक्षण करवाये तो इसे रोकड़ अंकेक्षण कहते है।

16. **अन्तरिम अंकेक्षण– (Interim Audit)** कभी–कभी व्यवसायिक संस्थानों को अपने लेखा वर्ष की समाप्ति से पूर्व अर्थात् लेखा वर्ष के बीच में किसी भी समय किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंकेक्षण करवाना पड़ता है। ऐसे अंकेक्षण को अन्तरिम अंकेक्षण कहते है। इस अंकेक्षण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अंकेक्षण का बहुत सा काम लेखा वर्ष की समाप्ति होने से पूर्व ही कर लिया जाता है। लेकिन व्यवहार में यह अंकेक्षण अधिक प्रचलित नहीं है।

17. **अंतिम अंकेक्षण– (Final Audit)** लेखा वर्ष समाप्त होने के पश्चात किया जाने वाला अंकेक्षण अंतिम अंकेक्षण कहलाता है। यह इस समय किया जाता है जब लेखा वर्ष समाप्त हो चुका हो तथा अंतिम खाते तैयार कर लिये जाते हो। सामान्यतः प्रत्येक संस्था इस प्रकार के अंकेक्षण को ही अपनाती है।

प्रश्न :–

1. **चालू अंकेक्षण किसे कहते है ?**
2. **सरकारी अंकेक्षण के अन्तर्गत किन संस्थाओं का अंकेक्षण शामिल है ?**
3. **एक कम्पनी द्वारा करवाया गया अंकेक्षण कौनसा अंकेक्षण कहलाता है ?**
4. **बाहय अंकेक्षण से किस प्रकार अलग है ?**

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था और आन्तरिक अंकेक्षण व्यवस्था
(Internal Check System And Internal Audit System)

किसी भी संस्था में विद्यमान आन्तरिक नियन्त्रण प्रणाली का उस संस्था के अंकेक्षण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। आन्तरिक नियन्त्रण व्यवस्था जितनी मजबूत एवं संगठित होती है किसी संस्था में छल, कपट, गबन, तथा अशुद्वियों की सम्भावना उतनी ही कम हो जाती है। और अंकेक्षण का कार्य उतना ही सरल और आसान हो जाता है। इस प्रकार किसी भी अंकेक्षण के लिए किसी संस्था की आन्तरिक नियन्त्रण व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है।

आन्तरिक नियन्त्रण प्रणाली वह है जिसमें आन्तरिक नियन्त्रण व्यवस्था एवं आन्तरिक अंकेक्षण दोनों शामिल है।

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था (Internal Check System)

सामान्य शब्दों में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था किसी भी संस्था के संचालन के सम्बन्ध में एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत समस्त व्यवहारों को तथा उनसे सम्बन्धित लेखा कार्यों को कार्यालय के विभिन्न कर्मचारियों में इस प्रकार विभाजित कर दिया जाता है कि एक कर्मचारी के कार्य की जांच स्वतः ही दूसरे कर्मचारी द्वारा हो जाती है। आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

1. **डी पॉला के अनुसार–''**आन्तरिक निरीक्षण का आशय व्यवहारिक रूप में एक ऐसा निरन्तर चालू रहने वाला आन्तरिक अंकेक्षण है जो कर्मचारियों द्वारा स्वंय ही कर लिया जाता है तथा जिसके माध्यम से एक व्यक्ति का कार्य स्वतन्त्र रूप से स्टाफ के ही अन्य सदस्यों द्वारा जांच लिया जाता है।''
2. **डिक्सी के अनुसार–** ''आन्तरिक निरीक्षण को लेखा प्रकिया के ऐसे प्रबन्ध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे गल्ति और गबन स्वतः रूक जाते है अथवा पुस्तपालन के संचालन द्वारा पकड़ में आ जाते है।''
3. **लंकास्टर के अनुसार–** ''आन्तरिक निरीक्षण कार्यालय, कारखाना, और गोदाम और इनसे सम्बन्धित स्टाफ के कर्मचारियों के संगठन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके कारण उन कर्मचारियों की सांठ–गांठ के बिना छल–कपट तथा अनियमितताओं का होना असम्भव हो जाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था व्यवसाय के कार्यों की ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा कर्मचारियों में कार्य विभाजन इस प्रकार कर दिया जाता है कि किसी भी व्यवहार के समस्त पहलुओं का लेखन किसी एक व्यक्ति के पूर्ण अधिकार में न रहे और प्रत्येक कर्मचारी का कार्य अनिवार्यतः स्वतन्त्र रूप से दूसरे कर्मचारियों द्वारा जांचा जा सके ताकि बिना दलबन्दी के गबन न हो सके और यदि हो भी तो जल्दि पकड़ में आ जाये।

आन्तरिक निरीक्षण की विशेषताऐं–

आन्तरिक निरीक्षण की विशेषताऐं इस प्रकार है–

1. **कर्मचारियों में कार्यों का विभाजन–** इस व्यवस्था में प्रत्येक कार्य का विभाजन अलग–अलग हिस्सों में विभाजन कर दिया जाता है और कार्य का प्रत्येक हिस्सा अलग–अलग व्यक्तियों में विभाजित कर दिया जाता है।
2. **सभी प्रकार की संस्थाओं में लागू होना–** यह पद्वति सभी प्रकार की संस्थाओं में लागू की जा सकती है चाहे वह संस्था व्यवसायिक हो या गैर व्यावसायिक। यह लेखा कार्यों में ही नही वरन प्रत्येक क्रिया में अपनाई जा सकती है।
3. **प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की जांच**– इस पद्वति के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी द्वारा किये गये कार्य की जांच अनिवार्य रूप से दूसरे कर्मचारी द्वारा कर ली जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने हिस्से का कार्य तो पूरा करता ही है साथ ही वह अपने से पहले वाले व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्यों की जांच भी कर लेता है।
4. **बिना सहयोग के छल–कपट असम्भव–** इस व्यवस्था में कार्यों का कर्मचारियों के बीच विभाजन करने से पहले इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उस कार्य को सम्पन करने वाले विभिन्न कर्मचारियों में से कोई भी व्यक्ति अकेला किसी प्रकार का छल–कपट न कर सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **एक दूसरे का सहयोग आवश्यक–** इस व्यवस्था में कार्य विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि वह कार्य एक अकेला व्यक्ति स्वंय पूरा नही कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति को उस कार्य का एक छोटा सा हिस्सा सौंपा जाता है। इसलिए जब तक सभी व्यक्ति क्रम से अपने–अपने हिस्से का कार्य पूरा नही कर लेते है वह कार्य पूरा नही हो सकता।

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के उद्देश्य

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है–

1. **छल–कपट को रोकना–** आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक स्तर पर ही छल–कपट को रोकना है।
2. **अशुद्वियों को रोकना–** इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञात होता है कि उसके कार्य की जांच किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जायेगी, इसलिए वह पूर्ण सतर्कता के साथ कार्य करता है जिससे अशुद्वियों की सम्भावना कम हो जाती है।
3. **अशुद्वियों एवं छल–कपट को शीघ्र पकड़ना–** प्रत्येक व्यक्ति का कार्य शीघ्र ही दूसरे व्यक्ति द्वारा जांच लिए जाने के कारण अशुद्वियां एवं छल–कपट, यदि हो तो शीघ्र पकड़ में आ जाते है।
4. **उतरदायित्व का निर्धारण–** इस व्यवस्था में प्रत्येक कर्मचारी का कार्य निश्चित कर दिया जाता है जिससे काम में गड़बड़ी के सम्बन्ध में उसका उतरदायित्व सम्बन्धित व्यक्ति पर आसानी से डाला जा सकता है।
5. **अन्तिम खाते शीघ्र तैयार होना–**इसका एक उद्देश्य यह भी है कि लेखा कर्म को इस प्रकार से संगठित किया जाये कि वर्ष की समाप्ति पर अन्तिम खाते शीघ्र तैयार हो जाए।
6. अंकेक्षण का कार्य सरल होना– आन्तरिक निरीक्षण इसलिए भी अपनाया जाता है कि अंकेक्षण का काम आसान हो जाए, उसे पूरा काम करना न पड़े और वह परीक्षण जांच के आधार पर अपना कार्य शीघ्र समाप्त करके अपनी रिपोर्ट दे सके।

प्रश्न :–

1. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था से क्या तात्पर्य है ?**
2. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के प्रमुख उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए ।**
3. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था की पमुख व्यवस्था का वर्णन कीजिए ।**

आदर्श आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली की आवश्यक विशेषताऐं–

किसी व्यावसायिक संस्था में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था उस व्यवसाय की परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती है जिस प्रकार सभी प्रकार के व्यवसायों की परिस्थितियां एक समान नही होती उसी प्रकार आन्तरिक निरीक्षण की व्यवस्था भी सभी व्यवस्थाओं में एक समान नही हो सकती। फिर भी कुछ ऐसे सिद्वान्त है जिनका पालन होना चाहिए जो इस प्रकार है–

1. **कर्मचारियों की योग्यता–** आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था तभी प्रभावी हो सकती है जब प्रत्येक कार्य योग्य कर्मचारी को दिया जाए और उसके प्रारम्भिक प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध होना चाहिए। किसी भी कर्मचारी को कार्य पर रखने से पूर्व उसके चरित्र के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी ले लेनी चाहिए एवं नियुक्ति से पूर्व किसी ख्याति प्राप्त व्यक्ति से जमानत भी ले लेनी चाहिए। इसके साथ ही कर्मचारी अपना काम ईमानदारी से कर रहा है या नही इस बात की जांच भी समय–समय पर कर लेनी चाहिए।
2. **लेखांकन सम्बन्धी सिद्वान्त–** इस व्यवस्था का लेखांकन के क्षेत्र में भी बहुत अधिक महत्व है। एक अंकेक्षण के लिए लेखांकन के क्षेत्र में इस व्यवस्था का प्रयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। किसी भी व्यवहार के सम्बन्ध में जिस व्यक्ति को कार्य सम्पन करने का अधिकार हो उसी व्यक्ति को लेखा प्रविष्टि का अधिकार नही होना चाहिये। लेखा पुस्तकें रखने के लिए लेखांकन की उचित प्रणाली का प्रयोग होना चाहिए। लेखा पुस्तकें स्वकीय संतुलन प्रणाली के आधार पर लिखी जानी चाहिए। प्रमाणकों को बनाये रखने और उन्हे फाइल करने की उतम व्यवस्था होनी चाहिए आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **अन्य सिद्वान्त–** उपरोक्त सिद्वान्तों के अलावा इस व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है कि प्रत्येक कार्य स्पष्ट व निश्चित हो। डाक के आगमन और प्रेषण पर पूरा नियन्त्रण हो। यह व्यवस्था कम से कम इतनी लोचदार तो हो कि इसमें आवश्यकता पड़ने पर सुधार किया जा सके।

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के लाभ (Advantages of Internal Check System)

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के लाभों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **कर्मचारियों का सावधान होना** – इस व्यवस्था को लागू करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें कर्मचारी अधिक सर्तक और सावधान हो जाते है क्योंकि उन्हे इस बात की जानकारी होती है कि उनके कार्य की तुरन्त दूसरे व्यक्ति द्वारा जांच की जाएगी।
2. **छल–कपट और अशुद्वियों का शीघ्र पकड़ में आना** – इस पद्वति के लागू होने की स्थिति में यदि कोई कर्मचारी बेईमानी करता भी है तो वह जांच के कारण तुरन्त पकड़ में आ जाता है और ऐसे व्यक्ति के विरूद्व कार्यवाही की जा सकती है।
3. **कर्मचारियों का ईमानदार होना** – इस प्रणाली के कारण तुरन्त पकड़े जाने के डर से कर्मचारी पूर्ण सावधानी से कार्य करेगा। वह गड़बड़ी न करके ईमानदारी से अपना कार्य पूर्ण करेगा।
4. **सम्पूर्ण वातावरण पर नैतिक प्रभाव** – आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली द्वारा व्यवसाय के समस्त वातावरण पर नैतिक प्रभाव पड़ता है, जिसमें व्यवसाय की समस्त क्रियाएं पूर्ण ईमानदारी, लगन, और परिणाम के साथ पूरी की जाती है।
5. **अशुद्वियों में कमी** – प्रत्येक कर्मचारी जब अत्यधिक सावधानी एवं सर्तकता के साथ कार्य करता है तो अशुद्वियों में कमी आती है।
6. **गबन का प्रभाव एक साथ नही** – इस पद्वति के कारण छल–कपट और गबन शीघ्र पकड़ में आ जाते है इस कारण उन्हे तुरन्त ठीक कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप व्यवसाय ऐसे गबन के एक साथ पड़ने वाले दुष्प्रभावों से बच जाता है।
7. **अन्तिम खाते शीघ्र तैयार होना** – व्यवसाय की लेखा पुस्तकों का कार्य निरन्तर सही–सही होते रहने से अन्तिम खाते शीघ्र तैयार होने में आसानी रहती है।
8. **अंकेक्षक को सुगमता** – सन्तोषप्रद आन्तरिक निरीक्षण के कारण अंकेक्षण का कार्य सरल हो जाता है और वह परीक्षण जांच के द्वारा अपना कार्य कर सकता है । अतः वर्ष की समाप्ति पर अंकेक्षण की शीघ्र तैयार हो जाएगी।
9. **प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व निश्चित होना–** आन्तरिक निरीक्षण में प्रत्येक व्यक्ति का उतरदायित्व निश्चित होता है। अतः गड़बड़ी के समय उतरदायित्व का झगड़ा नही होता है।
10. **आन्तरिक अंकेक्षण के समान–** समस्त कार्यों की जांच निरन्तर होने के कारण यह प्रणाली आन्तरिक अंकेक्षण का कार्य करती है।
11. **व्यवसायी का निश्चित होना**–सन्तोषप्रद आन्तरिक निरीक्षण नियन्त्रण प्रणाली अपनाने पर व्यवसायी हिसाब–किताब के लेखों के सम्बन्ध में निश्चित हो जाता है और अपना समय अन्य कार्यों में लगा सकता है।

प्रश्न :–

1. **एक आदर्श आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था में किन–किन आवश्यक तत्वों का होना आवश्यक है ?**
2. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के प्रमुख लाभ कौन–कौन से है ?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आन्तरिक निरीक्षण से हानियॉ (Disadvantages of Internal Check System)

1. **कार्य की पुनरावृति होना** – इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष कार्य की पुनरावृति है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपना कार्य शुरू करने से पहले अब तक किये गये कार्यों की जांच करनी होती है। यह प्रक्रिया अन्त तक चलती रहती है। इससे एक ही कार्य कई बार दोहराया जाता है।

2. **अधिक खर्चीली प्रणाली** – इस व्यवस्था में अधिक संख्या में कर्मचारी नियुक्त करने पड़ते है और इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कागजी कार्यवाही अधिक करनी पड़ती है जिससे स्टेशनरी का खर्च बढ़ जाता है। अतः यह व्यवस्था सुदृढ वितीय स्थिति वाली संस्थाओं में ही लागू की जा सकती है, छोटी संस्थाओं में नहीं।

3. **उच्च पदाधिकारियों द्वारा लापरवाही की सम्भावना** – चूंकि इस पद्वति में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कार्यों की लगातार जांच होती है, इसलिए जब कार्य पूर्ण होने पर ऐसे कार्य का प्रतिवेदन जब उच्च अधिकारी के समक्ष रखा जाता है तो वह इसे सही मानकर हस्ताक्षर कर देते है।इससे इन अधिकारियों में लापरवाही की प्रवृति पनपती है।

4. **गुटबन्दी पनपना** – इस व्यवस्था में यदि अधिकारी सर्तक नही रहता है तो कर्मचारी आपस में गुट बनाकर गड़बड़ी कर सकते है।

5. **अंकेक्षण की लापरवाही** – आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था कभी–कभी अंकेक्षण को भी लापरवाह बना देती है। अंकेक्षण भी यह मान लेता है कि अशुद्वियां, छल–कपट या अनियमितताएं होने की संभावना नही है। अतः वह थोड़ी जांच परीक्षण से स्वंय को सन्तुष्ट कर लेता है। उसकी यह प्रवृति उसे लापरवाह बना देती है।

आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था की जांच के तरीकें (Methods of Examination Of the Sysyem of Internal Check)

संस्था में प्रचलित आन्तरिक निरीक्षण की व्यवस्था की जांच करने के लिए निम्नलिखित विधियों को प्रयोग में लाया जा सकता है।

1. **प्रारम्भिक जांच की विधियां** – आन्तरिक निरीक्षण की प्रारम्भिक रूप में परीक्षात्मक जांच की जाती है। यह बहुत संक्षिप्त जांच होती है। इसके लिए अंकेक्षण प्रबन्धकों से तथा कर्मचारियों से प्रश्नों द्वारा पुछताछ करता है, स्वंय संस्था के विभागों की कार्य–प्रणाली का निरीक्षण करता है तथा संस्था के लेखाकर्म की प्रक्रियाओं की सरसरी तौर पर जांच करता है।

2. **कार्य के दौरान जांच की विधियां** – अंकेक्षण तथा उसका स्टाफ अंकेक्षण करते समय भी अपने कार्य के दौरान आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था की जांच करता रहता है। यह ठीक समय पर आवश्यकता पड़ने पर प्रबन्धकों एवं संस्था के कर्मचारियों से व्यक्तिगत पुछताछ करते रहते है तथा उनसे प्रबन्ध संचालन की प्रक्रिया के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहते है। अंकेक्षण संस्था में प्रबन्ध संचालन के दौरान प्रयोग में लाये जाने वाले कागजों, फार्मों एवं चार्टों की जांच करते है। कई बार कुछ चुने हुए कागजों की सघन जांच भी की जाती है।

3. **कार्य के बाद जांच की विधियां** – अंकेक्षण कार्य समाप्त होने के बाद भी इस व्यवस्था की समीक्षा करना आवश्यक होता है। इसमें एक तरफ तो इस व्यवस्था में सुधार करने के लिए उचित सुझाव दिये जा सकते है। इसके अतिरिक्त अगले अंकेक्षण कार्यक्रम को बनाने में सहायता मिलती है। एक समीक्षा के लिए अंकेक्षण एक प्रश्नावली तैयार करता है, जिनके प्रश्नों के उतर 'हा' या नही' में उतर देने होते है। वह इस प्रश्नावली को प्रत्येक उस कर्मचारी को सौंप देता है जो अंकेक्षण का कार्य करता है। अंकेक्षण का कार्य समाप्त होने के पश्चात अंकेक्षक तथा उसके कर्मचारी सभी आपसी विचार–विमर्श के द्वारा उन प्रश्नावलियों का विश्लेषण करते हुए इस व्यवस्था की समीक्षा करते है।

प्रश्न :–

1. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था से क्या–क्या हानियॉ है ?**
2. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य के दौरान जांच किस प्रकार की जाती है ?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था में प्रारम्भिक जांच किस प्रकार की होती है ?**

भिन्न–भिन्न व्यापारिक लेन–देनों के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण

किसी भी संस्था की आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था उसकी आन्तरिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। अतः सभी संस्थाओं के लिए किसी एक आदर्श प्रणाली का होना मुश्किल है। इसलिए आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था का स्वरूप उस संस्था की आन्तरिक परिस्थितियों के आधार पर तय किया जाता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से एक आदर्श निरीक्षण व्यवस्था में निम्नलिखित विषयों का समावेश किया जाता है–

नकद व्यवहारों के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था –

नकद व्यवहारों का लेखा रोकड़ बही में किया जाता है। इन व्यवहारों को दो भागों में बांटा जाता है। प्रथम रोकड़ प्राप्ति से सम्बन्धित व्यवहार तथा द्वितीय रोकड़ भुगतान से सम्बन्धित व्यवहार होते है

नकद प्राप्ति से सम्बन्धित व्यवहार

नकद प्राप्ति के लिए आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि समस्त नकद प्राप्तियों के सम्बन्ध में रकम प्राप्त होते ही तुरन्त लेखे कर दिये जाये और जितना नकद प्राप्त होना चाहिए था, उतना रूपया अवश्य ही प्राप्त कर लिया जाये। रोकड़ प्राप्ति से सम्बन्धित व्यवहारों को भी हम निम्नलिखित तीन मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते है–

1. **माल की नकद बिक्री से प्राप्तियॉ**
2. **देनदारों से प्राप्तियॉ**
3. **अन्य प्राप्तियॉ**

1- माल की नकद बिक्री से प्राप्तियॉ (Receipts from cash sales)

एक व्यापारिक संस्था में इस प्रकार की प्राप्तियों का प्रमुख स्थान माना जाता है। इसलिए यह रोकड़ बही के प्राप्ति पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण मद है। माल की नकद बिक्री कई प्रकार से हो सकती है, जिनमें निम्नलिखित तीन प्रमुख विधियां है–

(अ) दुकान पर माल की बिक्री

(ब) डाक द्वारा माल की बिक्री

(स) विक्रय प्रतिनिधियों द्वारा माल की बिक्री

(अ) **दुकान पर माल की बिक्री** –दुकान पर माल की नकद बिक्री की सम्पूर्ण प्रक्रिया को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

1. **माल की बिक्री करना** – दुकान पर माल को दिखाना, ग्राहकों को कीमत बताना तथा उनमें माल को पसन्द करवाने का कार्य विक्रयकर्ताओं का होता है। इसके लिए आवश्यकतानुसार विक्रयकर्ता नियुक्त किये जाते है। यदि विक्रयकर्ता एक से अधिक है तो उनमें कार्य का स्पष्ट बंटवारा कर दिया जाता है। ये लोग ग्राहक की इच्छानुसार उनकों माल दिखाते है, माल की कीमत बताते है और पंसद किये गये माल को अलग निकालते रहते है।

2. **माल का बिल बनाकर पैक करना** – विक्रेता स्वंय के द्वारा बेचे गये माल का खुद ही बिल बनाता है एवं उस बिल पर अपने हस्ताक्षर करता है। ऐसा करने के पश्चात वह बिल की मूल प्रति ग्राहक को सौंप देता है और उसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रख लेता है। यदि प्रतिलिपि एक से अधिक है तो वह अन्तिम प्रतिलिपि अपने पास रखता है और शेष बिल बुक से अलग करके उन्हे तथा बेचे गये माल को एक अन्य कर्मचारी के पास पहुंचा देता है जिसे प्रमुख विक्रेता कहते है। प्रमुख विक्रेता सहायक विक्रेताओं द्वारा भेजे गये बिलों की जांच करता है एवं बिलों से माल का मिलान करता है।

   इस जांच के दौरान वह देखता है कि बेचा गया माल बिल में लिखे गये माल के विवरण के अनुसार है या नहीं? माल की कीमत सही है या नहीं? बिल में माल की मात्रा, कीमत तथा गणना कार्य ठीक से लिखा गया है या नहीं? बेचे गये माल में कोई दोष तो नही? यदि प्रमुख विक्रेता इन जांच से सन्तुष्ट हो जाता है तो वह उस बिल की कार्बन प्रतिलिपियों पर अपने हस्ताक्षर करके उस माल को पैक करवाने का कार्य करता है। माल पैक के पश्चात वह विक्रय किये गये माल की राशि अपने रजिस्टर में लिख लेता है। तत्पश्चात वह बिल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की एक कार्बन प्रतिलिपि को माल की कीमत का भुगतान प्राप्त करने वाले कर्मचारी के पास भेज देता है जिसे रोकड़िया कहते है। वह ग्राहक से भी कहेगा कि वह रोकड़िये को कीमत का भुगतान कर दे। वह बिल की दूसरी कार्बन प्रतिलिपि माल के साथ उस कर्मचारी को भेज देगा जिसकी जिम्मेदारी ग्राहक को माल सौंपने की है।

3. **माल की कीमत का भुगतान प्राप्त करना** – माल की कीमत का भुगतान चूंकि रोकड़िया प्राप्त करता है इसलिए प्रमुख विक्रेता बेचे गये माल की एक कार्बन प्रतिलिपि रोकड़िये के पास पहले से ही भेज देता है और दूसरी प्रतिलिपि ग्राहक स्वंय लेकर आता है। रोकड़िया दोनों प्रतिलिपियों का आपस में मिलान करके भुगतान प्राप्त करता है एवं ग्राहक वाली प्रतिलिपि पर अपनी मुहर लगाकर हस्ताक्षर कर देता है। तत्पश्चात वह अपने रजिस्टर में इसकी प्रविष्टि कर लेता है।

4. **माल की सुपुर्दगी ग्राहक को देना** – संस्था का प्रमुख विक्रेता माल को पैक करवाकर माल की सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति के पास भेज देता है। माल के पैक के साथ में सम्बन्धित बिल की एक प्रतिलिपि भी भेजी जाती है। उधर ग्राहक भी बिल की राशि का भुगतान करके उसके पास पहुंच जाता है। ग्राहक भुगतान की गई राशि का बिल उसे दिखाकर माल प्राप्त कर लेता है।

5. **पुस्तकों में लेखे करना** – प्रतिदिन शाम को प्रत्येक विक्रेता स्वंय के द्वारा बेचे गये माल के सभी बिलों का क्रम से एक विवरण पत्र तैयार करता है तथा उसे व्यवस्थापक के पास भेज देता है। रोकड़िया और माल की सुपुर्दगी देने वाला व्यक्ति भी इसी प्रकार से एक–एक विवरण पत्र तैयार करके व्यवस्थापक के पास भेज देते है। जांच के दौरान व्यवस्थापक को यदि दोनों विवरण पत्रों में कोई अन्तर लगता है तो उसी समय उसका पता लगाकर उसे ठीक किया जाता है, और यदि दोनों विवरण ठीक होते है तो लेखा पुस्तकों में प्रविष्टि कर दी जाती है।

2. डाक द्वारा माल की बिक्री – कुछ व्यापार गृहों में माल की बिक्री डाक द्वारा भी की जाती है। ग्राहकों से माल के आदेश प्राप्त होने पर माल उनके पास वी. पी. पी. द्वारा भेज दिया जाता है यदि ग्राहक माल की कीमत का भुगतान कर देता है तो माल ग्राहक को दे दिया जाता है और यदि भुगतान नही करता है तो माल लौटा दिया जाता है। इस प्रकार की बिक्री के लिए निम्न प्रकार की व्यवस्था अपनाई जाती है–

1. **आदेश प्राप्ति** – जैसे ही ग्राहक से माल का आदेश प्राप्त हो उसे एक आदेश पुस्तिका में लिख लिया जाना चाहिए।इन आदेशों को क्रमानुसार लिखना चाहिए, और आदेश की पूर्ति भी क्रमानुसार तिथिवार की जानी चाहिए। जब माल पैक करके रवाना किया जाता है तो इसकी प्रविष्टि भी की जानी चाहिए।

2. **रजिस्टर में लेखा करना** – जो माल ग्राहक के पास भेजा गया है उसका लेखा एक अन्य रजिस्टर में किया जाना चाहिए। इस रजिस्टर में ग्राहक का नाम एवं पता, आदेश प्राप्ति की क्रम संख्या एवं तिथि, माल का मूल्य एवं मात्रा तथा माल भेजने की तिथि का भी उल्लेख होना चाहिए। माल का भुगतान प्राप्त होने एवं वापस लौटकर आने दोनों ही स्थितियों में लेखा इसी रजिस्टर में किया जाना चाहिए।

3. **प्राप्त राशि का लेखा** – यदि माल के आदेश के साथ ग्राहक से कोई अग्रिम राशि प्राप्त हुई हो, तो उसका लेखा भी उस वक्त रजिस्टर में तथा रोकड़ बही में करना चाहिए। वी.पी.पी. राशि प्राप्त होने पर उसका लेखा दोनों स्थानों पर होना चाहिए।

प्रश्न :–

1. **दुकान पर माल की बिक्री के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए ।**
2. **डाक द्वारा माल की बिक्री की स्थिति में माल ग्राहक के पास कैसे भेजा जाता है ?**
3. **डाक द्वारा ग्राहक को माल भेजने पर रजिस्टर में लेखा करते समय किन–किन बातों का उल्लेख होना जरूरी है।**

3. विक्रय प्रतिनिधियों द्वारा माल की बिक्री – विक्रय प्रतिनिधियों द्वारा माल की बिक्री के सम्बन्ध में निम्न प्रकार की व्यवस्था अपनाई जा सकती है–

1. **आदेश प्राप्त करना** – विक्रय प्रतिनिधि के पास आदेश पुस्तक रहती है। ग्राहक से जिस–जिस माल का आदेश प्राप्त होता है उस माल का विवरण, किस्म, मात्रा तथा मूल्य आदि लिखकर आदेश पत्र पर ग्राहक के हस्ताक्षर करवा लिये जाते है तथा विक्रय प्रतिनिधि स्वंय भी उस पर हस्ताक्षर कर देता है। आदेश पत्र की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मूल प्रति आदेश पुस्तिका से अलग करके ग्राहक को सौंप दी जाती है तथा दूसरी प्रति पुस्तिका से अलग करके प्रधान विक्रेता के पास भेज दी जाती है तीसरी प्रति पुस्तिका में ही प्रधान के पास रहती है।

2. **प्रधान कार्यालय से माल की रवानगी** – जैसे ही प्रधान कार्यालय में आदेश की प्रति प्राप्त होती है वैसे ही आदेश के अनुसार माल भेजने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। आदेशानुसार माल पैक करके ग्राहक तक पहुंचाने के लिए माल रवाना कर दिया जाता है।

3. **रकम प्राप्त करना** – यदि विक्रय प्रतिनिधि ने आदेश प्राप्त करते समय ग्राहक से अग्रिम प्राप्त कर लिया है तो उसकी कच्ची रसीद देने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस कच्ची रसीद में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि यह रसीद मात्र कच्ची रसीद है तथा भुगतानकर्ता को प्रधान कार्यालय से ही पक्की रसीद प्राप्त होगी।जब विक्रय प्रतिनिधि को अग्रिम प्राप्त होता है तो उसे ऐसी राशि तुरन्त प्रधान कार्यालय को भेज देनी चाहिए। तत्पश्चात उस विवरण को ध्यान में रख कर प्रधान कार्यालय उनकी पक्की रसीदें बनाकर भेजने की व्यवस्था करता है। यदि विक्रय प्रतिनिधि को उधार का वसूली का कार्यभार भी सौंपा गया है तो उपरोक्त प्रक्रिया ही अपनायी जानी चाहिए। उपरोक्त के अतिरिक्त विक्रय प्रतिनिधि को कमीशन तथा व्ययों का भुगतान सीधे प्रधान कार्यालय से किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त विक्रय प्रतिनिधि द्वारा अपने ग्राहकों के लेखे समय–समय पर प्रधान कार्यालय भेजने चाहिए ताकि उनका मिलान किया जा सके।

4. **डाक द्वारा माल की बिक्री** – इस प्रकार की बिक्री के लिए निम्न प्रकार की व्यवस्था अपनाई जा सकती हैः–

1. **आदेश प्राप्त करना** – ग्राहकों से डाक द्वारा आदेश प्राप्त होते ही उनको एक आदेश प्राप्ति रजिस्टर में दर्ज कर लिया जाता है। जिस क्रम में माल के आदेश प्राप्त होते है उसी क्रम से आदेश के अनुसार माल को पैक करके डाक से भेजने की व्यवस्था होती है। माल की रवानगी पर इस रजिस्टर में माल भेजने की तारीख भी अंकित कर दी जाती है।

2. **रजिस्टर में लेखा करना** – जो माल ग्राहक के पास भेजा गया है उसका लेख एक अन्य रजिस्टर में कर लिया जाता है इस रजिस्टर में निम्न बातों का स्पष्ट उल्लेख होता है–

   1. ग्राहक का नाम एवं पता
   2. आदेश प्राप्ति की क्रम संख्या एवं तारीख
   3. माल की मात्रा एवं उसकी किस्म
   4. माल का मूल्य
   5. माल भेजने की तारीख

3. **प्राप्त राशि का लेखा** –यदि माल के आदेश के साथ ग्राहक से कोई अग्रिम राशि भी प्राप्त हुई हो तो उसका लेखा भी उक्त रजिस्टर में तथा रोकड़ बही में होता है। वी.पी.पी. की राशि प्राप्त होने पर उसका लेखा दोनों स्थानों पर किया जाता है।

4. **देनदारों की प्राप्तियॉं** –देनदारों से प्राप्तियां दो प्रकार से हो सकती है। प्रथम वे चैक, ड्राफ्ट आदि के रूप में डाक द्वारा भुगतान कर सकते है। द्वितीय वे संस्था की खिड़की पर व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित होकर नकद राशि जमा करा सकते है जिनका विवरण निम्न है–

1. **डाक द्वारा प्राप्ति** – देनदारों द्वारा नकद राशि, चैक, ड्राफ्ट या अन्य किसी रूप में डाक द्वारा भुगतान किया जा सकता है। ऐसी प्राप्तियों के लिए निम्न व्यवस्था होती है–

1. **डाक खोलने का अधिकार** – डाक प्राप्त करने तथा उसे खोलने का अधिकार रोकड़ियों को नही होता है, अपितु एक अन्य जिम्मेदार व्यक्ति को होता है। वह अधिकारी अपने पास एक रजिस्टर रखता है तथा किसी भी व्यक्ति से मनीआर्डर, बीमा या अन्य प्रकार से डाक द्वारा नकद, चैक, ड्राफ्ट के रूप में कोई रकम प्राप्त होते ही उसका लेखा तुरन्त रजिस्टर में करता है।

2. **रोकड़बही में लेखा करना** – रोकड़िये को नकद राशि, चैक, ड्राफ्ट आदि प्राप्त होते ही वह उनका लेखा रोकड़बही में करता है।

3. **बैंक में रकम जमा कराना** – बैंक में रकम जमा करवाने का कार्य रोकड़िये के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को भी सौंपा जा सकता है। जमा कराने की पर्ची पर उसके तथा रोकड़िये के दोनों के हस्ताक्षर होतें है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **खाता बही में लेखा करना** – प्रतिदिन रोकड़िये को उसके द्वारा रोकड़बही में जमा की गई समस्त राशियों का एक विवरण बनाकर लेखापाल के पास भेजना तथा उक्त विवरण के आधार पर अपनी पुस्तकों में सम्बन्धित देनदारों के खातों में उनका लेखा कर लेतें है।

5. **देनदारों को रसीद भेजना** – रकम भेजने वाले देनदारों के पास रसीद भेजने की उचित व्यवस्था होती है यह रसीद एक अन्य जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा बनाई जाती है। यह रसीद रोकड़िये द्वारा बनाए गए विवरण के आधार पर बनाई जाती है।

6. **रसीद बुक से मिलान करना** – डाक प्राप्त करने वाले अधिकारी के रजिस्टर तथा रोकड़िये की रोकड़बही का मिलान रसीद बुक की प्रतिपर्णों से किया जाता है।

7. **खिड़की पर नकद प्राप्ति** – यदि संस्था की खिड़की पर किसी व्यक्ति द्वारा कोई राशि व्यक्तिगत तौर पर जमा कराई जाये तो इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था उपयुक्त रहती है–

   1. **रकम प्राप्त करना** – इस प्रकार की समस्त रकम प्राप्त करने का अधिकार रोकड़िये को होता है। इस हेतु रोकड़िये के पास एक छपी हुई रसीद बुक होती है। रकम प्राप्त होते ही वह रसीद भर कर तथा मूल प्रति भुगतान करने वाले व्यक्ति को देकर प्रतिपर्ण पर उसके हस्ताक्षर करवा लेता है।

   2. **लेखा पुस्तकों में प्रविष्टि करना** – प्रतिदिन इस प्रकार की समस्त प्राप्तियों का एक विवरण–पत्र बनाकर लेखापाल के पास भेज देता है जो अपनी पुस्तकों में सम्बन्धित देनदारों के खातों में आवश्यक प्रविष्टि कर लेता है।

   3. **रसीद बुक से मिलान करना** – अन्य व्यक्ति द्वारा रसीद बुक, रोकड़बही की प्रविष्टियॉं, रोकड़िये का विवरण तथा लेखा–पुस्तकों में प्रविष्टियों का मिलान किया जाता है।

   4. **अन्य प्रविष्टियॉं** – ऐसी प्राप्तियों के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न प्रकार से है–

      a) बैंक से नकद राशि निकालना

      b) ऋण के रूप में नकद राशि प्राप्त करना

      c) संस्था के मालिकों द्वारा अतिरिक्त पूँजी का विनियोजन करना

      d) 4.पुरानी स्थाई सम्पतियों की बिक्री करना

      e) 5.ब्याज, किराया या अन्य कोई आय के रूप में नकद राशि प्राप्त करना।

      f) 6.बिल, हुण्डी आदि की राशि प्राप्त करना।

प्रश्न :–

1. **विक्रय प्रतिनिधियों की नियुक्ति क्यों की जाती है ?**
2. **विक्रय प्रतिनिधि को आदेश प्राप्त करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?**
3. **देनदारों से प्राप्तियों के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए ।**

रोकड़ भुगतान से सम्बन्धित व्यवहार

एक व्यवसायिक संस्था में रोकड़ भुगतान से सम्बन्धित निम्न प्रकार के महत्वपूर्ण व्यवहार होते है–

1. **माल एवं सामग्री का नकद क्रय** – क्रय किये गये माल तथा सामग्री का बीजक विक्रेता से प्राप्त होता है तथा क्रय विभाग द्वारा उसे पास किया जाता है। उसके पश्चात ही उसके भुगतान की कार्यवाही प्रारम्भ होती है। इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था अपनाई जा सकती है–

   (1) **भुगतान हेतु प्रमाणक तैयार करना** – क्रय विभाग ज्योंही बीजक पास कर दे उसके भुगतान के लिए एक प्रमाणक बनाया जाता है। इस समय क्रय वापसी (यदि कोई हो), नकद छूट तथा व्यापारिक छूट आदि का भी ध्यान रखना होता है। इस प्रमाणक पर क्रय विभाग के अधिकारी के हस्ताक्षर होते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) **प्रमाणक का लेखा करना तथा उसे पास करना** – लेखा विभाग माल के प्रमाणक तथा बीजक दोनों की जांच करके लेखा पुस्तकों में माल क्रय का लेखा करता है तथा प्रमाणक को भुगतान के लिए पास करता है।

(3) **भुगतान का चैक तैयार करना** – सर्वप्रथम लेखा विभाग से आये हुए प्रमाणक की अच्छी तरह से जांच करके यह देख लेना चाहिए कि उस प्रमाणक पर उपयुक्त अधिकारी के हस्ताक्षर हैं या नहीं। उस प्रमाणक के सम्बन्ध में थोड़ी सी भी शंका होने पर उसकी सूचना सम्बन्धित अधिकारियों को मिलनी चाहिए । प्रमाणक की सत्यता एवं विश्वसनीयता के सम्बन्ध में पूरी तरह से सन्तुष्ट होने पर भुगतान के लिए चैक तैयार करना होता है।

(4) **चैक भेजना तथा रोकड़बही में लेखा करना** – सम्बन्धित अधिकारी के हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात उस चैक को विक्रेता के पास भेजने की व्यवस्था की जाती है तथा रोकड़बही में इस भुगतान का लेखा किया जाता है।

2. **लेनदारों को भुगतान** – यदि किसी लेनदार की पिछली बकाया राशि का भुगतान करना हो तो इसके लिए भुगतान की प्रक्रिया भी लगभग उसी प्रकार की होगी जो माल के नकद क्रय के लिए होती है। यदि लेनदार से भुगतान के लिए तगादा प्राप्त हुआ है, तो लेखा विभाग उस लेनदार के खाते की जांच करके भुगतान की राशि निश्चित करेगा तथा भुगतान का एक प्रमाणक बनाया जाएगा। यदि संस्था में स्वंय ही भुगतान का निर्णय लिया गया है तो जिस स्तर पर यह निर्णय लिया गया है, वहां से भुगतान के लिए एक प्रमाणक बनाया जाता है तथा उसे लेखा विभाग के पास भेजा जाता है।

3. **मजदूरी का भुगतान** – मजदूरी के भुगतान के सम्बध में आन्तरिक निरीक्षण की व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होनी चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जा सकती है–

(1) **मजदूरों की नियुक्ति** – बड़ी–बड़ी संस्थाओं में मजदूरों की नियुक्ति तथा उनकी सेवा का लेखा जोखा रखने के लिए एक अलग से विभाग होता है यह विभाग कर्मचारी विभाग के नाम से जाना जाता है। संस्था के अन्य विभाग समय–समय पर इस विभाग को अपनी आवश्यकता के बारे में बताते रहते है और यह विभाग आवश्यकतानुसार इन विभागों में योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति करता है।

(2) **देय मजदूरी का लेखा** – कारखाने में काम करने वाले मजदूरों को जो मजदूरी दी जाती है वह समय के आधार पर या मजदूरी के आधार पर हो सकती है। दोनों ही प्रकार की मजदूरी का भुगतान दैनिक साप्ताहिक या मासिक आधार पर किया जाता है।

(3) **मजदूरी की तालिकाएँ बनाना** – लेखा विभाग मजदूरी सम्बन्धी अपना लेखा कार्य पूरा करने के बाद सारे पत्रक रोकड़ विभाग में भेजता है। यह विभाग इन पत्रकों के आधार पर मजदूरी की तालिकाएँ बनाता है और उनकी जॉच करता है। इन तालिकाओं में मजदूरी सम्बन्धी विभिन्न कटौतियों का विवरण होता है और वास्तविक रूप से देय राशि का उल्लेख भी होता है। इसके पश्चात इन तालिकाओं का योग लगाकर यह ज्ञात कर लिया जाता है कि वास्तव में मजदूरी के लिए कितनी राशि का भुगतान करना है।

(4) **मजदूरी का भुगतान करना** – तालिकाएँ पूरी होने के बाद मजदूरी का भुगतान करने के लिए प्रमाणक बनाएँ जाते है। यह प्रमाणक और सम्बन्धित तालिका उस अधिकारी के पास भेजे जाते है जो इन प्रमाणकों को पास करता है। अधिकारी आवश्यक जॉच पड़ताल करके इन प्रमाणकों को पास कर देता है । प्रमाणक पास होने के बाद चैक बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है और निश्चित तिथि पर मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

मजदूरी भुगतान के सम्बन्ध में छल–कपट को रोकने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन अपेक्षित है–

- मजदूरों की नियुक्ति पर पूरा नियन्त्रण होना चाहिए। जहां तक सम्भव हो आकस्मिक श्रमिकों की नियुक्ति से बचना चाहिए।
- प्रत्येक मजदूर की मजदूरी में से कौन–कौन सी कटौतियों करनी है और उसे कितनी राशि का भुगतान करना है यह जिम्मेदारी लेखा विभाग की होनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- मजदूरी के समय पत्रक या कार्य पत्रक की जॉच और मजदूरी की गणना की जिम्मेदारी लागत लेखा विभाग की होनी चाहिए।
- मजदूरी सम्बन्धी तालिकाओं को बनाने का कार्य कम से कम तीन कर्मचारियों द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें पहला कर्मचारी तालिका बनाए, दूसरा कर्मचारी पत्रकों से उसका मिलान करे और तीसरा गणना कार्य की जॉच करे।
- रोकड़ विभाग को मजदूरी के भुगतान का कार्य सौंपा जाना चाहिए।
- जिस समय मजदूरों को भुगतान किया जाता है उस समय रोकड़ विभाग के कर्मचारी के साथ उत्पादन विभाग का एक कर्मचारी अवश्य होना चाहिए जो उस मजदूर से परिचित हो।

4. **अन्य व्ययों का भुगतान –** मजदूरी के अलावा एक औधोगिक एवं व्यावसायिक संस्था में अन्य बहुत से व्ययों का भुगतान किया जाता है जैसे वेतन, कमीशन, यात्रा व्यय, बीमा व्यय, मरम्मत तथा किराया आदि। ऐसे व्ययों के भुगतान के लिए जो भी प्रमाणक बनाऐ जाऐ उसकी जॉच पड़ताल भली प्रकार होनी चाहिए। लेखा विभाग को भी ऐसे प्रमाणकों को पास करने से पहले इन्हें भली प्रकार जॉच लेना चाहिए। इसके पश्चात इन्हें रोकड़ विभाग में भुगतान के लिए भेजा जाना चाहिए।

प्रश्न :–

1. **भुगतान का चैक तैयार करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?**
2. **मजदूरी का भुगतान करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रकिया का वर्णन कीजिए ।**
3. **मजदूरी के भुगतान के सम्बन्ध में कौन–कौन से सामान्य नियमों का पालन होना आवश्यक है ?**

फुटकर व्यय
(Petty Expenses)

ऐसी संस्थाऐं जहां फुटकर व्यय बड़ी संख्या में किये जाते है, वहां ऐसे व्ययों के भुगतान का कार्य फुटकर रोकड़ियें को सौंप दिया जाता है और जिस बही में ऐसे व्ययों का लेखा किया जाता है उसे फुटकर रोकड़ बही कहते है। फुटकर रोकड़िये को ऐसे व्ययों के लिए कुछ राशि अग्रिम प्रदान कर दी जाती है जिसमें से यह ऐसे व्ययों का भुगतान करता जाता है और इनका लेखा फुटकर रोकड़ बही में करता जाता है। एक निश्चित समय के पश्चात इस रोकड़िये द्वारा व्ययों का हिसाब दे दिया जाता है और मुख्य रोकड़िये द्वारा उसकी जॉच कर ली जाती है। इस व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

- सभी प्रमाणकों को भुगतान के क्रम में फाइल में लगाना चाहिए।
- किसी पदाधिकारी द्वारा पास किये गये प्रमाणकों के आधार पर ही भुगतान करना चाहिए।
- प्रत्येक भुगतान के लिए भुगतान पाने वाले से भुगतान प्राप्ति की रसीद अवश्य लेनी चाहिए।
- यह पहले से ही तय होना चाहिए की फुटकर रोकड़िया अधिक से अधिक कितनी राशि अपने पास रख सकता है और वह कौन–कौन से भुगतान करने के लिए अधिकृत है।
- फुटकर रोकड़िये से एक निश्चित समयावधी के बाद हिसाब लिया जाना चाहिए और उसकी जॉच की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।
- फुटकर रोकड़िये को यह अधिकार नही होना चाहिए की वह उधार लेने या देने का कोई व्यवहार किसी के साथ करे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्रय विभाग के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था
[Internal Check System For Purchases Department]

ऐसी संस्थाऐं जहां बड़ी मात्रा में माल खरीदा जाता है वहां क्रय करने की जिम्मेदारी क्रय विभाग की होती है। क्रय विभाग को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार सही माल सही कीमत पर उचित मात्रा में खरीदने की व्यवस्था करें। यदि खरीदा गया माल किसी भी कारण से उपयुक्त न हो तो उसे वापस लौटाने का दायित्व भी इसी विभाग का होता है। माल क्रय के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए–

माल का क्रय – माल के क्रय के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए–

1. **क्रय मांग पत्र की प्राप्ति –** क्रय मांग पत्र ऐसा मांग पत्र होता है जिससे क्रय विभाग को इस बात की जानकारी होती है कि कौनसा माल खरीदना है। संस्था के अन्य विभाग जिनको अपने लिए माल की आवश्यकता होती है वे समय–समय पर ऐसा मांग पत्र भरकर इस विभाग को भेजते है। इस पत्र में माल की मात्रा, किस्म, माल प्राप्ति की अनुमानित अवधि, अधिकतम मूल्य और उचित पदाधिकारी की स्वीकृति और उसके हस्ताक्षर होने चाहिए।

2. **माल का आदेश –** मांग पत्र प्राप्ति के पश्चात क्रय विभाग यह निर्णय करता है कि माल कहां से खरीदा जाए। इसके लिए विक्रेताओं से निविदाऐं भी आमन्त्रित की जा सकती है या पूर्व में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उचित निर्णय लिया जा सकता है। क्रय विभाग द्वारा क्रय आदेश की तीन प्रतिलिपियां तैयार की जाती है जिसमें से एक विक्रेता को तथा दूसरी क्रय मांग पत्र भेजने वाले विभाग को भेज दी जाती है और तीसरी कार्यालय प्रति के रूप में क्रय विभाग के पास रहती है।

3. **माल प्राप्त करना और उसकी जॉच करना –** बड़ी संस्थाओं में इस कार्य के लिए एक अलग विभाग बनाया जाता है जिसे माल प्राप्ति विभाग कहते है ऐसी संस्थाएं अपने संस्था के प्रवेश द्वार पर एक पुस्तक रखती है जिसमें संस्था के भीतर प्रविष्ट होने वाले माल की प्रविष्टि कर ली जाती है । इसके पश्चात यह विभाग उस माल की जॉच करता है और पता लगाता है कि माल आदेश के अनुसार है या नही। इसी आधार पर यह भी तय कर लिया जाता है कि माल स्वीकार करना चाहिए या इसे वापस भेजा जाना चाहिए।

4. **भुगतान –** विक्रेता माल के साथ बीजक भी भेजता है यह बीजक क्रय विभाग के पास आते ही यह पता लग जाता है कि माल आ चुका है। तत्पश्चात इस बीजक का क्रय आदेश से मिलान किया जाता है और देखा जाता है कि माल आदेशानुसार है या नही। इस जानकारी के बाद ही यह निर्णय लिया जाता है कि बीजक का भुगतान करना है या नही। यदि जॉच के दौरान अनुकूल परिणाम प्राप्त होते है तो बीजक को भुगतान के लिए रोकड़ विभाग के पास भेज दिया जाता है ।

माल की क्रय वापसी – यदि माल आदेशानुसार नही है या अन्य किसी भी प्रकार से उपयुक्त नही है तो माल को लौटाने की कार्यवाही क्रय विभाग द्वारा प्रारम्भ कर दी जाती है इसके लिए एक सलाह नोट तैयार किया जाता है जिसकी एक प्रति लेखा विभाग को और एक प्रति उस विभाग को भेजी जाती है जहां पर माल रखा हुआ है। लेखा विभाग इस नोट के आधार पर अपनी पुस्तकों में क्रय वापसी की प्रविष्टि करता है और लौटाए जाने वाले माल के सम्बन्ध में एक नाम पत्र तैयार करता है जिसकी एक प्रति क्रय विभाग को भेजी जाती है और एक प्रति उस विभाग को भेजी जाती है जहां माल रखा हुआ है।

यह विभाग डेबिट पत्र के प्राप्त करते ही लौटाए जाने वाले माल को पैक करवाकर उस माल को वापस भेज देता है। क्रय विभाग लौटाए जाने वाले माल के साथ आवश्यक अन्य प्रपत्र भी भेज देता है।

प्रश्न :–

1 **फुटकर व्ययों का भुगतान करते समय ध्यान देने योग्य बातों का विवेचन कीजिए ।**

2 **क्रय किये गये माल की प्राप्ति और उसकी जांच के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था होनी चाहिए ?**

3 **क्रय वापसी के सम्बन्ध में अपनाई जाने वाली आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए ।**

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

सामग्री विभाग के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था
[Internal Check System For Stores Department]

ऐसी संस्थाऐं जहां पर सामग्री बड़ी मात्रा में प्राप्त की जाती है, और बड़ी मात्रा में निर्गमित की जाती है वहां सामग्री पर नियन्त्रण रखना अतिआवश्यक हो जाता है। ऐसा इसलिए आवश्यक है ताकि–

- सामग्री सुरक्षित रह सके अथवा उसका अनावश्यक क्षय न हो।
- सामग्री का विभिन्न विभागों को आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में एवम उचित समयानुसार वितरण हो सके।
- सामग्री की चोरी और उसके गबन को रोकना।
- साामग्री को उचित समय पर खरीदने के लिए सूचना देना।
- सामग्री के अनावश्यक संग्रह को रोकना।

उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सामग्री विभाग निम्नलिखित आंतरिक निरीक्षण सम्बन्धी कदम उठाता है।

1 **सामग्री प्राप्त करना –** सामग्री विभाग के मुख्य अधिकारी को ध्यान रखना चाहिए कि भण्डार में किसी भी सामग्री की मात्रा किसी भी समय न्यूनतम स्तर से कम नही होनी चाहिए एवम अधिकतम स्तर से अधिक न हो। इसके साथ–साथ उसे उचित समय पर सामग्री खरीदने के लिए क्रय मांग पत्र भी जारी कर देना चाहिए।

2 **सामग्री की सुरक्षा करना –** सामग्री को सुरक्षित रखने के लिए यह जरूरी है कि सामग्री को रखने के लिए उचित एवं पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक प्रकार की सामग्री के लिए उचित स्थान होना चाहिए यह स्थान वस्तु की प्रकृति एवं आकार के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है।

3 **सामग्री का निर्गमन –** सामग्री के निर्गमन पर भी उचित नियन्त्रण होना आवश्यक है। सामग्री का निर्गमन प्रत्येक विभाग से प्राप्त सामग्री मांग पत्र के आधार पर किया जाता है। तथा जैसे ही माल उस विभाग को प्राप्त होता है वह विभाग सामग्री विभाग को सामग्री प्राप्ति पत्र जारी कर देता है। जब कभी बचा हुआ माल किसी विभाग द्वारा सामग्री विभाग को वापस भेजा जाता है तो सामग्री वापसी पत्र का प्रयोग किया जाता है तथा यदि ऐसा विभाग बचा हुआ माल किसी अन्य विभाग को हस्तान्तरित करता है तो इसके लिए सामग्री हस्तान्तरण पत्र का प्रयोग किया जाता है।

4 **माल की प्राप्ति एवं निर्गमन का लेखा करना –** सामग्री विभाग में माल की प्राप्ति एवं निर्गमन का लेखा तुरन्त होना चाहिए तथा साथ–साथ सामग्री का शेष भी निकालते रहना चाहिए। सामग्री विभाग में एक सामग्री खाता बही भी होनी चाहिए जिसमें प्रत्येक प्रकार की सामग्री के लिए एक अलग खाता होता है। इसमें लेखा करने का कार्य लेखा विभाग के कर्मचारियों का होना चाहिए।

विक्रय विभाग के लिए आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था
Internal Check System For The Sales Department]

क्रय विभाग की तरह बड़ी–बड़ी संस्थाओं में माल की बिक्री करने का कार्य विक्रय विभाग का होता है। यह विभाग विक्रय और विक्रय वापसी दोनों पर उचित नियन्त्रण बनाये रखता है। बिक्री में नकद एवं उधार दोनों प्रकार की बिक्री शामिल है। नकद बिक्री के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था नकद व्यवहारों के साथ स्पष्ट कर दी गई है। उधार बिक्री एवं विक्रय वापसी दोनों के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था इस प्रकार है–

उधार विक्रय के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था

उधार विक्रय के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को निम्नलिखित चार भागों में बांटा गया है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **विक्रय आदेश प्राप्त करना –** जैसे ही विक्रय का आदेश ग्राहक से प्राप्त होता है विक्रय विभाग को चाहिए कि वह ऐसे आदेश को तुरन्त आदेश पत्र में नोट करके उस पर ग्राहक के हस्ताक्षर करवा लें। ऐसे आदेशों के लिए संस्था को अपनी आदेश पुस्तिका रखनी चाहिए। विक्रय आदेश पर उधार माल बेचने की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात उस विक्रय आदेश के आधार पर माल के प्रेषण के आदेश तैयार किये जाते है।

2. **माल का प्रेषण –** प्रेषण विभाग को विक्रय विभाग से जब माल के लिए प्रेषण आदेश प्राप्त होता है तो यह विभाग उस आदेश के अनुसार माल पैक करता है तत्पश्चात उस माल का बीजक तैयार किया जाता है जिसकी एक प्रति ग्राहक को भेजी जाती है, दूसरी विक्रय विभाग को और तीसरी लेखा विभाग को प्रविष्टि हेतु भेजी जाती है। चौथी प्रति प्रेषण विभाग स्वंय अपने पास रखता है।

3. **पुस्तकों में लेखा –** सबसे पहले विक्रय आदेश प्राप्त होते ही उसका लेखा विक्रय विभाग में आदेश प्राप्ति पुस्तक में कर दिया जाता है । प्रेषण विभाग जब माल का प्रेषण करता है तो उसका लेखा माल प्रेषण रजिस्टर में करता है। संग्रह विभाग माल को पैक करके उसका लेखा स्टॉक रजिस्टर में करता है। जब माल संस्था से बाहर जाता है तो उसका लेखा द्वार पर रखी निकासी पुस्तक में किया जाता है । लेखा विभाग उसका लेखा अपनी पुस्तकों में तब करता है जब उसे बेचे गये माल के बीजक की प्रति प्राप्त होती है।

4. **भुगतान प्राप्ति –** नकद बिक्री का भुगतान तो तुरन्त मिल जाता है लेकिन उधार बिक्री के सम्बन्ध में देन दारों से भुगतान दो प्रकार से प्राप्त होता हैः प्रथम खिड़की पर नकद राशि के रूप में और द्वितीय चैक या ड्राफ्ट के रूप में ।

विक्रय वापसी के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था
[Internal Check System For Sales Return]

ग्राहकों द्वारा कभी–कभी बेचा हुआ माल वापस कर दिया जाता है इस सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था निम्न प्रकार हो सकती है –

1. **केता द्वारा माल प्राप्त होना –** जब केता माल वापस लौटाता है तो उसके साथ वापसी के कारणों के उल्लेख का एक पत्र एवम एक नाम पत्र भेजता है जब विक्रय विभाग के पास माल सम्बन्धी सम्स्त कागजात पहुंच जाते है तो वह नाम पत्र अपने पास रख लेता है और माल के स्वामित्व सम्बन्धी कागजात प्रेषण विभाग को भेज देता है। प्रेषण विभाग उन कागजों की जांच के दौरान यह पता लगाता है कि उस माल में क्या खामियां है तथा जिन कारणों से माल लौटाया गया है वे कहां तक सही है। ऐसा करने के पश्चात वह माल का एक विवरण पत्र तैयार करके इसे जांच रिर्पोट के साथ विक्रय विभाग को भेज देता है और इसकी एक प्रति संग्रह विभाग को भेज देता है।

2. **केता को जमा पत्र भेजना –** विक्रय विभाग को प्रेषण विभाग से जब करता है जिसकी एक प्रति लेखा विभाग के पास भेजी जाती है। जमा पत्र की अन्तिम प्रति विक्रय विभाग अपने पास रखता है।

3. **लेखा पुस्तकों में प्रविष्टि करना –** लेखा विभाग विक्रय विभाग से प्राप्त जमा पत्र की प्रति के आधार पर विक्रय वापसी पुस्तक में प्रविष्टि कर देता है।

प्रश्न :–

1. **सामग्री विभाग के सम्बन्ध में आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था को समझाइये।**
2. **उधार बिक्री के सम्बन्ध में पुस्तकों में लेखा करने सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातों को स्पष्ट कीजिए।**
3. **केता द्वारा माल वापस किये जाने की स्थिति में उठाए जाने वाले कदमों की विवेचना कीजिए।**

आन्तरिक अंकेक्षण

[Internal Audit]

आन्तरिक अंकेक्षण आन्तरिक नियन्त्रण प्रणाली का एक अंग माना जाता है। आन्तरिक अंकेक्षण का प्रयोग बड़ी–बड़ी संस्थाओं में किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि व्यापार की सम्पतियों में लेखे और सुरक्षा का उचित प्रबन्ध है या नही, व्यापार में होने वाले खर्चे अधिकृत है या नही, प्रत्येक व्यवहार के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन हुआ है या नही आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रोफेसर वाल्टर बी. मीग्स के अनुसार – ''आन्तरिक अंकेक्षण किसी भी संस्था के वितीय एवं परिचालन सम्बन्धी क्रियाओं का ऐसे अंकेक्षण कर्मचारियों द्वारा किया गया निरन्तर आलोचनात्मक पुनर्निरीक्षण है जो उसी संस्था के पूर्णकालिक वेतनभोगी कर्मचारियों की भांति कार्य करते है।''

अमेरिका के इस्टीटयूट ऑफ इन्टरनल ऑडिटर्स के अनुसार – '' आन्तरिक अंकेक्षण का आश्य किसी भी संगठन में स्वतन्त्र मूल्यांकन की एक ऐसी क्रिया से है जिसका उद्वेश्य प्रबन्ध को उत्पादक एवं रचनात्मक सेवा प्रदान करने के लिए संगठन के लेखाकर्म, वितीय एवं अन्य कार्यों का पूनर्निरीक्षण करना है। यह कार्य उस व्यवसायिक संस्था के नियमित कर्मचारियों द्वारा किया जाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आन्तरिक अंकेक्षण एक प्रकार का अंकेक्षण ही है जो व्यवसाय के ही वेतनभोगी कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है जो आन्तरिक अंकेक्षक के अधीन कार्य करते है।

आन्तरिक निरीक्षण एवं आन्तरिक अंकेक्षण में अन्तर

[Difference between Internal Check and Internal Audit]

अन्तर का आधार	आन्तरिक निरीक्षण	आन्तरिक अंकेक्षण
कार्य की प्रकृति	यह व्यवहारों को लिखने की एक प्रणाली है।	यह उस लेखे की जांच की प्रणाली है।
उद्वेश्यों में भिन्नता	इसके अन्तर्गत छल–कपट एवं त्रुटियों का पता कार्य के दौरान ही लगाना होता है।	इसमें कार्य सम्पन्न हो जाने के पश्चात छल–कपट एवं त्रुटियों का पता लगाना होता है।
जांच का समय	इस व्यवस्था में लेखा कार्य एवं जांच कार्य साथ–साथ होता है।	इसमें जांच कार्य लेखा समाप्त होने के बाद प्रारम्भ होता है।
पृथक कर्मचारी	इस प्रणाली में अलग से कर्मचारी नियुक्त नही किये जाते है।	इस प्रणाली में पृथक व्यक्ति नियुक्त किये जाते है।
प्रयोजक या उपदेशक कार्य	आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था एक प्रयोजक क्रिया है।	आन्तरिक अंकेक्षण व्यवस्था एक उपदेशक क्रिया है ।
त्रुटियों को रोकना एवं ढूंढना	आन्तरिक निरीक्षण छल–कपट एवं त्रुटियों को रोकता है।	आन्तरिक अंकेक्षण छल–कपट एवं त्रुटियों को ढूंढता है।
निरीक्षण एवं पुनर्निरीक्षण	इस व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य का निरीक्षण किया जाता है।	इस व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य का पुनर्निरीक्षण किया जाता है ।
कार्य की रिर्पोट	आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था में कोई रिर्पोट तैयार नही की जाती है।	आन्तरिक अंकेक्षण के पश्चात प्रबन्धकों के अवलोकन हेतु रिर्पोट तैयार की जाती है।

आन्तरिक अंकेक्षण के उद्वेश्य

निम्नलिखित उद्वेश्यों की पूर्ति के लिए आन्तरिक अंकेक्षण का प्रयोग किया जाता है–

1. **पुनर्निरीक्षण करना –** आन्तरिक निरीक्षण के अन्तर्गत किये गये कार्य की पुनः जांच करना इसका प्रमुख उद्वेश्य है।
2. **छल–कपट की खोज करना –** आन्तरिक अंकेक्षण का मुख्य उद्वेश्य कर्मचारियों द्वारा किये जाने वाले छल–कपट तथा गबन का पता लगाना और उसकी रोकथाम करना होता है।
3. **अशुद्वियों की खोज एवं उनकी रोकथाम –** आन्तरिक अंकेक्षण लेखा पुस्तकों के इतनी गहन जांच करता है कि लेखांकन के दौरान रही अशुद्वियों का पता लगाया जा सके और उनमें सुधार कर दिया जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **यह देखना कि व्यवहार अधिकृत है –** इसका मुख्य उद्देश्य यह भी देखना होता है कि व्यवसाय में किये जाने वाले व्यवहार अधिकृत है या नही।

5. **वैधानिक अंकेक्षण में सहायता करना –** आन्तरिक अंकेक्षण अंकेक्षण का अधिकांश भाग आन्तरिक अंकेक्षण के दौरान ही निपटा देता है ऐसा होने से वैधानिक अंकेक्षक का कार्य सरल हो जाता है और वह अपना प्रतिवेदन शीघ्र दे सकता है ।

6. **प्रक्रियाओं में सुधार करना –** व्यवसायिक व्यवहारों का लेखा करते समय प्रक्रियाओं से सम्बन्धित जो कमियां पाई जाती है उनमें सुधार करना भी इसका एक प्रमुख उद्देश्य है।

आन्तरिक अंकेक्षण और वैधानिक अंकेक्षण [Internal Audit and Statutory Audit]

आन्तरिक अंकेक्षण वह प्रणाली है जिसके अन्तर्गत संस्था के कर्मचारी स्वंय अंकेक्षण का कार्य करते है। वैधानिक अंकेक्षण ऐसी व्यवस्था है जिसमें अंकेक्षण स्वतन्त्र व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

समानताएं – आन्तरिक अंकेक्षण एवं वैधानिक अंकेक्षण में निम्नलिखित समानताएं है –

1. दोनों ही सम्पतियों, दायित्वों एवं व्यवहारों का सत्यापन करते है ।
2. दोनों का उद्देश्य छल–कपट एवं त्रुटियों का पता लगाना होता है ।
3. दोनों का कार्य लेखा पुस्तकों की सत्यता एवं विश्वसनीयता की जांच करना होता है ।
4. दोनों अंकेक्षक अपने कार्य को पूरा करने के लिए आधारभूत अंकेक्षण प्राविधियों को अपनाते है।
5. दोनों का कार्य क्षेत्र भी एक ही होता है।
6. दोनों जांच के तरीकों में अपने –अपने अनुभव के आधार पर परिर्वतन करते रहते है।
7. दोनों यह देखते है कि आन्तरिक निरीक्षण व्यवस्था प्रभावशाली है या नही।

असमानता अथवा आन्तरिक अंकेक्षण तथा वैधानिक अंकेक्षण में अन्तर

अन्तर का आधार	आन्तरिक अंकेक्षण	वैधानिक अंकेक्षण
1. नियुक्ति	आन्तरिक अंकेक्षक की नियुक्ति ऐच्छिक होती है।	वैधानिक अंकेक्षक की नियुक्ति सम्बन्धित अधिनियम जो संस्था पर लागू होता है उसके अनुसार अनिवार्य होती है।
स्वतन्त्रता	आन्तरिक अंकेक्षक स्वतन्त्र होकर कार्य नही कर सकता है।	वैधानिक अंकेक्षक अपना कार्य स्वतन्त्र रूप से करता है।
अंकेक्षक की योग्यता	आन्तरिक अंकेक्षक की योग्यताएं नियोक्ता तय करता है।	वैधानिक अंकेक्षक की योग्यता विधान तय करता है।
परामर्श देना	आन्तरिक अंकेक्षक का यह कर्तव्य होता है कि वह संस्था के विभिन्न विभागों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रबन्धकों को परामर्श दे।	वैधानिक अंकेक्षक का कार्य परामर्श देना नही है
उतरदायित्व	आन्तरिक अंकेक्षक का उतरदायित्व अपने नियोक्ता	वैधानिक अंकेक्षक का उतरदायित्व कुछ परिस्थितियों में तीसरे पक्षकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

	के प्रति ही होता है ।	के प्रति भी होता है।
रिर्पोट की विश्वसनीयता	आन्तरिक अंकेक्षक की रिर्पोट विश्वसनीय नही मानी जाती है।	वैधानिक अंकेक्षक की रिर्पोट विश्वसनीय मानी जाती है।
कानून का नियन्त्रण	आन्तरिक अंकेक्षक पर कानून का नियन्त्रण कम होता है।	वैधानिक अंकेक्षक पर कानून का नियन्त्रण अधिक होता है।

प्रश्न :–

1. **आन्तरिक अंकेक्षण किसे कहते है ?**
2. **आन्तरिक अंकेक्षण और आन्तरिक निरीक्षण में क्या अन्तर है ?**
3. **आन्तरिक अंकेक्षण और वैधानिक अंकेक्षण में क्या समानताऐं है ?**

आन्तरिक अंकेक्षण और वैधानिक अंकेक्षण के बीच सहयोग

वैधानिक अंकेक्षक और आन्तरिक अंकेक्षक दोनों ही एक क्षेत्र में कार्य करते है, दोनों ही अपने कार्य में आधारभूत अंकेक्षण तकनीकों अपनाते है और दोनों ही जांच के तरीकों में अपने–अपने अनुभव के आधार पर परिवर्तन करते रहते है। इसलिए इन दोनों में पारस्परिक सामिजस्य होना जरूरी है। इन दोनों के आपसी सहयोग से ही अधिक विस्तृत जांच कार्य सम्पन किया जा सकता है और कार्यों में दोहराव को रोका जा सकता है। यदि दोनों आपसी सहयोग नही रखते है तो कार्यों में बाधा उत्पन होगी और दोनों ही अपने लक्ष्यों को प्राप्त नही कर पायेगें। इसलिए यह जरूरी है कि दोनों आपसी सहयोग एवम तालमेल के साथ अपने कार्यो को सम्पन करें।

वैधानिक अंकेक्षण की आन्तरिक अंकेक्षण पर निर्भरता

यदि किसी व्यवसायिक प्रतिष्ठान में आन्तरिक अंकेक्षण व्यवस्था संतोषजनक एवं भरोसेमंद होती है तो वैधानिक अंकेक्षक का काम हल्का हो सकता है । यदि वैधानिक अंकेक्षक को यह लगता है कि आन्तरिक अंकेक्षक ने विस्तृत जांच करते हुए अपने कार्य को बखुबी पूरा किया है तो वह उस कार्य को छोड़ सकता है और अपनी कार्यक्षमता का उपयोग किसी अन्य कार्य में कर सकता है । इस सम्बन्ध में निर्णय वैधानिक अंकेक्षक को ही लेना पड़ता है । ऐसा निर्णय लेते समय उसे आन्तरिक अंकेक्षक की योग्यता अनुभव कार्यकुशलता एवं कार्य करने में उसकी स्वतन्त्रता आदि तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए।

नोटः– वैधानिक अंकेक्षक आन्तरिक अंकेक्षक पर विश्वास करके अपने कार्य भार को कम अवश्य कर सकता है लेकिन उसके उत्तरदायित्व में कोई कमी नही आती है।

कुशल आन्तरिक अंकेक्षण व्यवस्था के आवश्यक तत्व

एक कुशल एवं आदर्श अंकेक्षण व्यवस्था में निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है –

1. कुशल आन्तरिक अंकेक्षण के लिए यह आवश्यक है कि इस विभाग के सभी कर्मचारी योग्य एवं कुशल होने चाहिए।
2. आन्तरिक अंकेक्षण विभाग के कर्मचारियों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए।
3. आन्तरिक अंकेक्षक को अपना कार्य भली भांति पूरा करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए ऐसा होने पर वह निष्पक्ष होकर कार्यों के सम्बन्ध में सही–सही रिर्पोट दे सकेगा।

प्रश्न :–

1. **आन्तरिक अंकेक्षण किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है ?**
2. **क्या वैधानिक अंकेक्षक आन्तरिक अंकेक्षक पर पूर्ण रूप से निर्भर रह सकता है ?**
3. **एक कुशल आन्तरिक अंकेक्षण व्यवस्था में किन तत्वों का होना अपेक्षित है ?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुसंधान [Investigation]

अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

अनुसंधान को विशिष्ट जांच, जांच पड़ताल एवं अन्वेषण भी कहते है। सामान्य अर्थ में किसी विशेष उद्देश्य से व्यवसाय के लेखों की जांच करने को अनुसंधान कहते है। अनुसंधान का क्षेत्र इतना व्यापक होता है कि इसके अन्तर्गत व्यवसाय की वास्तविक वितीय स्थिति और उसकी अर्जन क्षमता का पता लगाने के लिए लेखों की विस्तृत जांच की जाती है। अनुसंधान से लाभ–हानि खाते और चिट्ठे का सत्यापन तो होता ही है साथ ही विशिष्ट सूचनाएं भी प्राप्त होती है। अतः कहा जा सकता है कि लेखों की कुशलतापूर्वक, आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक जांच पड़ताल अनुसंधान कहलाती है। विभिन्न विद्वानों ने इसे निम्न प्रकार परिभाषित किया है –

1. **टेलर एवं पैरी के अनुसार –**''जब किसी व्यवसाय के लेखों की परीक्षा तथा लेखा पुस्तकों के पीछे की जांच पड़ताल कुछ विशेष तथ्यों से सम्बन्धित उसकी वास्तविक स्थिति का पता लगाने के उद्देश्य से की जाती है तो इसे अन्वेषण कहते है।''
2. **स्पाइसर और पैगलर –**''अनुसंधान शब्द से आशय किसी विशेष उद्देश्य से किये गये खातों के निरीक्षण से होता है ।''
3. **जे. आर. बाटलीबॉय –**'' किसी व्यापार के गत वर्षों के लाभ तथा हानि की जांच करना ही अन्वेषण कहलाता है। इस जांच के उद्देश्य इस प्रकार हो सकते है– 1. यह ज्ञात करना कि साधारणतया व्यापार की लाभ कमाने की क्षमता क्या है, एवं इन लाभों को कमाने में कार्यशील पूंजी की औसतन कितनी आवश्यकता है अथवा 2. यह ज्ञात करना कि एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए व्यापार की आर्थिक स्थिति क्या है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अनुसंधान किसी विशिष्ट उद्देश्य से की गई खातों की आलोचनात्मक जांच अनुसंधान कहलाती है ।

अनुसंधान की विशेषताएं

1. अनुसंधान किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है ।
2. अनुसंधान लेखों की आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक जांच पड़ताल है।
3. अनुसंधान में किसी संस्था के विभिन्न अभिलेखों के साथ–साथ संचालकों,अंकेक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों की व्यक्तिगत जांच भी की जाती है।
4. अनुंसधान किसी संस्था की वर्तमान स्थिति की जांच करके भावी कार्य योजना के लिए सुझाव भी प्रस्तुत करता है।
5. अनुसंधान कार्य वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में संदेह से प्रारम्भ होता है।

अनुसंधान के उद्देश्य

निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुसंधान किया जाता है –

1. अनुसंधान वह व्यक्ति करता है जो चालू व्यवसाय खरीदना चाहता है ।
2. कपट का पता लगाने के लिए व्यवसाय के स्वामियों द्वारा किया जाता है।
3. फर्म में शामिल होने वाले नये साझेदारों की ओर से किया जाता है।
4. प्रविवरण में रिर्पोट प्रस्तुत करने के लिए।
5. अपने धन का विनियोग करने वाले व्यक्ति की ओर से ।
6. कम्पनी के अंशों का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से ।
7. व्यवसाय को ऋण देने का विचार करने वाले व्यक्ति की ओर से।
8. बिक्री पर सकल लाभ का प्रतिशत गिर जाने के कारण ज्ञात करने के लिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंकेक्षण तथा अनुसंधान में अन्तर

[Difference between Auditing and Investigation]

अन्तर **का आधार**	**अकेक्षण**	**अनुसंधान**
उद्वेश्य	इसका उद्वेश्य चिट्ठे और लाभहानि खाते को प्रमाणित करना है।	अनुसंधान का उद्वेश्य संस्था की वितीय स्थिति का सही–सही पता लगाना है।
योग्यता	यह किसी भी चार्टेर्ड एकाउन्टेन्ट द्वारा ही करवाया जाता है।	अनुंसधान का कार्य एक अनुभवी लेखापाल भी कर सकता है।
किसके द्वारा	अंकेक्षण व्यापार के स्वामी द्वारा करवाया जाता है	अनुसंधान व्यापार के स्वामी , अन्य बाहरी व्यक्तियों द्वारा तथा सरकार द्वारा भी करवाया जा सकता है।
अनिवार्यता	कुछ संस्थाओं का अंकेक्षण करवाना विधान द्वारा अनिवार्य होता है।	अनुसंधान किसी भी विधान के अन्तर्गत अनिवार्य नही है।
समयावधि	यह वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक हो सकता है।	अनुसंधान एक से अधिक वर्ष से छः वर्ष की अवधि तक के अभिलेखों का किया जा सकता है।
कार्य–क्षेत्र	अंकेक्षण का क्षेत्र बहुत सीमित होता है	अनुसंधान का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है।
प्रमाणक और प्रपत्र	अंकेक्षण में लेखा पुस्तकों को उचित प्रमाणकों की सहायता से जांचा जाता है।	अनुसंधान में लेखा पुस्तकों के अलावा अन्य बातों की जांच भी की जाती है।
अंकेक्षित खाते	अंकेक्षण उन्ही लेखा पुस्तकों का किया जाता है जो अंकेक्षित नही होतें है।	अनुसंधान अंकेक्षण के बिना भी किया जाता है।
प्रतिवेदन	अंकेक्षण प्रतिवेदन नियुक्ति की शर्तों या अधिनियम के अनुसार ही दिया जा सकता है।	अनुसंधान का प्रतिवेदन परिस्थिति के अनुसार दिया जा सकता है।
आलोचना	अंकेक्षण में खातों एवं अभिलेखों पर टिप्पणी की जाती है।	अनुसंधान में अनुसंधान करने वाला आलोचनात्मक दृष्टिकोण से ही कार्य करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंकेक्षण व्यवहारों सम्बन्धी मानक
(Standard on Auditing Practice)
अंकेक्षण तथा आश्वासन मानक मण्डल
(Auditing and Assurance Standard Board)

भारतीय चार्टर्ड एकाउण्टैण्टस संस्थान ने 17 सितम्बर 1982 को अंकेक्षण व्यवहार समिति की विधिवत स्थापना की थी । अंकेक्षण व्यवहार समिति का वर्तमान नाम अंकेक्षण तथा आश्वासन मानक मण्डल है । इसका मुख्य कार्य भारत में वर्तमान में प्रचलित अंकेक्षण व्यवहारों का आलोचनात्मक अध्ययन करना और मानक अंकेक्षण व्यवहारों के लिये विवरण पत्रों का विकास करना है, जिनको संस्थान की परिषद् द्वारा प्रसारित किया जा सके । अंकेक्षण तथा आश्वासन मानक मण्डल भारत में लागू कानून, रिवाजों, प्रथाओं और व्यावसायिक वातावरण का पूरा ध्यान रखती है । अंकेक्षण तथा आश्वासन मानक मण्डल द्वारा निर्गमित मानकों को अंकेक्षण तथा आश्वासन मानक कहते है । भारतीय चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स संस्थान द्वारा निम्नलिखित मानक अंकेक्षण व्यवहार जारी किये गये है :–

SAP 1	Basic Principles Governing an Audit.
SAP 2	Objective and scope of the Audit of Financial statements. (April, 1985)
SAP 3	Documentation (July,1985)
SAP 4	The Auditor's responsibility to consider Fraud and Error in an audit of Financial statements (Revised April, 2003)
SAP 5	Audit Evidence (May,1988)
SAP 6	Risk Assessments and Internal Control (Revised April,2003)
SAP 7	Relying Upon the work of an Internal Auditor (January, 1989)
SAP 8	Audit Planning (April,1989)
SAP 9	Using the work of an Expire (April,1991)
SAP 10	Using the work of another Auditor (Revised April,2002)
SAP 11	Representation by management (Aprilj,1995)
SAP 12	Responsibility of Joint Auditors(April,1996)
SAP 13	Audit Materiality (April,1996)
SAP 14	Analytical Procedures (April,1998)
SAP 15	Audit Sampling (April,1998)
SAP 16	Going Concern (April,1999)
SAP 17	Quality Control for Audit work (April,1999)
SAP 18	Auditing for Accounting Estimates (April,2000)
SAP 19	Subsequent events (April,2000)
SAP 20	Knowledge of the business (April,2000)
SAP 21	Consideration of Laws and Regulations in an audit of Financial statement (July, 2001)
SAP 22	Initial Engagements- Opening Balance (July,2001)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

SAP 23 Related Practices (April,2001)

SAP 24 Audit Consideration relating to entities using service organization (July 1,2001)

AAS 25 Comparatives (April 1, 2001)

AAS 26 Terms of Audit Engagement (April 1, 2003)

AAS 27 Communication of Audit matters with those charged with Governance (April, 2003)

AAS 28 The Auditor's Report on Financial statements (April,2003)

AAS 29 Audit in a computer Information Systems Environment (April,2003)

AAS 30 External confirmation (April,2003)

प्रश्न :–

1. अनुसंधान से क्या आशय है ?
2. अनुसंधान की महत्वपूर्ण विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।
3. अंकेक्षण एवं अनुसंधान में क्या अन्तर है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खण्ड-द

कम्पनी अंकेक्षक : एक परिचय

इकाई-१ : कम्पनी अंकेक्षक : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कम्पनी अंकेक्षक का अर्थ

1.3 कम्पनी अंकेक्षक की योग्यताएँ

1.4 कम्पनी अंकेक्षक की अयोग्यताएँ

1.5 कम्पनी अंकेक्षक की नियुक्ति

1.6 कम्पनी के संचालक द्वारा

1.7 कम्पनी के अंशधारियों द्वारा

1.8 केन्द्र सरकार द्वारा

बोध प्रश्न

1.9 कम्पनी अंकेक्षक का पारिश्रमिक

1.10 कम्पनी अंकेक्षक को हटाना

बोध प्रश्न

1.11 कम्पनी अंकेक्षक के अधिकार

1.12 कम्पनी अंकेक्षक के कर्तव्य

1.13 अंकेक्षक का दायित्व

बोध प्रश्न

1.14 सारांश

1.15 शब्दावली

1.16 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.17 बोध प्रश्नो के उतर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कम्पनी अंकेक्षक : एक परिचय

१.० उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेगें कि :–

1. कम्पनी अंकेक्षक का अर्थ, योग्यताएँ एवं अयोग्यताओं के बारे में जान पायेगें।
2. कम्पनी में कम्पनी अंकेक्षक की नियुक्ति, उसको कम्पनी से हटाने एवं उसके पारिश्रमिक सम्बन्धी नियमों को समझ सकेगें।
3. कम्पनी अंकेक्षक के अधिकार, कर्तव्यों एवं दायित्वों सम्बन्धी प्रावधानों को जान सकेगें।

१.१ प्रस्तावना

भारतीय कम्पनी विधान के अंतर्गत प्रत्येक कम्पनी के लिए अपने लेखा पुस्तकों में लिखे जाने वाले वर्ष भर के हिसाब किताब का अंकेक्षण करवाना अनिवार्य होता हैं। यह अंकेक्षण योग्य व्यक्ति द्वारा ही किया जाता है जो कि कम्पनी अंकेक्षक होता है। भारतीय कम्पनी विधान में अंकेक्षक की नियुक्ति, हटाये जाने, पारिश्रमिक अधिकार एवं कर्तव्य तथा दायित्व के सम्बन्ध में कानुन बनाये गये है जिनके अनुसार ही कम्पनी अंकेक्षक कम्पनी के लेखा–जोखों की जॉच पड़ताल करके अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट देता है।

१.२ कम्पनी अंकेक्षक का अर्थ

भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 226 (1) और 226 (2) के अनुसार अंकेक्षण की वैधानिक योग्यता रखने वाला व्यक्ति ही कम्पनी का वैधानिक अंकेक्षक हो सकता है। जो व्यक्ति वैधानिक रूप से कम्पनी के लेखा पुस्तकों की जांच पड़ताल की योग्यता रखता है उसे कम्पनी अंकेक्षक कहते है।

१.३ कम्पनी अंकेक्षक की योग्यताएँ

कम्पनी विधान की धारा 226 के अनुसार कम्पनी के अंकेक्षक की निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहियेः–

1. वह रजिस्टर्ड चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट् होना चाहिये। चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट एक्ट 1949 की धारा 2 (1) (ब) के अनुसार चार्टर्ड एकाउण्टेट वह है जो भारत के चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट्स इन्स्टीट्यूट का सदस्य हो।
2. एक फर्म जिसके सब साझेदार चार्टर्ड एकाउण्टेट हों, कम्पनी की अंकेक्षक बन सकती है।

१.४ कम्पनी अंकेक्षक की अयोग्यताएँ

निम्नलिखित व्यक्ति कम्पनी के अंकेक्षक बनने के योग्य नही है :–

1. कम्पनी
2. कम्पनी का कोई अधिकारी या कर्मचारी
3. एक व्यक्ति जो कम्पनी के अधिकारी या कर्मचारी का साझेदार है या कर्मचारी है।
4. एक व्यक्ति जो कम्पनी का 1,000/– रू. से अधिक का ऋणी है या उसने रूपये 1,000/– से अधिक के लिए एक ऐसे व्यक्ति की प्रत्याभूति दी है जिसने कम्पनी से ऋण लिया है।
5. जे व्यक्ति किसी भी सहायक या सूत्रधारी कम्पनी में अंकेक्षक बनने के लिए अयोग्य है तो वह इस कम्पनी का भी अंकेक्षक नियुक्ति किये जाने के लिए अयोग्य माना जाएगा।

यदि नियुक्ति के उपरान्त अंकेक्षक में उपर वर्णित अयोग्यताओं में से कोई भी अयोग्यता आ जाये तो उसका स्थान रिक्त समझा जायेगा।

१.५ कम्पनी अंकेक्षक की नियुक्ति धारा (२२४)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कम्पनी के अंकेक्षक की नियुक्ति विभिन्न परिस्थितियों में निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा की जा सकती है :–

1. कम्पनी के संचालकों द्वारा
2. कम्पनी के अंशधारियों द्वारा, तथा
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा

१.६ कम्पनी के संचालको द्वारा नियुक्ति

- **प्रथम अंकेक्षक :–** कम्पनी के प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति कम्पनी के संचालक मण्ड़ल द्वारा कम्पनी के पंजीयन की तारीख के एक माह के भीतर की जावेगी। इस प्रकार नियुक्त किये गये अंकेक्षक प्रथम वार्षिक साधारण सभा की समाप्ति तक अपने पद पर बने रहते हैं। यदि संचालक मण्ड़ल अपने इस अधिकार का उपयोग नहीं करता है तो कम्पनी द्वारा साधारण सभा में प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति की जा सकती हैं।

- **आकस्मिक रिक्तता की पूर्ति :–** यदि अंकेक्षक का पद उसके द्वारा दिये गये त्याग–पत्र के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से उसकी अवधि की समाप्ति से पूर्व ही रिक्त हो जावे तो उसकी पूर्ति संचालक मण्ड़ल द्वारा की जा सकती है। यदि कम्पनी के संयुक्त अंकेक्षकों में से कुछ का स्थान रिक्त हो जाये तो बाकी अंकेक्षक अपना कार्य जारी रख सकते हैं।

  यदि आकस्मिक रिक्तता अंकेक्षक के त्याग–पत्र देने के कारण उत्पन्न हुई है तो उसकी पूर्ति कम्पनी द्वारा साधारण सभा में ही की जा सकती है।

  रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिए नियुक्त किया गया अंकेक्षक आगामी साधारण सभा की समाप्ति तक अपने पद पर बना रहेगा।

१.७ कम्पनी के अंशधारियों द्वारा नियुक्ति

(अ) प्रथम अंकेक्षक :– यदि कम्पनी के संचालक कम्पनी के प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति सम्बन्धी अपने अधिकारों का निर्धारित समय में प्रयोग नहीं करते हैं तो उनका यह अधिकार समाप्त हो जाता है कि और तब कम्पनी के प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति कम्पनी द्वारा साधारण सभा में की जा सकती है। यह अंकेक्षक आगामी वार्षिक साधारण सभा की समाप्ति तक अपने पद पर बना रहेगा।(धारा 224 (5) (ब))

(ब) वार्षिक साधारण सभा में नियमित नियुक्ति :– प्रत्येक कम्पनी प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षक की नियुक्ति करती है। यह नियुक्ति उस वार्षिक साधारण सभा के अन्त से आगामी वार्षिक साधारण सभा के अन्त तक की अवधि के लिए की जाती है। आगामी वार्षिक साधारण सभा के समय पर यह अंकेक्षक अवकाश ग्रहण करने वाला अंकेक्षक कहलाता है। इस अंकेक्षक की आगामी वार्षिक साधारण सभा में पुनर्नियुक्ति की जा सकती है अथवा इसके स्थान पर अन्य किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति की जा सकती है। किसी भी वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षक की नियुक्ति अथवा पुनर्नियुक्ति किये जाने से पूर्व यह आवश्यक है उससे एक लिखित प्रमाण–पत्र प्राप्त किया जावे कि यदि उसकी नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति की जाती है तो यह कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमाओं में होगी।
(धारा 224 (1) (ब))

कम्पनी का कर्तव्य है कि वह अंकेक्षक की नियुक्ति के 7 दिन के अन्दर नियुक्त किये गये अंकेक्षक को नियुक्ति की सूचना देगी। (धारा 224 (1))

प्रत्येक अंकेक्षक कम्पनी से नियुक्ति सम्बन्धी सूचना प्राप्त होने के 30 दिन के भीतर रजिस्ट्रार को लिखित सूचना देगा कि उसने नियुक्ति स्वीकार की है अथवा अस्वीकार की है।(धारा 224 (1) (A))

(स) वार्षिक साधारण सभा में अनिवार्य पुनर्नियुक्ति :– प्रायः एक कम्पनी द्वारा किसी भी वार्षिक साधारण सभा में अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को ही पुर्ननियुक्त किया जायेगा। इस नियम के चार अपवाद हैं, अर्थात् निम्नलिखित चार परिस्थितियों में एक अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षक के पद पर नियुक्त किया जा सकता है।

1. यदि अवकाश ग्रहण करने वाला अंकेक्षक पुर्ननियुक्ति के अयोग्य है (अयोग्यताओं का वर्णन इस अध्याय में पहले किया जा चुका है)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. यदि अवकाश ग्रहण करने वाला व्यक्ति कम्पनी को लिखित में पुनर्नियुक्ति के लिए अपना अनिच्छा प्रकट कर दे।

3. साधारण सभा में एक प्रस्ताव पास कर दिया जावे कि अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को पुनर्नियुक्त नहीं किया जायेगा, अथवा किसी अन्य व्यक्ति का अंकेक्षक के पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव पास कर दिया जावें, अथवा

4. जबकि अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करने का नोटिस दे दिया था, लेकिन उस प्रस्तावित अंकेक्षक की मृत्यु, असमर्थता या अयोग्यता के कारण उसकी नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव पास नहीं किया जा सकता। (224 (2))

(द) अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक के स्थान पर अन्य व्यक्ति की नियुक्ति करने की विधि :– साधारणतया कम्पनी द्वारा वार्षिक साधारण सभा में एक अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक की पुनर्नियुक्ति करने का प्रस्ताव पास न करना चाहे या उसके स्थान पर अन्य किसी अंकेक्षक की नियुक्ति का प्रस्ताव पास करना चाहे तो उसे विधान में दी गई निश्चित विधि अपनानी होगी जो कि निम्नलिखित हैः–

- **कम्पनी को विशेष नोटिस :–** जो अंशधारी साधारण सभा में इस प्रकार प्रस्ताव रखना चाहे, उसे अपने इरादे का कम्पनी को विशेष नोटिस देना पड़ेगा। विशेष नोटिस से तात्पर्य साधारण सभा की तिथि से कम से कम स्पष्ट 14 दिन पूर्व दिये गये नोटिस से है। (225 (1))

- **कम्पनी द्वारा अंकेक्षक व अंशधारियों को नोटिस :–**जैसे ही कम्पनी को किसी अंशधारी के विशेष नोटिस प्राप्त होता है, उसे इसकी एक प्रतिलिपि अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को भेजनी होगी। (225 (2)) कम्पनी को अपने सदस्यों को भी इसकी सूचना उसी प्रकार देनी होगी जिस प्रकार सभा की सूचना दी जाती है। यदि सम्भव न हो तो कम्पनी सभा तिथि से कम से कम 7 दिन पूर्व इसकी सूचना अखबार में विज्ञापित करेगी अथवा कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा यदि अन्य कोई तरीका निर्धारित किया गया है तो उसके अनुसार सदस्यों को सूचना दी जावेगी। (धारा 190 (2))

१.८ केन्द्रीय सरकार द्वारा अंकेक्षक की नियुक्ति

(अ) गैर सरकारी कम्पनी में :– यदि किसी वार्षिक साधारण सभा में किसी अंकेक्षक की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति नहीं की जाती है तो केन्द्रीय सरकार इस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए अंकेक्षक नियुक्त कर सकती है। यदि वार्षिक साधारण सभा में किसी अंकेक्षक की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति न करने के कारण रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है तो कम्पनी को 7 दिन के भीतर इसकी सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी होगी। यदि यह सूचना नहीं दी जाती है तो कम्पनी व प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 500/– तक का जुर्माना किया जा सकता हैं। (धारा 224 (3) (4))

(ब) सरकारी कम्पनियों में केन्द्रीय सरकार द्वारा अंकेक्षक की नियुक्ति :– सरकारी कम्पनियों में अंकेक्षक की नियुक्ति अथवा पुनर्नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के महालेखा परीक्षक की सलाह पर की जाती है।

(स) केन्द्रीय सरकार द्वारा विशेष अंकेक्षक की नियुक्ति :– केन्द्रीय सरकार निम्न परिस्थितियों में किसी भी कम्पनी के लिए विशेष अंकेक्षक की नियुक्ति कर सकती है : (धारा 223 (A))

1. यदि कम्पनी का कार्य स्वस्थ व्यापारिक सिद्धान्तो के अनुसार नहीं चलाया जा रहा हो,
2. यदि कम्पनी का प्रबन्ध इस प्रकार चलाया जा रहा हो कि जिससे उस उद्योग या व्यापार को खतरा होने का भय उत्पन्न हो गया हो जिससे वह कम्पनी सम्बन्धित है,
3. यदि कम्पनी की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि उसकी ऋण चुकाने की क्षमता को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

केन्द्रीय सरकार किसी चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट या कम्पनी के ही अंकेक्षक को विशेष अंकेक्षक के रूप में नियुक्त कर सकती है। विशेष अंकेक्षक के अधिकार एवं कर्तव्य निम्नलिखित अन्तरों के अतिरिक्त वही होगें जो एक कम्पनी अंकेक्षक के होते है।

1. वह अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार को देगा जबकि कम्पनी अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट सदस्यों को देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. उसकी रिपोर्ट में उन सब बातों का उल्लेख तो किया ही जायेगा जिनका कम्पनी के अंकेक्षकों की रिपोर्ट में किया जाता है लेकिन उनमें वे बातें भी शामिल की जावेगी जिनके लिए केन्द्रीय सरकार कहे।

3. केन्द्रीय सरकार किसी भी व्यक्ति को यह आदेश दे सकती है कि वह विशेष अंकेक्षक को विशेष अंकेक्षण के सम्बन्ध में उससे मॉगी गई सूचना दे। इस आदेश का पालन न करने वाले व्यक्ति पर रूपये 500/– तक का जुर्माना किया जा सकता है।

विशेष अंकेक्षक से रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार, जो आवश्यक समझे, कार्यवाही करेगी। यदि केन्द्रीय सरकार रिपोर्ट प्राप्ति के चार महिने के भीतर कोई कार्यवाही नहीं करती है तो वह रिपोर्ट की एक नकल या उसके अंश को अपनी आलोचना सहित कम्पनी को भेजेगी और इसे अंशधारियों में प्रसारित करने को या आगामी साधारण सभा में पढ़कर सुनाने को कहेगी। विशेष अंकेक्षण से सम्बन्धित खर्च केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किये जायेगें और कम्पनी द्वारा चुकाये जायेगें।

कुछ अन्य कम्पनियों में केन्द्रीय सरकार द्वारा अंकेक्षक की नियुक्ति :–

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1974 द्वारा कम्पनी अधिनियम में एक नई धारा 619 B जोड़कर यह प्रावधान किया गया है कि ऐसी कम्पनी, जिसकी प्रदत अंश पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग निम्नलिखित के पास हो, में एक अंकेक्षक की नियुक्ति सरकारी कम्पनियो की भाँति ही केन्द्रीय सरकार द्वारा की जावेगी :–

a. केन्द्रीय सरकार तथा एक या अधिक सरकारी कम्पनियॉ,

b. कोई राज्य सरकार या सरकरों तथा एक या अधिक सरकारी कम्पनियॉ,

c. केन्द्रीय सरकार, एक या अधिक राज्य सरकारो तथा एक या अधिक सरकारी कम्पनियॉ

d. केन्द्रीय सरकार, एक या अधिक ऐसे निगमों द्वारा जिनक स्वामित्व या नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के पास हो,

e. केन्द्रीय सरकार, एक या अधिक राज्य सरकारें तथा एक या अधिक निगम जिनका स्वामित्व व नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के पास हो,

f. एक या अधिक निगम जिनका स्वामित्व या नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के पास हो अथवा राज्य सरकार के पास हो,

g. एक से अधिक सरकारी कम्पनियॉ। (धारा 619 (B))

कुछ कम्पनियों के अंकेक्षक की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति विशेष प्रस्ताव द्वारा ही होना :–

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 224 के अन्तर्गत कम्पनियों की वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षण की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति साधारण प्रस्ताव द्वारा होती है। सामान्यतया अब भी यह नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति वार्षिक साधारण सभा में साधारण प्रस्ताव द्वारा ही होगी, किन्तु कम्पनी अधिनियम, 1956 में कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1974 द्वारा एक नई धारा 224 A जोड़कर यह संशोधन किया गया है कि निम्नलिखित स्थिति में अंकेक्षक को नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव द्वारा ही की जावेगी। एक ऐसी कम्पनी की स्थिति में जिसकी अभिदत अंश पूँजी का काम से कम 25 प्रतिशत भाग अकेले रूप में या मिलकर निम्नलिखित के पास हो :–

1. एक सार्वजनिक वित्तीय संस्था अथवा, एक सरकारी कम्पनी, अथवा केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार, अथवा

2. किसी प्रान्तीय या राजकीय अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित एक ऐसी वित्तीय या अन्य संस्था जिसमें एक राज्य सरकार के पास उस संस्था की अभिदत्त अंश पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत हो, अथवा

3. एक राष्ट्रीयकृत बैंक अथवा सामान्य बीमा व्यवसाय करने वाली बीमा कम्पनी

यदि ऐसी किसी कम्पनी (जिसकी अभिदत अंश पूंजी का कम से कम 25 प्रतिशत भाग अकेले या मिलकर उपर्युक्त तीन संस्थाओं के पास हो) अंकेक्षक की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा में ''विशेष प्रस्ताव'' द्वारा नहीं की जाती है तो अंकेक्षक का पद रिक्त समझा जायेगा और केन्द्रीय सरकार को ऐसी कम्पनी के अंकेक्षक को नियुक्त करने का अधिकार होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न

1. कम्पनी अंकेक्षक की योग्यताएँ बताईये ?
2. कम्पनी अंकक्षक की संचालक मण्ड़ल द्वारा कब नियुक्ति की जाती है ?
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा कम्पनी में अंकेक्षक की नियुक्ति कब की जाती है ?

१.९ कम्पनी अंकेक्षक का पारिश्रमिक

अंकेक्षक का पारिश्रमिक उसकी नियुक्ति के समय कम्पनी की सामान्य सभा में निर्धारित किया जा सकता है। धारा 224 (8)। यदि अंकेक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार या संचालकों द्वारा की जाती है तो वे ही अंकेक्षक का पारिश्रमिक निश्चित करेगें। (धारा 224 (8)(अ))

यदि अंकेक्षक को किसी व्यय का भुगतान किया गया हो तो ऐसा व्यय पारिश्रमिक में सम्मिलित किया जायेगा।

१.१० कम्पनी अंकेक्षक को हटाना

अंकेक्षक की नियुक्ति कम्पनी द्वारा की जा सकती है तथा कम्पनी द्वारा उसे हटाया भी जा सकता है। धारा 225 के अनुसार कम्पनी को एक अंकेक्षक को हटाने के लिए निम्न विधि अपनानी चाहियेः–

1. **विशेष सूचना :–** यदि किसी नये अंकेक्षक को (अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को छोड़कर) नियुक्ति करनी हो तो वार्षिक सामान्य सभा में इस बात का प्रस्ताव रखने के लिए एक विशेष सूचना की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक की पुनर्नियुक्ति नहीं करनी हो तो भी एक विशेष सूचना की आवश्यकता होती है। (धारा 225 (1))
2. **प्रस्ताव की प्रति अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को :–** इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होने पर कम्पनी इसकी एक प्रतिलिपि अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक के पास प्रेषित करती है। (धारा 225 (2))
3. **अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार :–** उपर्युक्त सूचना की प्रतिलिपि प्राप्त होने पर यदि अंकक्षक अपने मामले में कुछ कहना चाहता है तो वह उसे लिखकर कम्पनी के पास भेज देता है। (धारा 225 (3))
4. **अंकेक्षक के प्रत्युतर की प्रति सदस्यों को भेजनाः–** कम्पनी अंकेक्षक से प्राप्त प्रति उतर की प्रतिलिपियॉ सभा के पहले कम्पनी के प्रत्येक सदस्य के पास भेज देती है। (धारा 225 (3) (a))
5. **प्रत्युतर को सभा में सुननाः–** यदि अंकेक्षक का प्रत्युतर देर से प्राप्त होने के कारण उसकी प्रतिलिपियॉ सदस्यों के पास प्रेषित नहीं की जा सकती हैं, तो अंकेक्षक को यह अधिकार है कि वह अपने प्रत्युत्तर को अंशधारियों की सभा में पढ़कर सदस्यों को सुनाने को कह सकता है या स्वयं उसे पढ़कर सुना सकता है। (धारा 225 (3) (b))
6. **कम्पनी विधान मण्डल द्वारा प्रत्युत्तर पढ़े जाने पर रोकः–** यदि कम्पनी या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा (जिसके हितों पर अंकेक्षक का प्रत्युतर सदस्यों को भेजने या पढ़ने से क्षति पहुॅचती हो) कम्पनी विधान मण्ड़ल को प्रार्थना–पत्र प्रस्तुत किया जाये तो कम्पनी विधान मण्ड़ल सन्तुष्ट होने पर कम्पनी को निर्देश दे सकता है कि वह प्रत्युत्तर न तो सदस्यों को भेजा जावें और न पढ़ा जावे। ऐसी स्थिति में कम्पनी प्रत्युत्तर की सूचना सदस्यों में प्रसारित करने के दायित्व से मुक्त हो जाती हैं। (धारा 225 (3))
7. **कम्पनी का निर्णय अन्तिम :–** यदि अंकेक्षक चाहे तो वह स्वयं सामान्य सभा में अपने मामले के सम्बन्ध में सदस्यों के समक्ष अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर सकता है। इस सम्बन्ध में कम्पनी का निर्णय अन्तिम माना जायेगा। (धारा 225 (3))

बोध प्रश्न

4. एक कम्पनी अंकेक्षक को किस प्रकार हटाया जा सकता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. कम्पनी अंकेक्षण का पारिश्रमिक कैसे तय होता है ?

१.११ कम्पनी अंकेक्षक के अधिकार

कम्पनी विधान की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत कम्पनी के अंकेक्षक को, कम्पनी के खातों का अंकेक्षण सुविधा पूर्वक करने तथा अंकेक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए अधिकार प्राप्त है :–

1. उसे कम्पनी के खातों के अंकेक्षण से सम्बन्धित सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण आवश्यकतानुसार कम्पनी तथा उसके अधिकारियों से प्राप्त करने का अधिकार है।
2. कम्पनी की लेखा पुस्तकों तथा प्रमाणकों को देखने का अधिकार।
3. बिना सूचना दिये अंकेक्षण प्रारम्भ करने का अधिकार।
4. कम्पनी की शाखा का निरीक्षण करने का अधिकार।

   धारा 228 (2) (अ) के अनुसार यदि कम्पनी की शाखा की लेखा–पुस्तकों का अंकेक्षण किसी अन्य द्वारा कराया गया है तो अंकेक्षक अपने कार्य को पूरा करने के लिए शाखा कार्यालय की पुस्तकों का निरीक्षण भी कर सकता हैं।
5. उसे कम्पनी की शाखा पुस्तकों तथा खातों तक हर समय पहुँचने का अधिकार है। धारा 228 (2)
6. बैंकिग कम्पनी की विदेशी शाखा द्वारा भेजे हुए हिसाब व प्रमाणकों की नकले अंकेक्षक के लिए रखने का अधिकार। धारा 228 (2)
7. कम्पनी की सामान्य सभाओं की सूचना प्राप्त करने का अधिकार। धारा 231
8. कम्पनी के पार्षद सीमानियम, अर्न्तनियम एवं प्रविवरण को देखने का अधिकार।
9. सामान्य सभा में भाग लेने का अधिकार।

अंकेक्षक को कम्पनी की सामान्य सभाओं की सूचना पाने तथा सभा में उपस्थित होने का अधिकार है। अंकेक्षक सभा में स्वयं या अंकेक्षण रिपोर्ट से सम्बन्धित विषयों पर बोल सकता हैं।

धारा 231

प्रायः कम्पनी अंकेक्षक सामान्य सभाओं में नहीं जाते हैं, परन्तु निम्नलिखित दशाओं में उसे अवश्य जाना चाहिये :–

1. यदि उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति अंकेक्षक नियुक्त किया जाने वाला है तो उसे सदस्यों के समक्ष अपनी कार्यकुशलता, ईमानदारी तथा परिश्रम आदि का उल्लेख अवश्य करना चाहिये।
2. यदि अंकेक्षण रिपोर्ट में ऐसी बाते हैं जिनका प्रभाव कम्पनी के अधिकारियों पर पड़ता है तो उसे सभा में उपस्थित होना चाहिये। यदि वह सभा में नही जायेगा तो उसकी रिपोर्ट का गलत अर्थ भी लगाया जा सकता है।
3. यदि कम्पनी के प्रबन्ध में उससे सभा में उपस्थित होने की प्रार्थना की है।
4. यदि अंकेक्षक को उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को अंकेक्षक नियुक्त करने के विषय में सूचना प्राप्त हुई है तो यह अपना लिखित प्रत्युत्तर भी कम्पनी को भेज सकता है। वह इस लिखित प्रत्युतर की प्रतिलिपियॉ सभा के पूर्व कम्पनी के सदस्यों को कम्पनी द्वारा भिजवाने की मांग कर सकता है। (धारा 225)

१.१२ कम्पनी अंकेक्षक के कर्तव्य

1. कम्पनी के खातों का अंकेक्षण करने के बाद रिपोर्ट देना।
2. अंकेक्षण रिपोर्ट में कम्पनी के खातों – चिट्ठो एवं लाभ–हानि खाते की सत्य सूचना देना।

अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में यह उल्लेख करना चाहिए कि क्या उसके विचार में :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. कम्पनी के खाते कम्पनी अधिनियम की सूचि 6 के भाग 1 और 2 के अनुसार सूचना दर्शाते है।
2. चिट्ठा आर्थिक वर्ष के अन्त में कम्पनी की सत्य तथा उचित स्थिति को प्रदर्शित करता है।
3. लाभ–हानि खाता लाभ अथवा हानि को सही तथा उचित रूप से प्रकट करता है।
4. उसके विचार में कम्पनी विधान के अनुसार रखी जाने वाली उपर्युक्त लेखा–पुस्तके उचित रूप में रखी गई है।
5. अंकेक्षक को अपने अंकेक्षण कार्य के लिए मॉगी गई सब सूचनाऍ एवं स्पष्टीकरण समय–समय पर प्राप्त हुए है।
6. कम्पनी का चिट्ठा एवं लाभ हानि खाता पुस्तकों के अनुसार तैयार किये गये है।(धारा 22 (3))

3. यदि कम्पनी की शाखा के लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण धारा 228 के अन्तर्गत किसी अन्य व्यक्ति ने किया है तो उसे अपनी रिपोर्ट को तैयार करते समय शाख के अंकेक्षण रिपोर्ट का भी प्रयोग करना चाहिये। (धारा 227 (ब) 3)
4. उसे अंकेक्षण के समय मॉगी गई सूचनाऍ रिपोर्ट तथा स्पष्टीकरण आदि न मिलने के कारणों का रिपोर्ट में उल्लेख करना चाहिये। (धारा 227 (4) (ब)
5. उसे अंकेक्षण रिपोट्र पर अवश्य हस्ताक्षर करने चाहिये। यदि कोई फर्म कम्पनी की अंकेक्षक है तो अंकेक्षक फर्म का कोई भी साझेदार रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर सकता है। (धारा 229)
6. कम्पनी के विवरण पर रिपोर्ट देना।
7. वैधानिक रिपोर्ट को प्रमाणित करना। (धारा 165)
8. संचालकों द्वारा दी गई कम्पनी की शोधन–क्षमता की घोषणा के साथ दिये जाने वाले लाभ–हानि खाते आदि पर रिपोर्ट देना। (धारा 88 (2)
9. एड़वोकेट जनरल न्यायालय तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा दी जाने वाली कार्यवाही तथा जांच में उनकी आवश्यक मदद करना तथा स्पष्टीकरण देना। (धारा 165 (4))

अंकेक्षक का यह कर्तव्य है कि अपना अंकेक्षण कार्य करते समय इतनी सावधानी, चतुराई, परवाह तथा सतर्कता का प्रयोग करे जितने कि योग्य अंकेक्षक से अपेक्षा की जा सकती है। इस निर्णय में न्यायाधीश ने कहा है कि ''अंकेक्षक एक रखवाली करने वाला कुत्ता है, लेकिन शिकारी कुत्ता नही।''

अंकेक्षक का उन नौकरों पर विश्वास करना न्यायोचित है, जिनका कम्पनी विश्वास करती है। अंकेक्षक उचित सावधानी के बाद यह मान सकता है कि वे ईमानदार है ओर उनके निर्णय पर निर्भर कर सकता है। यदि कोई संदेहात्मक बात है तो उसकी गहन जॉच करनी चाहिये।

यदि अंकेक्षण करते समय कोई संदेहात्मक स्थिति उत्पन्न नही होती है, तो अंकेक्षक कम्पनी के विश्वसनीय अधिकारियों के कथनों के आधार पर कार्य कर सकता है और ऐसी दशा में उनकी लापरवाही के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

धारा (233)(A) के अनुसार कम्पनियों का विशेष अंकेक्षण कराने के लिए केन्द्रीय सरकार आदेश दे सकती है। ऐसा अंकेक्षण कुप्रबन्धित कम्पनियों के लिए आदेशित किया जाता है। विशेष अंकेक्षण के सम्बन्ध में व्यवस्थाऍ निम्न है :–

1. यदि केन्द्रीय सरकार को निम्न में से किसी एक बात का विश्वास हो जाये तो किसी भी समय, किसी भी कम्पनी के लिये विशेष अंकेक्षण का आदेश दे सकती है :–
   (क) यदि किसी कम्पनी के कार्य का प्रबन्ध उचित व्यापारिक सिद्धान्तों के आधार पर या व्यावसायिक पद्धतियों के अनुसार नही किया जा रहा हो।
   (ख) यदि कम्पनी का प्रबन्ध इस प्रकार किया जा रहा हो कि जिसमें उसके व्यापार, उद्योग या व्यवसाय को गम्भीर हानि होने की आशंका हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ग) यदि किसी कम्पनी की आर्थिक दशा इतनी बुरी हो कि इसके दिवालिया होने की सम्भावना हो।

2. **विशेष अंकेक्षक की नियुक्ति :–** केन्द्रीय सरकार एक आदेश द्वारा विशेष अंकेक्षण हेतु किसी चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट को विशेष अंकेक्षक नियुक्त कर सकती। केन्द्रीय सरकार यदि उचित समझे तो कम्पनी के अंकेक्षक को भी इस हेतु अंकेक्षक नियुक्त कर सकती है।

3. विशेष अंकेक्षक के अधिकार एवं कर्तव्य वही होगें जो धारा 227 के अन्तर्गत एक कम्पनी अंकेक्षक के होते है। विशेष अंकेक्षक की रिपोर्ट कम्पनी के सदस्यों को नहीं दी जाती है, अपितु केन्द्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

केन्द्रीय सरकार किसी भी व्यक्ति को विशेष अंकेक्षक के सम्बन्ध में ऐसी सूचना देने के लिए आदेश दे सकती है जिसे विशेष अंकेक्षक इस प्रकार के अंकेक्षण के लिए आवश्यक समझता है। यदि कोई व्यक्ति विशेष अंकेक्षक को उसके द्वारा मॉगी गई सूचनाएँ देने में गड़बड़ी करता है तो उस पर 500 रूपये तक का अर्थदण्ड़ किया जा सकता है।

4. विशेष अंकेक्षक अंकेक्षण–कार्य के पूर्ण होने पर केन्द्रीय सरकार को अंकेक्षण की रिपोर्ट देता है, जिनमें निम्नांकित सूचनाएँ दी जाती है :–

1. वे सब सूचनाएँ जो धारा 227 के अनुसार अंकेक्षण की रिपोर्ट में दी जाती है।
2. केन्द्रीय सरकार द्वारा इंगित विषहयों पर भी अंकेक्ष अपने विचार अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत करता है।

<u>विशेष अंकेक्षण का व्यय</u>

1. विशेष अंकेक्षण के व्यय का भुगतान सम्बन्धित कम्पनी को करना पड़ता है।
2. विशेष अंकेक्षण का व्यय (जिसमें अंकेक्षक का पारिश्रमिक भी शामिल है) केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम होता हैं।
3. यदि कम्पनी विशेष अंकेक्षण के व्यय का भुगतान नहीं करती है तो इसे कम्पनी से भूमि के बकाया लगान की तरह वसूल किया जा सकता है।

कम्पनी की शाखा के खातों का अंकेक्षण

प्रायः कम्पनी का अंकेक्षक ही कम्पनी की शाखा के खातों का अंकेक्षण करता हैं यदि कम्पनी चाहे तो सामान्य सभा में प्रस्ताव पारित करके शाखा के खातों के अंकेक्षण के लिए अन्य व्यक्ति को भी अंकेक्षक नियुक्त कर सकती है। कम्पनी अधिनियम की धारा 226 द्वारा अंकेक्षक के लिए निर्धारित योग्यता रखने वाला व्यक्ति ही इस पद पर नियुक्त किया जा सकता हैं कम्पनी अपने संचालकों को भी कम्पनी के अंकेक्षक की सलाह से शाखा अंकेक्षक नियुक्त करने का अधिकार दे सकती है।

(धारा 228 (3) (अ))

१.१३ अंकेक्षक का दायित्व

कम्पनी के अंकेक्षको को अंकेक्षण रिपोर्ट में यह प्रमाणित करना पड़ता है कि कम्पनी का चिट्ठा कम्पनी की आर्थिक स्थिति का तथा लाभ–हानि खाता लाभ अथवा हानि का किसी निश्चित तिथि पर सही एवं उचित विवरण प्रस्तुत करता है। अंकेक्षकों को कम्पनी विधान के अन्तर्गत कई अन्य रिपोर्ट एवं प्रमाण–पत्र भी देने पड़ते है। इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में तथा कर्तव्य भंग के लिए अंकेक्षक के दायित्व को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

<u>अंकेक्षक के दायित्व</u>

सामान्य दायित्व :– लापरवाही के दायित्व

सापराध दायित्व :– कर्तव्य–भंग के लिए दायित्व

<u>लापरवाही के लिए दायित्व</u>

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंकेक्षक को अपना कार्य सावधानी, ईमानदारी व सतर्कता से करना चाहिए, यदि लापरवाही से कार्य करने के कारण कम्पनी के अंशधारियों को क्षति होती है तो अंकेक्षक क्षतिपूर्ति के लिए उतरदायी होगा। यदि लापरवाही के कारण कम्पनी को क्षति नहीं होती तो अंकेक्षक उतरदायी नहीं हैं।

कर्तव्य भंग के लिए दायित्व

यदि कम्पनी के अंकेक्षक कम्पनी के प्रति अपने कर्तव्य को पूर्णतः नहीं निभाते हैं, अर्थात् कर्तव्य भंग के दोषी होते है तथा ऐसा करने से कम्पनी को हानि होती है तो कम्पनी अपने जीवनकाल में अंकेक्षण पर वाद चलाकर क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकती है। कम्पनी के समापन के समय अंकेक्षक के कर्तव्य भंग का पता चलने पर कम्पनी का निस्तारक, लेनदार या अंशधारी अंकेक्षक के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करके कर्तव्य–भंग के कारण हुई क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकते हैं।

यदि अंकेक्षक के प्रन्यास भंग तथा कर्तव्य भंग के कारण कम्पनी को हानि हुई है तो कम्पनी के वर्तमान तथा पिछले अंकेक्षको को कम्पनी की क्षतिपूर्ति करना पड़ेगी। कम्पनी के समापन के समय अंकेक्षकों के विरूद्ध यह कार्यवाही कम्पनी का निस्तारक या लेनदार भी कर सकता है तथा यह आवश्यक नही है कि अंकेक्षकों के विरूद्ध ऐसी कार्यवाही निश्चित समय के अन्दर ही शुरू कर दी जायें।

अंकेक्षक का सापराध दायित्व

कम्पनी विधान में कुछ ऐसी धाराओं का उल्लेख है जिसके अंतर्गत अंकेक्षक को अपराधी ठहराया जा सकता हैं। सापराध दायित्व की दशा में अंकेक्षकों को अन्य अपराधियों की तरह कारावास की सजा भी दी जा सकती है। अंकेक्षक द्वारा जान–बूझकर त्रुटि करने की दशा में भी उसका सापराध दायित्व उत्पन्न होता है।

सामान्यतया निम्न कार्य करने से अंकेक्षण का सापराध दायित्व उपत्न्न नही होता है तथा उसे सजा दी जा सकती है :–

1. कम्पनी की लेखा पुस्तकों तथा प्रमाणकों को नष्ट करना।
2. कम्पनी या नियोक्ता की सम्पतियों को क्षति पहुॅचाना।
3. लेखों में निहित कपट को जानबूझ कर छिपाना।
4. कम्पनी के हिसाब एवं लाभ को नकली तथा झूठे बनाने में मदद करना।
5. असत्य लेखों को जानबूझ कर असत्य कथन देना।
6. किसी प्रमाण–पत्र या रिपोर्ट में जानबूझ कर असत्य कथन देना।
7. अपने कर्तव्य पालन करते समय घूस लेना।
8. कम्पनी की लेखा पुस्तकों को जान बूझकर झूठा करना।
9. सदस्यों तथा जनता के लिये घोषणा देने में कोई कपटपूर्ण तथ्य को सत्य प्रमाणित करना।

सापराध दायित्व की दशा में अंकेक्षक को अर्थदण्ड़ के अलावा कारावास की सजा भी दी जाती है।

सापराध दायित्व सम्बन्धी प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :–

1. यदि अंकेक्षक कम्पनी के अन्तिम खातों का अंकेक्षण करने के बाद कम्पनी अधिनियम की धारा 227 तथा 229 के अनुसार रिपोर्ट नहीं देता है तथा वह जानबूझ कर त्रुटि करता है तो अंकक्षक पर अधिक से अधिक 1,000/– रूपये तक अर्थदण्ड किया जा सकता हैं।
2. धारा 539 के अन्तर्गत यदि कम्पनी का अंकेक्षक कम्पनी की लेखा–पुस्तकों को नकली बनाने का दोषी है तो उसे 7 वर्ष का कारावास तथा अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता हैं।
3. यदि अंकेक्षक कम्पनी के सम्बन्ध में किसी सापराध दायित्व का दोषी हैं तो उस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। (धारा 545)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. यदि कम्पनी का अंकेक्षक कम्पनी के किसी परिलेख, विवरण, प्रमाण–पत्र या रिपोर्ट में जानबूझकर असत्य कथन देता है या किसी महत्वपूर्ण विवरण को महत्वपूर्ण समझते हुए छोड़ देता है तो उसको अधिक से अधिक दो वर्ष के कारावास से दण्ड़ित किया जा सकता है।

5. धारा 629 के अन्तर्गत यदि कोई अंकेक्षक शपथ पूर्वक जॉच में जानबूझ कर झूठी गवाही देता है तो उसको अधिक से अधिक 7 वर्ष की सजा तथा अर्थदण्ड़ से दण्ड़ित किया जा सकता है।

धारा 633 के अन्तर्गत संरक्षण

कम्पनी विधान में अंकेक्षक को ईमानदारी से कार्य करने पर सुरक्षा प्रदान की गई है। यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि कम्पनी के अंकेक्षक ने पूर्ण ईमानदारी तथा विवेक से काम किया है तो न्यायालय अंकेक्षक को लापरवाही एवं कर्तव्य–भंग के दायित्व से क्षमा कर सकता है। जब कम्पनी अपने अंकेक्षक पर लापरवाही तथा कर्तव्य भंग के लिए वाद चलाती है तो अधिकतर अंकेक्षक अपने दायित्व से बचने के लिए धारा 633 की शरण लेते हैं। (धारा 633)

बोध प्रश्न

1. कम्पनी अंकेक्षक के अधिकार एवं कर्तव्य क्या है ?
2. कम्पनी अंकेक्षक के दायित्वों सम्बन्धित प्रावधानों को बताईये ?

१.१४ सारांश

प्रत्येक कम्पनी को अपने वार्षिक खातों लाभ हानि एवं चिट्ठे का वैधानिक योग्यता रखने वाले व्यक्ति से जॉच पड़ताल करवाना अनिवार्य होता है। जो व्यक्ति वैधानिक योग्यता रखता है उसे वैधानिक अंकेक्षक कहा जाता है तथा कम्पनी का अंकेक्षण कार्य के लिये नियुक्त किया जाता है। इसकी नियुक्ति निम्न प्रकार हो सकती है :–

1. संचालको द्वारा
2. कम्पनी के अंशधारियों द्वारा
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा

अंकेक्षक की योग्यता एवं अयोग्यताएँ, पारिश्रमिक तथा कम्पनी से हटाने के भी प्रावधान है। कम्पनी अंकेक्षक के अधिकार, कर्तव्यों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में भारतीय कम्पनी अधिनियम में विभिन्न धाराओं के अंतर्गत नियम एवं प्रावधान दिये गये हैं।

१.१५ शब्दावली

1. वार्षिक खाते :– कम्पनी द्वारा हिसाब–किताब के लिए रखे जाने वाली पुस्तके लाभ–हानि खाता एवं चिट्ठा
2. अंकेक्षण :– जॉच पड़ताल करना
3. अंकेक्षक :– जॉच पड़ताल करने वाला व्यक्ति

१.१६ कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कम्पनी अधिनियम :– चुण्डावत, खींचा, जोशी, जैन, अजमेरा बुक कम्पनी
2. कम्पनी विधि :– डॉ. आर.एल. नौलखा, रमेश बुक डिपो–जयपुर
3. कम्पनी अधिनियम एवं सचिवीय पद्धति :– उपाध्याय, चतुर्वेदी, गुप्ता, शर्मा
4. अंकेक्षण :– जैन, खण्डेलवाल, रमेश बुक डिपो – जयपुर

१.१७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न का उतर इकाई में अंकित 1.3 में दिया गया है उसे पढ़िये और अपना
2. इस प्रश्न का उतर इकाई में अंकित 1.6 भाग में दिया गया हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. इस प्रश्न का उतर इकाई मं अंकित 1.8 भाग में विस्तार से दिया गया है।
4. इस प्रश्न का उतर इकाई मं अंकित 1.10 भाग में पढिये एवं उतर दीजिये।
5. इस प्रश्न का उतर इकाई में अंकित 1.9 भाग में पढिये एवं उतर दीजिये।
6. इस प्रश्न का उतर इकाई में अंकित 1.11 व 1.12 भाग में विस्तार से दिया गया है।
7. इस प्रश्न का उतर इकाई में अंकित 1.13 भाग में विस्तार से दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-२ : अंकेक्षण रिपोर्ट : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अंकेक्षण रिपोर्ट की परिभाषा

2.3 अंकेक्षण रिपोर्ट की आवश्यकता

2.4 अंकेक्षण रिपोर्ट के आवश्यक तत्व

बोध प्रश्न

2.5 अंकेक्षण रिपोर्ट के भेद

2.6 अंकक्षण रिपोर्ट के नमूने

2.7 अंकेक्षण प्रमाण–पत्र

2.8 अंकेक्षण रिपोर्ट एवं प्रमाण–पत्र में अन्तर

बोध प्रश्न

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.12 बोध प्रश्नो के उतर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंकेक्षण रिपोर्ट : एक परिचय

२.० उद्देश्य

अंकेक्षक और अंकेक्षण के बारे में जानकारी के बाद इस इकाई के अध्ययन से आप इस योग्य हो सकेगें कि :–

1. अंकेक्षक के द्वारा अंकेक्षण के पश्चात् की जाने वाली अंकेक्षण रिपोर्ट का अर्थ एवं उसका कम्पनी के लिए वैधानिक महत्व को जान सकेगें।
2. अंकेक्षण रिपोर्ट में लिखी जाने वाली महत्वपूर्ण वैधानिक जानकारी एवं रिपोर्ट के प्रकार के बारे में जान सकेगें।
3. अंकेक्षण रिपोर्ट के आकार एवं नमूने तथा अंकेक्षण प्रमाण–पत्र के बारे में जान पायेगें।

२.१ प्रस्तावना :–

कम्पनी का अंकेक्षण करने के बाद वैधानिक अंकेक्षक खातों की जॉच पड़ताल का कार्य समाप्त करके एक रिपोर्ट तैयार करता है। यह रिपोर्ट कम्पनी के अंशधारियों, संचालकों, लेनदारों, आयकर अधिकारियों एवं सरकार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में कार्य करता है। अतः अंकेक्षण रिपोर्ट बहुत ही सोच समझकर, सत्यता तथा ईमानदारी के साथ कम्पनी के विभिन्न पक्षकारों को सूचना देने के लिए बनाई जाती है।

२.२ अंकेक्षण रिपोर्ट की परिभाषा

अंकेक्षक अपना जॉच कार्य समाप्त करने के पश्चात् एक रिपोर्ट तैयार करता है जिसे अंकेक्षण रिपोर्ट कहते है। कभी–कभी अंकेक्षक कार्य के बीच मे भी अपने कार्य के बारे में रिपोर्ट करते हैं जो 'अन्तरिम रिपोर्टस' कहलाती है। लंकास्टार ने रिपोर्ट की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:–

''एक रिपोर्ट एकत्रित तथा विचार किए हुए तथ्यों का एक ऐसा विवरण–पत्र है जो इन व्यक्तियों को स्पष्ट तथा संक्षिप्त सूचना देने के लिए बनाया जाता है जिन्हें उस विषय सम्बन्धी पूर्ण जानकारी नहीं होती।

२.३ अंकेक्षण रिपोर्ट की आवश्यकता

अंकेक्षण रिपोर्ट एक ऐसा प्रलेख है जिसे प्राप्त करने के लिए ही अंकेक्षक की नियुक्ति की जाती है। यह अंकेक्षक द्वारा किये गये कार्य का निचोड़ है। यह वही प्रलेख है जो उस संस्था के बारे में भी जिसका अंकेक्षण किया गया है, उससे सम्बद्ध लोगों के विचारों को बनाता है अथवा बिगाड़ता है। फर्म के लिये यह साझेदारों की पारस्परिक ईमानदारी को प्रकट करता है, तो ट्रस्ट के लिये ट्रस्टियों की ईमानदारी तथा सच्चाई को प्रकट करता है। इसी प्रकार एक सहकारी समिति के लिए अंकेक्षण रिपोर्ट प्रकट करती है कि समिति का कार्य सहकारिता अधिनियम, उपनियम तथा सिद्धान्तों के अनुकूल चलाया जा रहा है अथवा नही। एक सरकारी कम्पनी या कॉरपोरेशन के सम्बन्ध में यह रिपोर्ट संसद को यह बताती है कि सार्वजनिक धन का अपव्यय तो नहीं हो रहा हैं एक कम्पनी के लिए इस रिपोर्ट का विशेष महत्व है जो आगे बताया गया है।

1. **अंशधारियों के लिये :–** अंशधारी कम्पनी के मालिक होते हैं जो सैकड़ो की संख्या में दूर–दूर बिखरे रहने के कारण एक साथ इकट्ठा होकर कम्पनी के कार्य की देख–रेख करने में असमर्थ होते हैं। यही नहीं, बहुत से इनमें अशिक्षित या अल्प–शिक्षित होते हैं और एक–दूसरे के परिचित भी नहीं होते। अतः ये स्वयं सब मिलकर कम्पनी का प्रबन्ध करने में असमर्थ होते है ओर इस कार्य के लिये वे अपने प्रतिनिधि चुनकर नियुक्त कर देते हैं। ये प्रतिनिधि संचालक कहलाते है। व्यापार के प्रबन्ध के सम्बन्ध में प्रमुख उत्तरदायित्व इन्हीं का होता है। ये लोग प्रतिवर्ष व्यवसाय का लाभ–हानि खाता एवं चिट्ठा बनाते हैं और अंशधारियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। लेकिन बहुत कम अंशधारी लाभ–हानि खाते एवं चिट्ठे को समझने की स्थिति में होते हैं, यदि कुछ समझते हैं तो उनके लिये यह जानना मुश्किल है कि प्रलेख सही एवं उचित है अथवा नहीं, क्योंकि जब तक हिसाब–किताब की जॉच नहीं कर ली जाती, जिसके आधार पर उन प्रलेखों को तैयार किया गया है, इनकी सत्यता या औचित्य के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस कार्य के लिए अंशधारी अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं जो कि इस कार्य का विशेषज्ञ होता है तथा स्वतन्त्रतापूर्वक अपना कार्य करके अंशधारियों को इन प्रलेखों की सत्यापन या औचित्य के सम्बन्ध में निष्पक्ष रिपोर्ट देता है। इस रिपोर्ट के आधार पर ही अंशधारियों को कम्पनी की ठीक स्थिति का ज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होता है। इससे उन्हें संचालकों की योग्यता तथा ईमानदारी का भी ज्ञान हो जाता है। अतः यह रिपोर्ट अंशधारियों के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। इससे अंशधारियों के हितों की रक्षा होती है और इसी कारण से विधान द्वारा कम्पनी अंकेक्षण अनिवार्य किया गया है।

2. **संचालको के लिये महत्व :–** कम्पनी के सम्बन्ध में समस्त कार्य कम्पनी के संचालक नहीं कर सकते, उनका कार्य तो नीति–निर्धारण है। वास्तविक कार्य तो कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है, अतः अंकेक्षक की रिपोर्ट द्वारा संचालकों को कर्मचारियों की योग्यता एवं ईमानदारी का पता चल जाता है।

3. **लेनदारों के लिये :–** अंकेक्षक अपना कार्य स्वतन्त्र वातावरण में करता है और उसकी रिपोर्ट निष्पक्ष होती है, अतः लेनदारों को कम्पनी की सही आर्थिक प्रगति एवं स्थिति का ज्ञान हो जाता है।

4. **आयकर अधिकारियों के लिये :–** अंकेक्षित हिसाब–किताब के आधार पर कर–निर्धारण में आयकर अधिकारी को सुगमता रहती है क्योंकि वह लेखे की सत्यता के सम्बन्ध में विश्वस्त रहता है।

5. **सरकार के लिये :–** सरकार को यह विश्वास हो जाता है कि संचालक अंशधारियों का शोषण नहीं कर रहे है। देश के औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में भी सरकार को सही आँकड़े उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंकेक्षण रिपोर्ट सभी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रखती है।

कम्पनी अंकेक्षक द्वारा रिपोर्ट देना :–

धारा 227 (2) के अन्तर्गत एक अंकेक्षक का, कम्पनी के सदस्यों को कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले समस्त लेखों पर और प्रत्येक चिट्ठा एवं लाभ–हानि खाता तथा प्रत्येक प्रलेख पर जिसे कम्पनी विधान ने चिट्ठा या लाभ–हानि खाते का एक अंग या साख नत्थी किये जाने वाला घोषित कर दिया है, रिपोर्ट देना कर्तव्य है।

अंकेक्षक की नियुक्ति चाहे किसी के द्वारा की जावें, लेकिन यह अपनी रिपोर्ट कम्पनी के सदस्यों को ही देगा। उसे अंशधारियों को स्पष्ट एवं पूर्ण रिपोर्ट देनी चाहिये, उसके द्वारा अंशधारियों को केवल इतनी सूचना देने से कार्य नही चलेगा जो उन्हें और पूछने के लिये प्रेरित करे।

अंकेक्षक का कर्तव्य अंशधारियों को रिपोर्ट देना है। यदि किसी मामले को वे कम्पनी के संचालकों को सूचित कर देते हैं और अपनी रिपोर्ट में उसका उल्लेख नहीं करते तो वे अपने दायित्व से यह कह कर मुक्त नही हो सकते कि उन्होंने संचालकों को इसकी सूचना दे दी थी। लेकिन एक निजी कम्पनी के सम्बन्ध में जिसके समस्त अंश और ऋण–पत्र संचालकों के पास हैं, अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में पूर्ण सूचना न देकर सभी संचालकों को व्यक्तिगत सब सूचना दे देता है तो उसकी रिपोर्ट में सब सूचनाओं का उल्लेख न करने के कारण कोई दायित्व नही बनता है।

२.४ अंकेक्षण रिपोर्ट के आवश्यक तत्व

भारतीय कम्पनी विधान के अनुसार अंकेक्षक रिपोर्ट में निम्न बातें दी जानी चाहिये :–

1. **धारा 227 (2) के अनुसार**

क्या उसकी राय में तथा उसे प्राप्त सूचना एवं स्पष्टीकरण के अनुसार कम्पनी के खाते कम्पनी विधान द्वारा चाही गई सूचना देते हैं, तथा

(क) कम्पनी का चिठ्ा उसके आर्थिक वर्ष के अन्त की आर्थिक स्थिति का, और

(ख) कम्पनी का लाभ–हानि खाता आर्थिक वर्ष के लाभ अथवा हानि का सही एवं उचित चित्र प्रस्तुत करते है अथवा नहीं।

इस सम्बन्ध में अंकेक्षक के दो कार्य हुए :–

1. उसे यह देखना है कि खाते कम्पनी विधान द्वारा चाही गई विधि के अनुसार तैयार किये गये है अथवा नहीं। इसके लिए अंकेक्षक को देखना चाहिये कि कम्पनी विधान की अनुसूचि IV का पूर्ण रूप से पालन हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. उसे यह देखना चाहिये कि अन्तिम खाते 'सही एवं उचित' चित्र प्रस्तुत करते हैं अथवा नहीं।

सही एवं उचित :– यह वाक्यांश अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह जानने के लिये कि अन्तिम खाते सही एवं उचित हैं अथवा नहीं, अंकेक्षक को प्रमुख रूप में निम्नलिखित बातें देखनी पड़ती हैः–

(क) कम्पनी के द्वारा उचित पुस्तकें रखी गई हैं अथवा नहीं और वे कम्पनी के व्यवहारों का स्पष्ट चित्रह प्रस्तुत करती है अथवा नहीं।

(ख) कम्पनी के द्वारा प्राप्त आय कम्पनी द्वारा प्राप्त कर ली गई है, तथा उसका लेखा कर लिया गया है अथवा नहीं।

(ग) कम्पनी के द्वारा किये गया खर्च उचित तौर पर अधिकृत था और कम्पनी के कार्य के लिये किया गया था।

(घ) पुस्तकों में खर्च का सही लेखा किया गया है और खर्च को पूँजीगत और आयगत में उचित रूप में विभाजित किया गया है।

(ड.) संचालकों एवं प्रबन्धकों को किये गये भुगतान उचित थे और अधिकृत थे।

(च) ज्ञात दायित्वों एवं संदिग्ध दायित्वों के सम्बन्ध मे पर्याप्त आयोजन किया गया हैं।

(छ) कम्पनी की अचल सम्पतियॉ मौजूद है, कम्पनी के नाम में है और उचित मूल्यॉकन किया गया है।

(ज) कम्पनी की सम्पतियों का उचित मूल्यॉकन किया गया है।

(झ) पुस्तकें लेखाकर्म के सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार लिखी गई है।

उपर्युक्त बातों के आधार पर एक अंकेक्षक अपनी राय निर्धारित करेगा कि लाभ–हानि खाता एवं चिट्ठा सही एवं उचित है अथवा नहीं।

2. धारा 227 (3) के अनुसार

(a) क्या उसने वे सभी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिये हैं जो उसकी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार अंकेक्षण कार्य के लिये आवश्यक थे।

अंकेक्षण अपने कार्य के लिये जो भी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण आवश्यक समझे, कम्पनी के अधिकारियों से मॉग सकता है। यदि उसे मॉगी गई सूचना या स्पष्टीकरण के लिये किसी भी कारण से मना कर दिया जाता है, तो उसे इसका उल्लेख अपनी रिपोर्ट में कर देना चाहिये।

(b) क्या उसकी राय में कम्पनी द्वारा विधान द्वारा आवश्यक उचित लेखा पुस्तकें रखी गई हैं जैसा कि उन पुस्तकों को जॉचने से उसे प्रकट हुआ हैं तथा क्या कम्पनी की उन शाखाओं से जिनका उसने निरीक्षण नहीं किया है, पर्याप्त विवरण प्राप्त हो गये हैं।

भारतीय कम्पनी विधान की धारा 209 के अनुसार कम्पनी को निम्नांकित लिखी बातों से सम्बन्धित उचित लेखा पुस्तकें रखनी पड़ती हैं :–

1. कम्पनी के द्वारा प्राप्त एवं खर्च की गई रकम तथा वे बातें जिसके सम्बन्ध में प्राप्तियॉ या खर्च किये गये हैं।
2. कम्पनी द्वारा माल का किया गया क्रय–विक्रय।
3. कम्पनी की सम्पतियॉ एवं दायित्व।
4. ऐसी कम्पनी जो उत्पादन, प्राविधि, निर्माण या खनन सम्बन्धी कार्यो में लगी हुई है, कच्चे माल या श्रम या लागत की अन्य मदों के सम्बन्ध में ऐसा विवरण जो केन्द्रीय सरकार द्वारा उस श्रेणी की कम्पनियों के लिए लेखा पुस्तकों में शामिल करने के लिए निर्धारित किया जावें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपर्युक्त बातों को लेखा पुस्तकों में इस प्रकार लिखा जाना चाहिये कि वे व्यवहारों के सम्बन्ध में सही एवं उचित चित्र प्रस्तुत कर सकें। अंकेक्ष कइस सम्बन्ध में यदि सन्तुष्ट नहीं है तो उसे अपनी रिपोर्ट में इन मार्यादाओं का उल्लेख कर देना चाहिये।

निम्नलिखित परिस्थितियों में यह माना जायेगा कि कम्पनी द्वारा उचित लेखा पुस्तके नही रखी गई हैं :–

1. यदि ऐसी पुस्तकें नहीं रखी गई हैं जो कम्पनी अथवा उसकी शाखा जैसी भी स्थिति हो, की वार्षिक स्थिति का सही और उचित चित्र प्रस्तुत करने के लिए है तथा इसके व्यवहारों को स्पष्ट करने के लिये आवश्यक हैं।

2. यदि इन पुस्तकों को उपार्जन–आधार पर तथा लेखांकन की दोहरा प्रविष्टी प्रणाली पर नहीं रखा गया है।

(b) यदि कम्पनी की किसी शाखा का अंकेक्षण कम्पनी अंकेक्षक के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति ने किया है तो क्या कम्पनी अंकेक्षक को उस व्यक्ति से शाखा अंकेक्षण रिपोर्ट प्राप्त हो गई है। उसने अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय शाखा अंकेक्षण रिपोर्ट का किस प्रकार उपयोग किया हैं।

एक कम्पनी के लिये अपनी शाखा के हिसाब–किताब का अंकेक्षण कम्पनी विधान की धारा 228 के अनुसार योग्य अंकेक्षक द्वारा करवाना अनिवार्य होता है, यदि यह शाखा ..... के अन्तर्गत अनिवार्य अंकेक्षण से मुक्त नही है। शाखा अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि कम्पनी अंकेक्षक को भेजता है और अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय इस रिपोर्ट को ध्यान में रखता है और जिस प्रकार चाहे उसको उपयोग में ले सकता है। कम्पनी अंकेक्षक का उतरदायित्व शाखा अंकेक्षक पर निर्भर है और कम्पनी अंकेक्षक को शाखा अंकेक्षक के कार्य पर विश्वास करने का अधिकार है। यदि कम्पनी अंकेक्षक को शाखा अंकेक्षक से रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई हो तो उसे इस बात का उल्लेख अपनी रिपोर्ट में कर देना चाहिये।

(c) कम्पनी के जिस चिट्ठे तथा लाभ–हानि खाते पर अंकेक्षक ने अपनी रिपोर्ट दी है, वे लेखा–पुस्तकों और विवरणों के अनुसार बने हैं अथवा नहीं।

(d) क्या, उसकी राय में, कम्पनी अधिनियम की धारा 211 (3 C) में संदर्भित लेखा मानकों की लाभ–हानि खाते और चिट्ठे द्वारा अनुपालना की गयी है।

3. धारा 227 (4) के अनुसार

उपरोक्त धाराओं में वर्णित कोई भी बात यदि निषेधात्मक है अथवा मर्यादा के साथ कही गयी है तो अंकेक्षक को इसका कारण देना होगा।

4. धारा 227 (4A) के अनुसार

इस धारा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने एक आदेश जारी किया है। यह आदेश जिन कम्पनियों पर लागू होता है उनकी अंकेक्षण रिपोर्ट में आदेश में वर्णित बातों का एक विवरण सम्मिलित करना आवश्यक है। इसका नमूना आगे दिया गया है।

5. धारा 211 (3A), (3B) तथा (3C) के अनुसार

(A) कम्पनी का प्रत्येक लाभ–हानि खाता तथा चिठा लेखा मानकों की अनुपालना करेगें।

(B) यदि लाभ–हानि खाता और चिट्ठे द्वारा लेखा मानकों की अनुपालना नही की जाती है तो ऐसी कम्पनियॉ निम्नलिखित बातें प्रकट करेगें :–

(a) लेखा मानकों से विचलन,

(b) विचलन के कारण, तथा

(c) विचलन से उत्पन्न, यदि कोई है तो, वित्तीय प्रभाव।

(d) लेखा मानको से तात्पर्य उनसे है जिनकी भारतीय चार्टर्ड

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एकाउण्टेण्ट्स संस्थान द्वारा सिफारिश की गयी है तथा

जो कम्पनी अधिनियम की धारा 210 A की उपधारा (1) के अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय सलाहकार समिति की सलाह से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदिष्ट किये गये हैं। लेकिन जब तक इस उपधारा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा मानक प्रदिष्ट नहीं किये जाते हैं तब तक चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट्स संस्थान द्वारा निर्धारित मानक लागू रहेगें।

6. धारा 227 (1A) के अनुसार

इस धारा के अन्तर्गत अंकेक्षक के कुछ अतिरिक्त कर्तव्य कम्पनी के कतिपय मामलों की जॉच–पड़ताल करने के सम्बन्ध में निर्धारित किये गये हैं। इनके सम्बन्ध में अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में कोई बात लिखना चाहे तो वह ऐसा कर सकता हैं।

7. धारा 228 के अन्तर्गत शाखा लेखों के सम्बन्ध में

शाखा के लेखों पर शाखा अंकेक्षक एक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसे कम्पनी अंकेक्षक को अग्रेसित करेगा जो अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय जैसा आवश्यक समझे उस शाखा रिपोर्ट के साथ व्यवहार करेगा।

8. रिपोर्ट पर हस्ताक्षर

भारतीय कम्पनी विधान की धारा 229 के अनुसार जो रिपोर्ट या प्रलेख अंकेक्षक द्वारा हस्ताक्षरित या प्रमाणित होने चाहिये वे केवल निम्न व्यक्ति द्वारा ही हस्ताक्षरित या प्रमाणित हो सकते है :–

1. स्वयं कम्पनी अंकेक्षक द्वारा
2. यदि कम्पनी अंकेक्षक कोई फर्म है तो उसके ऐसे साझेदार जो भारत में प्रेक्टिस कर रहा हो।

9. अंकेक्षण रिपोर्ट का पढ़ा जाना और निरीक्षण (धारा 230)

अंकेक्षण रिपोर्ट को कम्पनी की साधारण सभा में पढ़ा जावेगा तथा यह सदस्यों के निरीक्षण के लिए खुली रहेगी।

केन्द्रीय सरकार किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा ऐसी आज्ञा भी दे सकती है कि उस आदेश में उल्लिखित कम्पनियों के सम्बन्ध में अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में उन बातों का विवरण भी देगा जो आदेश में बताई गई है।

बोध प्रश्न

1. अंकेक्षण रिपोर्ट का अर्थ बताईये ?
2. अंकक्षण रिपोर्ट का महत्व समझाईये ?
3. अंकेक्षण रिपोर्ट में लिखी जाने वाली बातों को बताईये ?

२.५ अंकेक्षण रिपोर्ट के भेद

1. स्वच्छ रिपोर्ट या अमर्यादित रिपोर्ट

2. मर्यादित रिपोर्ट

1. स्वच्छ रिपोर्ट

अंकेक्षक की रिपोर्ट में जिन पॉच बातों का समावेश होना चाहिये, उनके सम्बन्ध में अंकेक्षक यदि पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है तो वह अन्तिम खातों पर अपनी स्वच्छ रिपोर्ट देगा। स्वच्छ रिपोर्ट ऐसे खातों के समबन्ध में दी जा सकती है जिसमें अंकेक्षक को कोई अनियमितता या अशुद्धि न मिले और जिनके सम्बन्ध में उसे कोई शिकायत न हो तथा जिनके सही एवं उचित होने के सम्बन्ध में उसे कोई सन्देह न हो। स्वच्छ रिपोर्ट देने का तात्पर्य यह है कि अंकेक्षक ने निम्न कार्य कर लिये हैं।

(क) पुस्तकों की पर्याप्त जॉच

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ख) अंकेक्षण के सर्वमान्य सिद्धान्तों का पालन,

(ग) परिस्थतियों के अनुकूल आवश्यक प्रक्रियाओं को अपनाना, और

(घ) उचित सावधानी एवं चतुराई का उपयोग

2. मर्यादित रिपोर्ट

अंकेक्षक की रिपोर्ट में जिन पॉच बातों का उल्लेख होना चाहिये, उनके सम्बन्ध में अंकेक्षक यदि सन्तुष्ट नहीं है तो उसे अपने असन्तोष का अपनी रिपोर्ट में उल्लेख करना होगा। ऐसी रिपोर्ट को मर्यादित रिपोर्ट कहते है। अंकेक्षक को जिन कारणों से मर्यादित रिपोर्ट देनी होती है वे सामान्य तौर पर निम्न वर्णित हो सकते हैं :–

(क) अंकेक्षक लेखे की जॉच में आवश्यक अंकेक्षक प्रक्रियाओं को न अपना सको हो क्योंकि उसे आवश्यक गवाह (प्रमाणकों अथवा प्रपत्रों के रूप में) न मिल सके हों।

(ख) अंकेक्षण को राय प्रकट करने के लिये पर्याप्त सूचना न मिली हो जैसे कम्पनी में हिसाब–किताब का पूर्ण लेखा न रखा गया हों।

(ग) हिसाब–किताब में लेखाकर्म के सिद्धान्तों का उल्लेघन किया गया हो।

(घ) साल दर साल अपनाये गये लेखाकर्म के सिद्धान्तों में असंगति रही हो, जैसे अन्तिम स्टॉक का मूल्यांकन पिछले वर्ष के तरीके पर न किया गया हो और परिवर्तन अंकेक्षक को मान्य न हो, अथवा

(ड.) अन्य कोई कारण जिनसे अंकेक्षक असन्तुष्ट हो।

२.६ अंकेक्षण रिपोर्ट के नमूने

पहले बताया जा चुका है कि केन्द्रीय सरकार ने कम्पनी अधिनिमय की धारा 227 के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया है जो उस आदेश में वर्णित कुछ श्रेणी की कम्पनियों पर लागू होता है। नीचे पहले कुछ ऐसी कम्पनियों के सम्बन्ध में अंकेक्षण रिपोर्ट के नमूने दिये जा रहे हैं जिन पर भारत सरकार का उक्त आदेश लागू नही होता है।

स्वच्छ रिपोर्ट का नमूना

(i) ऐसी कम्पनी के सम्बन्ध में जिसकी शाखा न हो

सदस्यगण
शेखर लिमिटेड़
कलकत्ता

हमने 'शेखर लिमिटेड' के 31 मार्च, 2009 को बनाये गये उपर्युक्त चिट्ठे का और उसी तिथि को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये नत्थी किये गये कम्पनी के लाभ–हानि खाते का अंकेक्षण कर लिया है और हम सूचित करते हैं कि :–

1. वे सभी सूचनाऍ एवं स्पष्टीकरण हमें प्राप्त हुए हैं जिनकी हमारी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार, अंकेक्षण कार्य के लिए हमें आवश्यकता थी,
2. जैसा कि पुस्तकों के निरीक्षण से प्रकट होता है, हमारी राय में कम्पनी ने विधान के अनुसार आवश्यक पुस्तके रखी है,
3. कम्पनी का चिट्ठा एवं लाभ–हानि खाता, जिनके सम्बन्ध में यह रिपोर्ट दी जा रही है, कम्पनी की लेखा पुस्तकों के अनुरूप हैं,
4. हमारी राय में, कम्पनी अधिनियम की धारा 211 (3C) में सन्दर्भित लेखा मानकों की लाभ हानि खाते और चिठे् द्वारा अनुपालना की गयी है, तथा
5. हमारी राय में और हमें दी गई सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण के आधार पर उक्त खाते कम्पनी विधान द्वारा चाही गई सूचना देते हैं और चिट्टा 31 मार्च, 2009 की कम्पनी की स्थिति का और लाभ–हानि खाता इस तारीख को समाप्त हुए वर्ष के लाभ का 'सही और उचित चित्र' प्रस्तुत करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मर्यादित रिपोर्ट का नमूना

सदस्यगण
शेखर लिमिटेड़
मैसूर

हमने 'शेखर लिमिटेड' के 31 मार्च, 2009 को बनाये गये उपर्युक्त चिट्ठे का और उसी तिथि को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये नत्थी किये गये कम्पनी के लाभ–हानि खाते का अंकेक्षण कर लिया है और हम सूचित करते हैं कि :–

1. वे सभी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण हमें प्राप्त हुए हैं जिनकी हमारी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार, अंकेक्षण कार्य के लिए हमें आवश्यकता थी,
2. जैसा कि पुस्तकों के निरीक्षण से प्रकट होता है, हमारी राय में कम्पनी ने विधान के अनुसार आवश्यक पुस्तके रखी है, तथा
3. कम्पनी का चिट्ठा एवं लाभ–हानि खाता, जिनके सम्बन्ध में यह रिपोर्ट दी जा रही है, कम्पनी की लेखा पुस्तकों के अनुरूप हैं,
4. हमारी राय में, कम्पनी अधिनियम की धारा 211 (3C) में सन्दर्भित लेखा मानकों की लाभ हानि खाते और चिठे् द्वारा अनुपालना की गयी है, तथा
5. नीचे दी गई मर्यादाओं को छोड़कर, हमारी राय में और दी गई सूचनाओं एवं स्पष्टीकरणों के आधार पर उक्त खाते कम्पनी विधान, 1956 द्वारा चाही गई सूचना देते हैं और चिट्टा 31 मार्च, 2000 को कम्पनी की स्थिति का और लाभ–हानि खाता इस तारीख को समाप्त हुए वर्ष के लाभ का 'सही एवं उचित चित्र' प्रस्तुत करते हैः–
   (i) भवन के सम्बन्ध में काटा गया मूल्य–ह्रास हमारी राय में अपर्याप्त हैं।
   (ii) लेनदारों की सूची में 10,000 रू. गिरीराज एण्ड सन्स से लेना है, जिसे न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जा चुका है।
   (iii) कम्पनी के स्टॉक में 12,000 रूपये की क्षतिग्रस्त मदों को लागत कीमत पर दिखाया गया है।

कम्पनी अधिनियम की धारा 227 (4A) के अन्तर्गत निर्गमित आदेश लागू होने वाली कम्पनियों के सम्बन्ध में रिपोर्ट का नमूना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, केन्द्रीय सरकार ने कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 227 (4A) के अन्तर्गत एक आदेश निर्गमित किया है। यह आदेश निम्नलिखित व्यवसाय में लगी कम्पनियों पर लागू होता हैं :–

1. निर्माण, खनन अथवा प्राविधि
2. सेवा आपूर्ति,
3. व्यापार
4. वित्तीय व्यवस्था, विनियोग चिट फण्ड, निधि अथवा पारस्परिक सहयोग।

इस आदेश के अनुसार उपर्युक्त कार्यो में लगी हुई कम्पनियों की अंकेक्षण रिपोर्ट में इस आदेश में वर्णित बातों के सम्बन्ध में भी एक विवरण देना पड़ता है। इस आदेश के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए एक निर्माणी कम्पनी की अंकेक्षण रिपोर्ट का नमूना यहॉ दिया जाता हैं।

एक निर्माणी कम्पनी की अमर्यादित रिपोर्ट का नमूना

सदस्यगण
शेखर लिमिटेड़
बैंगलोर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हमने 'शेखर लिमिटेड' के 31 मार्च, 2009 को बनाये गये उपर्युक्त चिट्ठे का और उसी तिथि को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये नत्थी किये गये कम्पनी के लाभ–हानि खाते का अंकेक्षण कर लिया है।

1. हम सूचित करते हैं कि :–

- कम्पनी की स्थायी सम्पति के सम्बन्ध में संख्यात्मक विवरण तथा उनकी स्थिति सहित पूर्ण ब्यौरा दिखाते हुए उचित लेखे रखे गये हैं तथा इन सम्पतियों का प्रबन्धकों द्वारा उचित अन्तराल पर भौतिक सत्यापन कर लिया गया है। ऐसे सत्यापन के समय कोई महत्वपूर्ण गड़बड़ियाँ ध्यान में नहीं आई हैं।
- वर्ष के दौरान किसी स्थायी सम्पति का पुनर्मूल्याकंन नहीं किया गया हैं।
- निर्मित माल, सामग्री, फालतू पुर्जे और कच्चे माल के स्टॉक का प्रबन्धकों द्वारा उचित अन्तराल पर भौतिक सत्यापन कर लिया गया है।
- कम्पनी के आकार तथा व्यवसाय के स्वभाव को देखते हुए प्रबन्धकों द्वारा स्टॉक के सत्यापन के सम्बन्ध में अपनाई गई विधि उचित और पर्याप्त है।
- भौतिक सत्यापन पर भौतिक–स्टॉक और पुस्तक स्टॉक के मध्य जो अन्तर पाया गया वह महत्वपूर्ण नहीं है और उसके साथ लेखा पुस्तकों में उचित प्रकार से व्यवहार किया गया है।
- पुस्तकों की जॉच के आधार पर हम सन्तुष्ट हैं कि स्टॉक का मूल्यांकन लेखांकन के स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार उचित है तथा मूल्यॉकन का आधार वही है जो पिछले वर्ष का था।
- कम्पनी अधिनियम की धारा 301 के अन्तर्गत रखे गये रजिस्टर में कम्पनियों, फर्मो या अन्य पक्षकारों से अथवा धारा 370 (1B) में परिभाषित उसी प्रबन्ध के अन्तर्गत अन्य कम्पनियों से जो सुरक्षित अथवा असुरक्षित ऋण लिये गये हैं उसकी शर्ते और ब्याज की दर हमारी राय में प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी के विरूद्ध नहीं है।
- कम्पनी ने उपरोक्त (g) में वर्णित पक्षकारों को जो ऋण स्वीकार किये हैं, उनके सम्बन्ध में ब्याज की दर तथा ऐसे ऋण की अन्य शर्ते कम्पनी के हितों के विरूद्ध नहीं हैं।
- कम्पनी ने जो ऋण दिये है अथवा ऋण के स्वभाव में जो अग्रिम दिये हैं उनके सम्बन्ध में पक्षकार शर्तो के अनुसार मूलधन चुका रहे हैं और ब्याज के भुगतान में भी नियमितता है।
- हमारी राय में तथा हमें दी गई सूचना और स्पष्टीकरण के आधार पर सामग्री, कच्चे माल, संघटक, प्लान्ट और मशीन, उपकरण तथा अन्य सम्पतियों के क्रय के सम्बन्ध में कम्पनी के आकार तथा व्यवसाय के स्वभाव के अनुरूप आन्तरिक नियन्त्रण प्रणाली विद्यमान है।
- माल और सामग्री के क्रय तथा माल, सामग्री और सेवाओं के विक्रय जो ऐसे अनुबन्धों के अधीन किये गये हैं जिनका वर्णन कम्पनी अधिनियम की धारा 301 में वर्णित रजिस्टरों में किया गया है और जो वर्ष के दौरान प्रत्येक पक्षकार के सम्बन्ध में 75,000 रू. या इससे अधिक के हैं ऐसे ही माल, सामग्री और सेवाओं के बाजार में विक्रय मूल्य अथवा ऐसे मूल्यों की तुलना में जिन पर वैसे ही माल, सामग्री व सेवाओं के सम्बन्ध में अन्य पक्षकारों से व्यवहार किये गये हैं, उचित हैं।
- कम्पनी में अनुपयोगी तथा क्षतिग्रस्त सामग्री कच्चे माल तथा निर्मित माल निर्धारित कर लिये गये हैं तथा इस सम्बन्ध में हानि का लेखों में प्रावधान कर लिया गया है।
- कम्पनी ने जनता से स्वीकार किये गये निक्षेपों के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम की धारा 58 A तथा कम्पनी (निक्षेपों की स्वीकृति) नियमों के प्रावधानो तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन किया है।
- हमारी राय में विक्रय योग्य तथा महत्वपूर्ण उत्पाद अथवा रद्दी की बिक्री के सम्बन्ध में कम्पनी द्वारा उचित लेखे रखे गये हैं।
- हमारी राय में कम्पनी के आकार तथा उनके व्यवसाय के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए कम्पनी में पर्याप्त आन्तरिक अंकेक्षण प्रणाली अपनाई गई हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- कम्पनी अधिनियम की धारा 209 (1) (b) के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्गमित आदेश के अधीन कम्पनी द्वारा लेखा पुस्तकें रखी गई हैं तथा तैयार कर ली गई हैं।
- कम्पनी ने भविष्य निधि तथा राज्य बीमा की देय राशियॉ निर्धारित अधिकारी के पास वर्ष के दौरान नियमित रूप से जमा करा दी हैं और 31 मार्च, 2009 को भविष्य निधि तथा राज्य बीमा की कोई बकाया राशि नहीं हैं।
- आयकर, धन कर, बिक्री कर, तट तथा उत्पादन शुल्क की कोई अविवादग्रस्त राशियॉ सम्बन्धित वित्तीय वर्ष के अन्तिम दिन को देय होने की तारीख से छः माह से अधिक समय से बकाया नहीं है।
- कोई व्यक्तिगत खर्चे रेवेन्यू खातों को चार्ज नहीं किये गये हैं।
- कम्पनी रूग्ण औद्योगिक कम्पनियॉ (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 की धारा 3 उपधारा 1 के वाक्यांश (O) के अधीन एक रूग्ण कम्पनी नहीं है।

2. हम और सूचित करते हैं कि :–

- हमने वे सभी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिये हैं जिनकी हमारी जानकारी और विश्वास के अनुसार अंकेक्षण कार्य के लिये हमें आवश्यकता थी।
- जैसा कि पुस्तकों के निरीक्षण से प्रकट होता है, हमारी राय में कम्पनी ने विधान के अनुसार आवश्यक पुस्तके रखी है, तथा
- कम्पनी का चिट्ठा एवं लाभ–हानि खाता, जिनके सम्बन्ध में यह रिपोर्ट दी जा रही है, कम्पनी की लेखा पुस्तकों के अनुरूप हैं,
- हमारी राय में, कम्पनी अधिनियम की धारा 211 (3C) में सन्दर्भित लेखा मानकों की लाभ हानि खाते और चिठे् द्वारा अनुपालना की गयी है, तथा
- हमारी राय में और दी गई सूचनाओं एवं स्पष्टीकरणों के आधार पर उक्त खाते कम्पनी अधिनियम, 1956 द्वारा चाही गई सूचना देते हैं और चिट्टा 31 मार्च, 2009 को कम्पनी की स्थिति का और लाभ–हानि खाता इस तारीख को समाप्त हुए वर्ष के लाभ का 'सही एवं उचित चित्र' प्रस्तुत करते है।

२.७ अंकेक्षण प्रमाण–पत्र

चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट एक ऐसा विशेषज्ञ होता है जिसे लेखा प्रणाली के सिद्धान्तों का विशेष ज्ञान होता है, कई प्रकार के व्यवासायिक कानूनों एवं नियमों का ज्ञान होता है तथा हिसाब–किताब की शुद्धता की जॉच करने का विशेष अनुभव होता है। इसलिए लेखे के सम्बन्ध में इसके द्वारा दिये गये प्रमाण–पत्रों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :–

- **प्रविवरण के लिये :–** यदि कोई चालू कम्पनी प्रविवरण का निर्गमन करती है तो उसके अंकेक्षक को उस कम्पनी के पिछले पॉच वर्षो के लाभ या हानियों के सम्बन्ध में, पिछले चिट्ठे की तारीख पर कम्पनी की सम्पतियों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में तथा पिछले पॉच वर्षो में प्रत्येक श्रेणी के अंशो पर दी गई लाभांश की दर के सम्बन्ध में रिपोर्ट के रूप में एक प्रमाण–पत्र देना होता है, जिसे प्रविवरण में शामिल किया जाता हैं।
- **वैधानिक रिपोर्ट के लिये प्रमाण–पत्र :–** कम्पनी के सदस्यों को भेजी जाने वाली वैधानिक रिपोर्ट के तीन अंशो (बंटित अंशों की संख्या, उन पर प्राप्त धन राशि और कम्पनी की प्राप्तियों एवं भुगतान) के सम्बन्ध में अंकेक्षक को प्रमाण–पत्र देना होता है।
- **कन्ट्रोल नियमों के अन्तर्गत प्रमाण–पत्र :–** हमारे देश में नियन्त्रित अर्थव्यवस्था है और व्यवसायों को कई प्रकार की रिटर्न सरकार को भेजनी है जिनकी सत्यता के सम्बन्ध में चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट से प्रमाण–पत्र लेना होता है। उदाहरणार्थ, एक आयात लाइसेन्स के प्रार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी पिछली बिक्री को चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट से प्रमाणित करावें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- कम्पनी के समापन के समय संचालको द्वारा की गई शोधन क्षमता की घोषणा के साथ भी कम्पनी के लाभ–हानि खाते एवं सम्पति और दायित्व के सम्बन्ध में अंकेक्षक को रिपोर्ट के रूप में प्रमाण–पत्र देना होता हैं।
- एक चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट से अन्य परिस्थितियों में भी प्रमाण–पत्र प्राप्त किये जा सकते हैं, जैसे एक व्यापारी आयकर के लिये अपने लाभ–हानि खातें को प्रमाणित करा सकता है अथवा किसी बैंक से धन उधार लेने के लिये अपनी सम्पतियों एवं दायित्वों को प्रमाणित कर सकता है। इसी प्रकार बोनस अधिनियम के अन्तर्गत सकल लाभ तथा उपलब्ध आधिक्य के सम्बन्ध में प्रमाण–पत्र प्राप्त किया जा सकता हैं।

प्रमाण–पत्र देने से पूर्व अंकेक्षण कार्य

कोई प्रमाण–पत्र देने से पूर्व एक चार्टर्ड एकाउण्टेट किस प्रकार से और कितना जॉच कार्य करे, यह अलग परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि प्रमाण–पत्र किसी कानून के अन्तर्गत दिया जा रहा है तो अंकेक्षक को उस कानून का अध्ययन करते हुए जॉच कार्य करना होगा। यदि अंकेक्षक किसी कानून के अन्तर्गत प्रमाण–पत्र नहीं दे रहा है तो अंकेक्षण प्रणाली के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार जॉच कार्य करना चाहिये। जहॉ तक हो सके उसे परीक्षण जॉच पर अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिये और विस्तृत जॉच करनी चाहिये अन्यथा उसे लापरवाही के लिए दोषी ठहरायें जाने का खतरा बना रहेगा।

२.८ अंकेक्षण रिपोर्ट एवं प्रमाण-पत्र में अन्तर

अंकेक्षण रिपोर्ट एवं प्रमाण–पत्र में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते है :–

(अ) प्रमाण–पत्र तथ्यों की शुद्धता की पुष्टि करता है। इसमें कोई अनुमान या राय सम्मिलित नहीं होती है जबकि अंकेक्षण रिपोर्ट में अंकेक्षक की राय सम्मिलित होती हैं।

(ब) अंकेक्षक जब प्रमाण–पत्र निर्गमित करता है तो वह तथ्य सम्बन्धी शुद्धता के लिए उतरदायी होता है तथा जब वह रिपोर्ट देता है वह इस बात पर आधारित होता है कि उसकी राय उचित सावधानी और चतुराई से की गई जॉच पर आधारित हैं।

बोध प्रश्न

1. मर्यादित रिपोर्ट का क्या अर्थ है ?
2. मर्यादित रिपोर्ट का एक उदाहरण दीजिये जिसमें पॉच मर्यादाए हो ?
3. अंकेक्षण प्रमाण–पत्र क्या है ?

२.९ सारांश

अंकेक्षक अपना जॉच कार्य समाप्त होने के पश्चात् एक रिपोर्ट तैयार करता है, जिसे अंकेक्षण रिपोर्ट कहते है। इस रिपोर्ट की आवश्यकता कम्पनी के अंशधारियों, संचालकों, लेनदारों, कर विभाग, सरकार तथा कम्पनी से जुडे पक्षकार के लिए होती है।

अंकेक्षण रिपोर्ट :– स्वच्छ, मर्यादित एवं अमर्यादित रूप में हो सकती है। अंकेक्षण रिपोर्ट के नमूने इस इकाई में दिये गये है। अंत में अंकेक्षण रिपोर्ट को देने के बाद अंकेक्षण प्रमाण–पत्र कम्पनी को जारी होता है।

२.१० शब्दावली

1. अंकेक्षण :– जॉच पड़ताल
2. मर्यादित रिपोर्ट :– अनुशासित रिपोर्ट

२.११ कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. कम्पनी अधिनियम :– चुण्डावत, खींचा, जोशी, जैन, अजमेरा बुक कम्पनी
2. कम्पनी विधि :– डॉ. आर.एल. नौलखा, रमेश बुक डिपो–जयपुर
3. कम्पनी अधिनियम एवं सचिवीय पद्धति :– उपाध्याय, चतुर्वेदी, गुप्ता, शर्मा
4. अंकेक्षण :– जैन, खण्डेलवाल, रमेश बुक डिपो – जयपुर

२.१२ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस इकाई के संकेत 2.2 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।
2. इस इकाई के संकेत 2.3 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।
3. इस इकाई के संकेत 2.4 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।
4. इस इकाई के संकेत 2.5 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।
5. इस इकाई के संकेत 2.6 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।
6. इस इकाई के संकेत 2.7 में इसका अर्थ दे रखा है पढिये एवं उत्तर दीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun